पूर्वी पाकिस्तान के अंचल में

सूर्यप्रसन्न वाजपेयी

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

पूर्वी पाकिस्तान के अंचल में

सूर्यप्रसन्न वाजपेयी

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

प्रकाशक
हिन्दुस्तानी एकेडेमी,
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण—१६६८
मूल्य रु० १५·००

मुद्रक
श्री सरयूप्रसाद पाण्डेय
नागरी प्रेस,
दारागंज,
इलाहाबाद

पूर्वी पाकिस्तान
के
अंचल में

भारत की जननेत्री
श्रीमती इन्दिरागांधी
के कर कमलों में

प्रकाशकीय

हिन्दी में संस्मरण-साहित्य का प्रायः अभाव है। इस अभाव की पूर्ति के लिए हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने श्री सूर्यप्रसन्न वाजपेयी लिखित 'पूर्वी पाकिस्तान के अंचल में' प्रकाशित किया है। श्री वाजपेयी पूर्व बंगाल के बरीसाल जिले के पारेरहाट रियासत के राजा थे। देश-विभाजन के बाद, सब कुछ छोड़ कर, उन्हें भारत आना पड़ा। किन्तु श्री वाजपेयी की स्मृति में पूर्व-बंग की मनोहारिता, देश की अखण्डता और विविधता में एकता को उद्भासित करने वाली भारतीय संस्कृति की उदात्तता अक्षुण्ण है। अत्यन्त आत्मीयता से लिखी हुई यह स्मृति-कथा आज भी राजनीति को बार-बार झुठला देती है। वास्तव में श्री वाजपेयी ने, जिनका बंगला और हिन्दी—दोनों भाषाओं पर समान अधिकार है, पूर्ण ममत्व के साथ यह स्मृति-कथा लिखकर स्तुत्य कार्य किया है।

विश्वास है, यह पुस्तिका संस्मरण-साहित्य को समृद्ध और प्रेरित करती हुई प्रत्येक वर्ग के पाठकों के बीच हृदयग्राही बनेगी।

उमाशंकर शुक्ल
सचिव तथा कोषाध्यक्ष

२६ मार्च, १९६८
हिन्दुस्तानी एकेडेमी,
इलाहाबाद।

कृतज्ञता-ज्ञापन

इस लेख की पाण्डुलिपि सर्वप्रथम अनुभवी विद्वान् श्री विश्वम्भरनाथ पाण्डेय ने पढ़ा और हमें बहुमूल्य परामर्श प्राप्त हुए। इसके बाद यह पाण्डुलिपि साहित्य-साम्राज्ञी महादेवी जी ने पढ़ा और मुझे प्रोत्साहन दिया। कविवर बालकृष्ण राव ने न केवल पुस्तक पर प्राक्कथन लिखा, बल्कि प्रकाशन का सारा यथोचित प्रबंध भी किया। यशस्वी कवि और सम्पादक डॉ० धर्मवीर भारती ने भी इसे पढ़ा और 'शेष स्मृति कथा' के अंश को बड़ा मार्मिक कहा। अतः इन समस्त उदार-विद्वानों का मैं हृदय से आभारी हूँ।

इस लेख में बहुत से नाम-धाम काल्पनिक हैं किंतु अगर कहीं किसी नाम की साम्यता अप्रीतिकर हो तो मुझे क्षमा किया जाय। बहुत से मित्रों ने प्रकाशन के लिए सतत प्रेरणा दी है, अतः उन सब के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

सू० प्र० वा०

पूर्वाभास

मैंने 'पूर्वी पाकिस्तान के अंचल में' पढ़ा और इस स्मृतिकथा ने मुझे विशेष प्रभावित किया। श्री सूर्यप्रसन्न वाजपेयी के निकट हिन्दी माता तथा बंगला धात्री हैं, अतः उनका हृदय दोनों के महत्व से स्निग्ध है।

आज के विरोध के स्वरों में हमें ऐसे स्वरग्राम की आवश्यकता है, जो संगीत बन सके। ऐसे लेखक, जो भाषा तथा प्रदेश की संकीर्ण सीमाओं के बन्दी नहीं हैं, भारत की अखण्डता के लिए सेतु का कार्य करते हैं।

विश्वास है, पूर्व-बंगभूमि की यह झाँकी हिन्दी भाषियों को भारत-भूमि के हृदय का परिचय दे सकेगी।

महादेवी वर्मा

प्राक्कथन

मनुष्य अपनी सहज प्रकृति से ही सामाजिक प्राणी है। सभ्य जातियों में तो सामाजिक चेतना और सामाजिक दायित्व का बोध अपेक्षित ही है, बर्बर मानव-समूहों में भी हमें इस सामाजिक चेतना की प्रारंभिक स्थिति के दर्शन हो जाते हैं। सिंहों के लेंहड़े भले ही न हों, मनुष्यों के तो समूह ही होते हैं, चाहे वे सभ्य हों, चाहे असभ्य हों। यदि यह दावा किया जाय कि मनुष्य प्रकृत्या अन्य मनुष्यों के प्रति आकर्षित भी हो, तो भी जैसे-जैसे सभ्य और संस्कृत होता जाता है वैसे-वैसे अन्य व्यक्तियों और समूहों के प्रति अधिकाधिक आकृष्ट और अधिकाधिक उदार होता जाता है—तो शायद इस कथन से सहमत होना कठिन न हो यद्यपि राजनीतिक जगत् की तनावपूर्ण स्थिति हमें ऐसा सोचने के लिए प्रेरित नहीं करती। जो भी हो, अपने देश और अपने समाज के बाहर की दुनिया को देखने, जानने और समझने की इच्छा सभी मनुष्यों के लिए यदि स्वाभाविक नहीं तो भी वांछनीय तो मानी ही जायगी। सभी शान्ति-प्रेमी विचारक एक देश और एक जाति की परिधि में सिमट कर रहने, जो अपना है और सुपरिचित है उसके अतिरिक्त जो भी है उसे अज्ञात और अपेक्षित रहने देने, मानव-समूहों का अपने-अपने संकुचित क्षेत्र को अज्ञान और उदासीनता की खाई से घेर देने की प्रवृत्ति को विश्वशान्ति के लिए अशुभ और हानिकर मानते हैं। और यह तो हम सब की सामान्य जानकारी की बात है कि कम पढ़े-लिखे लोग दूरस्थ देशों और जातियों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की विलक्षण धारणाएँ बना लेते हैं और वे धारणाएँ कभी-कभी ऐसे दृढ़ विश्वास के रूप में केन्द्रित होकर जम जाती हैं कि फिर छुड़ाये नहीं छूटतीं। भूत किसी ने नहीं देखा, इसीलिए लोगों के मन में भूतों के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की अविश्वसनीय धारणा को जमा देना आसान है। मुझे भलीभाँति याद है, प्रथम विश्व-युद्ध के समय में और मेरे साथ पढ़ने-खेलने वाले अनेक लड़के जर्मनों के सम्बन्ध में जाने क्या-क्या ऊटपटांग बातें सुनते-सोचते और मानते थे। जर्मन सिपाही रोज सबेरे एक बच्चे का कलेवा करता है, दोपहर के वक्त दो-एक आदमी खाता है और चाय की जगह खून पीता है आदि-आदि। यह तो बच्चों की बातें हुईं। लेकिन बच्चों से कुछ ही कम अबोध, अगढ़ देहाती होते हैं। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न वर्गों में मानव-जगत् सम्बन्धी अज्ञान की मात्रा क्रमशः ही घटती जाती है। ऐसे थोड़े ही लोग होते हैं जो अपने गाँव, ज़िले अथवा देश के अलावा और कुछ जानते

हों। कितने भारतवासी होंगे जो भारत के ही विभिन्न क्षेत्रों और वहाँ के जन-जीवन के विषय में कुछ भी जानकारी का दावा कर सकते हैं ? सभी मानते हैं कि राष्ट्र की भावनात्मक एकता के मार्ग में यह एक बहुत बड़ी बाधा है कि देश के एक क्षेत्र के लोग दूसरे क्षेत्र के विषय में कुछ नहीं जानते। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों की ओर से और अनेक संस्थाओं और व्यक्तियों की ओर से भी इसके प्रयास बराबर किये जा रहे हैं कि देश के विभिन्न क्षेत्रों के लोग एक-दूसरे से सचमुच परिचित हो जायँ।

प्रस्तुत पुस्तक सचमुच इसी प्रकार का एक प्रयास है, यद्यपि इसका सम्बन्ध जिस प्रदेश से है वह आज के भारत की राजनीतिक सीमा के बाहर है। राजनीतिक संदर्भ में बातें करें तो पूर्वी-पाकिस्तान को विदेश मानना ही होगा, पर राजनीतिक सीमा-रेखाएँ संस्कृति के लोक की सीमा-रेखाएँ नहीं हैं। श्री सूर्यप्रसन्न वाजपेयी ने पूर्वी-पाकिस्तान में अपने जीवन के अनेक वर्ष बिताये हैं। वहाँ की मिट्टी की सोंधी गंध, वहाँ के जल की स्निग्धता, वहाँ की हवा की नमी—इन सभी का श्री वाजपेयी के जीवन और व्यक्तित्व के निर्माण में योग रहा है। यही नहीं, वहाँ के जन-साधारण और वहाँ के विशिष्ट व्यक्ति, वहाँ की रीतियाँ, आचार-व्यवहार, पर्व-त्योहार, सभी श्री वाजपेयी की अनुभूतियों में रस-बस गये हैं। श्री वाजपेयी भारतीय हिन्दू हैं, पर पूर्वी पाकिस्तान-निवासी बंगाली मुसलमान के दिल की धड़कन वे उसी सहजता से सुन सकते हैं जिस सहजता से वे भारत की आत्मा के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। दोनों ही उनके लिए सहज हैं क्योंकि वे एक साथ ही दोनों के हैं। आज के युग में जब एक को दूसरे से अलग करने वाली अकल्याणकर शक्तियाँ इतनी सक्रिय हो रही हैं, हमें श्री वाजपेयी के स्वर में अपने पड़ोसी की बात सुनने का अवसर मिला, यह हमारा सौभाग्य है।

श्री वाजपेयी के इन स्फुट निबन्धों में वह कलात्मक अन्विति स्पष्ट झलकती है जिसे हम मानव-संवेदना कहते हैं। लेखक के रूप में श्री वाजपेयी की यह बहुत बड़ी सफलता है कि अनायास ही उनकी यह व्यापक और जीवंत संवेदना साहित्यिक उपलब्धि बन गयी।

११ अप्रैल, १६६८ — बालकृष्ण राव

'अमरावती'

६, टैगोर नगर,

प्रयाग

प्रेरणा का उत्स

अलफ्रेड पार्क इलाहाबाद नगर के हृदय-देश में स्थित एक मनोरम उद्यान है। इस पार्क का वर्तमान नाम मोतीलाल नेहरू पार्क भी है। इसी उद्यान में प्रतिदिन सुबह-शाम, एक सघन मोल-श्री के पेड़ के नीचे बैठकर वायु-सेवी सैलानियों की बैठक या जमघट कहिए, होती थी, और यह समावेश चालू हुआ था सन् १९४८ में, देश के विभाजन के बाद। इसके सदस्य थे— डॉ० नारायण प्रसाद अस्थाना, जस्टिस गिरीशप्रसाद माथुर, जस्टिस ब्रजमोहन लाल प्रभृति कोई तीस-बत्तीस आदमी। इसे नाम दिया गया था 'भ्रमणार्थी दल (walker's party)। बैठक की सदस्यता के चन्दे के रूप में प्रति सदस्य साल में एक बार अपने घर पर एक प्रीतिभोज (at home) देता था। इस संघ के मंत्री क्वेटा के एक शरणार्थी थे, जो ७२ वर्ष की उम्र में भी नवयुवक जैसे कर्मठ थे। बाबू केदारनाथ इसके महामंत्री थे।

लेखक भी इस गोष्ठी का सदस्य था। देश-विभाजन के बाद अपनी कर्मभूमि-पूर्वी पाकिस्तान से विदा लेकर, वह भी तीर्थराज प्रयाग में आकर रहने लगा और शाम को इस गोष्ठी में सम्मिलित होने लगा। गोष्ठी के एक उत्साही सदस्य डॉ० के० एस० गोयल बड़े विनोदी, हँसमुख तथा मिलनसार थे। एक अन्य सदस्य थे—एक इञ्जीनियर और ८६ वर्ष के एडवोकेट एम० एम० बनर्जी। इस सान्ध्य-मिलन में बनर्जी महोदय सर्व-सम्मति से दादा कह कर सम्बोधित किये जाते थे।

लेखक और उनका परिवार पूर्व बंगाल में जो अब पूर्वी पाकिस्तान में है, कई पुश्तों से रहता आया था, अपनी पैतृक-जायदाद के संरक्षण के सिलसिले में।

एक दिन मित्र-मंडली में बात चली कि पूर्वी पाकिस्तान की कहानी, देश के उस अंचल का विवरण, उसका संक्षिप्त इतिहास, जलवायु, शिक्षा और संस्कृति तथा उसके अधिवासियों के बारे में, लेखक से पूछा जाय और उसका विस्तृत विवरण मंडली में आलोचित हो।

मंडली के नवयुक सदस्यों को प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य नेताओं की जीवनी और कर्म-पद्धति, तुलसीदास, रवि ठाकुर और निराला के काव्य का जन-मानस पर प्रभाव तथा रूस और अमेरिका के पारस्परिक भेद-भाव, पाश्चात्य देशों की उन्नति और रहन-सहन-प्रणाली की आलोचना आकर्षित करती रही। जब सब विषयों का अन्त हो गया और नया कोई विषय जोर न पकड़ सका, तब लेखक को मित्रों का आदेश अथवा यों कहिए कि सनिर्बन्ध आमन्त्रण मिला कि पूर्व-बंग का हाल सुनाया जाय। इसी आदेश पालन की प्रचेष्टा के फलस्वरूप लेखक के पूर्व बंगाल-प्रवास की इन स्मृतियों के संचयन का अनुष्ठान सम्भव हुआ।

इस स्मृति-चित्रों में कुछ नाम-धाम काल्पनिक आवरण में दिये गये हैं, इसलिए कि वे किसी की मनोव्यथा का कारण न बन जाएँ।
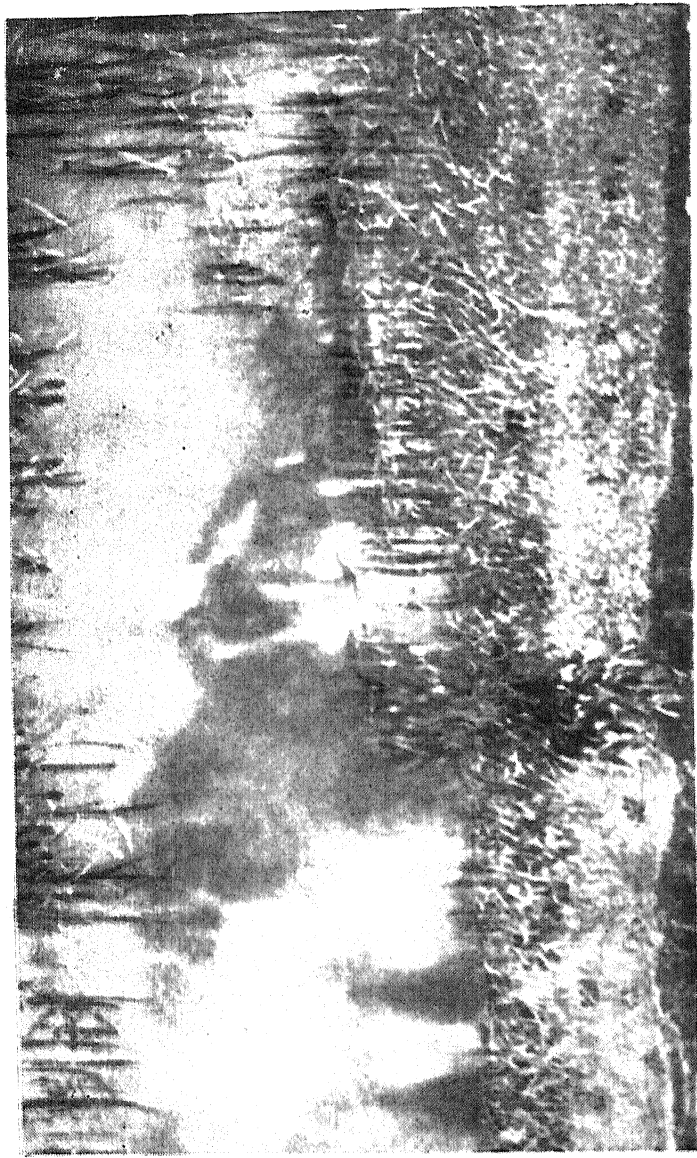
पूर्वी बंग देश में शरद् ऋतु के आगमन के साथ कांस का आविर्भाव

सुजला सुफला शस्यश्यामला बंगभूमि

१

हरा-भरा देश। श्यामल सुषमा-शोभित छोटी-छोटी नदियों के तीर। नारियल, सुपारी, आम, कटहल के बगीचों में बसे हुए छोटे-छोटे गाँव। नयनाभिराम हरियाली। स्वच्छ आकाश में सुबह-शाम हंसों और बगुलों की पाँतों की उड़ान और पूजा-गृहों में शंख, घड़ियाल-घण्टों की ध्वनि। कहीं हरे-हरे नारियल से लदे पेड़, कहीं हरी-पीली सुपारी के गुच्छे, कहीं आम, कटहल, जामुन से लदे वृक्ष और चहचहाते गगन-बिहारी पंछियों का दल। बरीसाल जिले में कहीं रेल नहीं थी। नाव और स्टीमरों से सब शहरों में और बड़े गाँवों में यातायात किया जाता था। मुख्य उपज धान, पटसन और नारियल, सुपारी की थी। इन्हें बेचकर स्थानीय अधिवासी-गण अपनी आजीविका निर्वाह करते थे।

लोग ज्यादातर भात और मछली का झोल (रसा) खाते थे। चाय या शर्बत के बदले हरे नारियल (डाब) का पानी पीते थे। डॉक्टर लोग उसको सोडा-वाटर और लेमोनेड से अधिक उपकारी बताते थे।

यह ज्वार-भाटों का देश था। दिन में दो बार नदियों और नालों में पानी बढ़ और घट जाता था। किश्तियाँ या नावें इसी प्रवाह में ऊपर-नीचे गन्तव्य स्थल को जाती-आती रहती थीं।

देश-विभाजन के पूर्व पूर्वी पाकिस्तान के इस अंचल में जमींदार, महाजन, दूकानदार, डॉक्टर, वकील, अध्यापक और सरकारी अफसर नब्बे प्रतिशत

हिन्दू थे, तो किसान नब्बे प्रतिशत मुसलमान थे। मुसलमानों में इने-गिने जमींदार भी थे।

यही था पूर्वी बंगाल, वास्तविक बंग देश, जहाँ के लिए उत्तर प्रदेश में प्रवाद प्रचलित था—'साजा बाजा केश, यही बँगला देश'।

हिन्दू लोग धोती, कुर्त्ता और मुसलमान लोग लुंगी (तहमद) और लम्बा कुर्ता पहनते थे।

उत्तर प्रदेश के गाँवों में मकान से लगे हुए मकानों की कतारें होती हैं। पूर्वी पाकिस्तान के इस अंचल में गाँवों के मकानों का क्रम ऐसा नहीं था। गाँव में धनहीनों के अधिकांश मकान फूस के, पैसे वालों के छाजन के और ज्यादा पैसे वालों के पक्के मकान होते थे। फूस और टीन के मकान बनाने का उन लोगों का एक निराला ढंग था। देखने में ये मामूली घर जान पड़ते थे, किन्तु इनके भीतर सभी सुविधाएँ होती थीं।

गृहस्थों के मकान तीन या चार बीघे जमीन के बीचो-बीच बनाये जाते थे और उसके सामने व पीछे पोखर (बँगला में 'पूकुर') और नारियल-सुपारी के बगीचे तथा धान बोने के लिए खेत बनाये जाते थे। नारियल, सुपारी, आम, कटहल, पपीते और फलों की बहुतायत थी। तरकारियों के लिए खेत में अलग क्यारियाँ बनायी जाती थीं। जाल से झीलों में मछली पकड़ने की आदत प्रायः सभी को होती थी। हिन्दू घराने के अमीरों का परिचय इससे मिलता था कि वे हर महीने कोई न कोई मूर्ति बना कर धूमधाम के साथ उसकी पूजा करते थे और फिर गाँव भर के लोगों में प्रसाद वितरण होता था।

राजा और जमींदार विद्यालय, चिकित्सालय, ललित-कला और संगीत, नाटक, काव्य के संयोजन में मग्न रहते थे। शिकार करना, कुश्ती लड़वाना और पोखरों में, नदियों में जाल और बंसी लगाकर मछली पकड़ना उनके व्यसन थे।

सरकारी नौकरी को घृणा से देखा जाता था। पश्चिम बंगालवाले सरकारी दफ्तरों और फर्मों में नौकरी करते थे। पूर्वी बंगाल को पश्चिम बंगाल वाले 'बांगाल' कहते थे और पूर्वी बंगाल वाले पश्चिम बंगाल को 'घोटी' कहते थे; 'बांगाल' माने मूर्ख या उजबक और 'घोटी' माने कृपण और स्वार्थी। परन्तु जितने स्कूल-कालेज पूर्वी बंगाल में थे, उसके आधे भी उस समय समस्त पश्चिम बंगाल में नहीं थे।

पूर्वी बंगाल की हरित-संकुल भूमि में न सर्दी, न गर्मी, न लू, न लपट, न बर्फीली वायु, न जलाने वाली गरम हवा। हरे-भरे उपवनों से होती हुई बंगोपसागर की दक्षिणी वातास प्रातः सायं मौसम को सुहावना बना देती थी।...बरसात का तो कहना ही क्या ? तीन-चार महीने मूसलाधार पानी

बरसता और तभी गाँव वाले 'इलिश' मछली पकड़ने के लिए छोटी-छोटी डोंगियों में निकल पड़ते थे। हवा, पानी, आँधी, तूफान इसकी किसी को परवाह नहीं थी। भादों के महीने में झड़ी लगी रहती थी—सात-सात दिन। फिर पानी, फिर धूप और फिर होता था कुंवार लगते ही दूर्गा-पूजा का महोत्सव मनाने का विराट आयोजन।

जो लोग मूर्ति बनाते थे उनको 'कुम्हार' कहते थे। जिन घरों में पूजा होती थी वहाँ कच्ची मिट्टी लाकर पहले मूर्ति को बनाकर धूप में सुखाते थे। फिर पन्द्रह दिन बाद उसको कपड़े से घिस कर, साँचे में ढले हुए मुखड़ों या मुखाकृतियों को बैठाते थे और पन्द्रह दिन बाद उन मृणमयी प्रतिमाओं में इस सुन्दरता से रंग लगाया जाता था कि मूर्तियाँ स्वाभाविक मानवीय रूप की मालूम पड़ने लगती थीं। इतनी अच्छी मूर्तियाँ ये लोग बनाते थे कि ये प्रतिमाएँ प्राणवन्त आकृतियों जैसी मालूम होती थीं।

शाम को देवी की मूर्ति के सामने आरती उतारी जाती थी। धूपदानी लेकर देवी के सामने नाचने की प्रथा को मनमोहक और भक्ति-भावनापूर्ण समझा जाता था।...ऐसा भी कई घरों में देखा जाता था कि अमरीका के बोस्टन और शिकागो प्रवासी बंगाल के रहने वाले दुर्गा-पूजा और काली-पूजा के समय सुदूर प्रवास से स्वदेश, अपने घर आकर, उन उत्सवों में योगदान करना अपना परम कर्तव्य समझते थे। आश्विन और कार्तिक, दो महीनों में, हर हिन्दू गृहस्थ के घर में पूजा और उत्सव मनाये जाते थे।

सौ काशी से भी अधिक पवित्र : फूलों से लदा प्रदेश

पूर्वी बंगाल में बारहों महीने करीब-करीब एक ही तरह की हरियाली बनी रहती थी। पेड़-पौधों को पानी से सींचने की जरूरत नहीं पड़ती थी। फूलों में गन्धराज, जूही, बेला, दो प्रकार की चम्पा (स्वर्ण चम्पा और काँठाली चम्पा), शेफाली (हरश्रृंगार), कामिनी, बकुल, और दो तरह के पद्म (जल में होने वाले और स्थल में वृक्षों में होने वाले)—लाल और सफेद। गुड़हल फूल को जवाफूल कहते थे। ये फूल कई तरह के रंगों में पाये जाते थे। पूर्व बंग देश की पल्ली अथवा ग्राम-श्री का वर्णन विख्यात कवि कुमुदरंजन मल्लिक ने इस कविता में किया है—

'मांझी, तरी हेथा बेंधवो नाको आजकेर सांझे'

(माँझी आज इस सांध्य-बेला में नाव को किनारे नहीं बाँधना, चलने दो।)

'भिड़ायो ना, चलुक तरी एइ नदीर माझे'

(नाव न बाँधना, न रोकना, इसे चलने दो नदी में।)

मौन साँझेर म्लान माधुरी कतई व्यथा आनछे बुके,
दूरेर छोटो दीपटी जेनो विषाद छबि देय जे एँके।

(आज मौन सायंकाल का म्लान माधुर्य मेरे मन में असहनीय व्यथा का संचार कर रहा है और गाँव के घर का एक छोटा-सा दिया मेरे अन्तर-पटल में एक विषादपूर्ण छवि अंकित कर रहा है।)

एकटि गृह होथा किना,
छिलो आमार बड़ो चेना,
छवि खानि जार आजो आमार
हृदय माझे सदाइ जागे।

(नदी के किनारे एक घर हमारा खूब परिचित था। आज भी उसकी तस्वीर मेरे हृदय में सदा जागती रहती है।)

ओपारेर ओई बकुल तले,
तटिनीर ओई श्यामल कूले।
दियेछि सेइ स्वर्णलताय,
निजेर हाथे चिताय तूले।
आजो ओई चितार परे,
शिथिल बकुल पड़ेछे झरे,
सरस मधुर मुखखानि तार,
देय जे बाधा सकल काजे।

(उस पार उस मौलसिरी पेड़ के नीचे, नदी के श्यामल तीर पर, अपनी स्वर्णलता जैसी प्रिया को मैंने अपने ही हाथों से चिता पर उठाकर रख दिया था। आज भी मौलसिरी के फूल उस चिता पर निरन्तर झरते रहते हैं। प्रिया के सुन्दर मुखड़े की याद मेरे प्रत्येक कार्य के आगे आ जाती है और कार्य से मेरे मन को उचाट देती है।)

एक पल्लीकवि गोविन्ददास ने अपने गाँव के बारे में लिखा था—

शत गंगा, शत काशी ता होतेओ भालोबासि,
ओई जे अरण्यपूर्णा जननी आमार।
शत गंगा होते भाई, पुण्यतोया ए चिलाई
कतो घाट आर तीरे मनिकर्णिकार।
ताहारे भूलिबो किसे, से आछे शोणिते मिशे,
सपनेओ हेरि तार से चारु बयान।

सौ गंगा, सौ काशी से भी ज्यादा पुण्यवान्, ज्यादा प्रिय है मेरा यह जंगल-परिपूर्ण गाँव और उस गाँव से होकर बहने वाली छोटी नदी चिलाई के

तीरपर, मैं कितने ही मणिकर्णिका घाटों का दर्शन करता हूँ।...उसे मैं कभी नहीं भुला सकता, वह तो मेरे प्रत्येक रक्त-बिन्दु के साथ मिश्रित है, उसका अनुपम सौन्दर्य मैं सपने में भी देखता हूँ।) पूर्व बंग के बहुत से गाँव इतने सर्वांगसुन्दर थे कि मानो प्रकृति ने ही उनकी रचना की हो। पश्चिम बंगवालों ने नौकरी पेशा अपनाया था बहुत वर्षों पहले, परन्तु पूर्व बंगवालों ने अपनाया था 'उत्तम खेती मध्यम बान'—कृषि-कार्य और छोटे-छोटे धन्धे।

पूर्व बंगाल था सुखी-सम्पन्न देश; घनी आबादी थी। बरीसाल जिले के अधिवासियों को संख्या थी करीब ४३,००,०००। सबसे ज्यादा थे मैमनसिंह जिले में, पचपन लाख। वहाँ तहसीलें नहीं थीं, सब-डिवीज़न थे। अवध के उन्नाव, रायबरेली जिले जैसे एक-एक सब-डिवीज़न। जहाँ चार फर्स्ट क्लास डिप्टी कलेक्टर और चार मुन्सिफ और करीब दो-दो सौ वकील रहते थे। ज़िले के सदर मुक़ाम में पाँच-सौ वकील से ज्यादा रहते थे। चार-चार सेशन जज होते थे। चार-पाँच सिनेमा गृह और रंग-मंच भी होते थे।

८

जल में तैरते हुए महल और जमींदारों की शान

बरीसाल, नोआखाली, खुलना आदि जिलों में लोग ज्यादातर नावों के द्वारा यात्रा करते थे। रेल की सवारी बहुत कम करनी पड़ती थी।

राजा, जमींदार लोग बजरे में सफर करते थे। शीतकाल में पूस में धान कटने के बाद ये लोग निकल पड़ते थे। बजरों में दरबारी कमरा, सोने का कमरा, शौचागार आदि सब होते थे, साथ में रानियाँ, नौकर-चाकर। महलों की तरह का पूरा आराम था। किसी प्रकार का कष्ट नहीं था। साथ में छोटी-छोटी डोंगियों में अमलाकर्मचारी, अहलकार, कारिन्दे लोग बजरे के साथ-साथ चला करते थे।

पड़ाव पड़ते थे अपने इलाके के डेरों के आस-पास। बजरा बड़ी नदी से जब छोटी नदी में प्रवेश करता, तो रैयत लोग बैण्ड तथा बाजे-गाजे बजाते थे और आतिशबाजी छोड़ते थे। अपने जमींदार, राजाबाबू की अगवानी के लिए उत्सव का आयोजन किया जाता था। बड़ी धूम-धाम होती थी। वहाँ के रासधारी नाट्य सम्प्रदाय 'यात्रा गान' के नाच (पेखना) आरम्भ हो जाते थे और जब तक राजाबाबू उस गाँव को छोड़कर किसी दूसरी जगह न जाते तब तक यह क्रम जारी रहता था।

प्रजा लोग राजाबाबू को भेंट में बढ़िया चावल, बड़ी-बड़ी रोहू मछली और 'राम खसी' (बधिया किया हुआ तगड़ा बकरा) लाते थे। इन सबके साथ गाय का घी, सरसों का तेल, लौकी, कद्दू और अनगिनत हरे नारियल भेंट में लाते थे। जमाया हुआ मलाईदार दही (चीनी पाता दोई) और केले के पत्ते पर जमायी हुई रबड़ी (पात खीर) जैसे उपहारों का ढेर लग जाता था। बँगला मिठाई, खासकर रसगुल्ला इतना जमा हो जाता था कि दूसरे दिन खट्टा हो जाने के कारण नालियों में फेंक दिया जाता था। एक प्रकार की केक जिसको 'पीठा' (पिस्टक) कहते थे, भी बहुत बनायी जाती थी।

छहों ऋतुओं का प्रभाव पूर्वी बंगाल में सहज ही मालूम पड़ता था। वसन्त में पलाश (टेसू) के फूलों से समग्र बनस्थली में लाली छा जाती थी। ग्रीष्मऋतु में धूप की प्रचण्डता ऐसी नहीं होती थी कि दोपहर को छाता लिये बिना बाहर न निकल सकें। दिन को गर्मी पड़ती थी, परन्तु सुबह, शाम और रात को शीतल पवन बहता था। बाहर सोने की जरूरत नहीं होती थी। सब लोग बारहों महीने अन्दर ही सोते थे। बड़े-बड़े लकड़ी के पलंग होते थे जिन्हें छपरखाट कहते थे, अमीरों के गद्देदार और गरीबों के सादा। बड़े घरानों में ये पलंग ऐसे मजबूत बनाये जाते थे कि पुश्त दर पुश्त चलते थे और देखने में भी बड़े सुन्दर होते थे। निवाड़ और बान के पलंग या खाटें वहाँ नहीं होती थीं।

सब ऋतुओं में बरसात का स्थान पूर्व बंग में श्रेष्ठ माना जाता था। जेठ महीने के अन्त से कुंवार के मध्य पर्यन्त बरसात कभी कम, कभी बेशी, लगातार जारी रहती थी। श्रावण में मूसलाधार पानी बरसता, भादों में धीरे-धीरे दिन-रात पानी बरसता। सब जगह कीचड़ ही कीचड़ हो जाता।

बंग भाषा में बरसात की संगीतावलि अजस्र पायी जाती थी। रवीन्द्र नाथ ठाकुर (जिन्हें पूर्व बंगवासियों ने बड़ा प्यारा नाम दिया था—रवि ठाकुर) ने लिखा था—

'वर्षा एलायेछे तार मेघमय वेणी'

अर्थात् वर्षा सुन्दरी ने काले बादलों की अपनी वेणी को खोल दिया है। और भी—

मेघेर परे मेघ जमेछे;
आंधार करे आसे !
और—**बरिसो धरा मांझे शांतिर वारि !**
और—**ए भरा बादर, माह भादर, शून्य मन्दिर मोर !**
और—**एमनोदिने तारे बला जाय**
एमनो घनघोर बरिसाय !

होगला और हाड़गुली की झाड़ियों में जंगली फूलों की शोभा

अतुल प्रसाद सेन और सत्येन्द्रनाथ ने भी संगीत की रचना कर पर्जन्यदेव की पूजा की है। इसी तरह कवीन्द्र रवीन्द्र से लेकर गाँव के साधारण से साधारण कवियों ने वर्षा का गुणगान किया है।

वास्तव में पूर्व बंग की बरसात जिसने नहीं देखी उसको समझाना असम्भव है। जब मेघ का अविश्राम गर्जन, तूफानी हवा की प्रचंड फुफकारें, बिजली का चमकना और कड़कना, सब मिला कर एक ऐसा चित्र आँखों के सामने उपस्थित करते थे, तब यही जान पड़ता था कि, हम किसी नई दुनिया में पहुँच गए हैं, जहाँ सूर्य और चन्द्र की किरणों और तारों की रोशनी जैसी कोई वस्तु नहीं है, नगर, गाँव, बगीचे, जंगल, नद-नदी सब अवलुप्त हो गए हैं और हम अपने गृह के एक कोने में अनादि काल से बैठे हैं।

कुंवार महीने के मध्य से शरत् काल आ जाता। उस समय का निर्मल आकाश, कुश घास की हरित शोभा और उसके शुभ्र फूल, तालाबों में कमल, बगीचों में स्थल-कमल और शेफाली (हरश्रृंगार), कामिनी और माधवी फूलों की बहार मन को मोह लेती थी और आँखों के सामने नये विश्व का माधुर्यमय चित्र उपस्थित करती थी। दुर्गापूजा, कालीपूजा आदि बड़े-बड़े त्योहारों का यही सुहावना समय था।

शिशिर में तड़ागों में कमल खिलने आरम्भ हो जाते थे। वहाँ बगीचों में एक विशेष तरह के कमल होते थे—'स्थल पद्म' या धरती के कमल। केवड़े के फूल का बसा हुआ सुवासित कत्था और गन्धराज फूल, अपराजिता, माधवी और बकुल (मौलसिरी) के गजरे सबके घरों की शोभा बढ़ाते थे।

शीतकाल वहाँ के लोगों को कड़ी सर्दी का काल लगता था; परन्तु उत्तरप्रदेशवासी के लिए तो वह बिल्कुल मामूली-सी सर्दी मालूम पड़ती थी। घर-घर में दूध और खजूर के रस की पायस या खीर बनती थी। रात को खजूर का रस ज्यादा अच्छा माना जाता था और उसके साथ दूध का खोया मिलाकर नवीन गुड़ के सन्देश बनते थे। यह मिठाई अत्यन्त प्रिय थी।

भैंस का घी वहाँ नहीं मिलता था। गाय का घी और मक्खन इस्तेमाल किया जाता था। घी का उपयोग वहाँ अमीर लोगों के लिए था और साधारण लोगों के यहाँ सरसों के तेल से सब्जियाँ और मांस-मछली पकायी जाती थी।

घर में सम्भ्रान्त अतिथि या दामाद का शुभागमन हो, तो घी से लूची (लुचुई या मैदे की पूड़ी) बनायी जाती थी और तले हुए परवल, आलू तथा भाँटे के साथ उन्हें परोसा जाता था।

पूस-माघ महीनों में सब घरों में तरह-तरह के 'पीठे' बनते थे। ऐसे ही

गोकुल पीठा, चन्द्र-पुली, पाटी-सपटा और खोये तथा रबड़ी के नकली आम और अनन्नास की मिठाइयाँ बनायी जाती थीं, जो खाने में बड़ी लजीज होती थीं।

माघ मास के शेष होते-होते नये जीवन की उष्णता से वातावरण भर उठता और सरस्वती पूजा तथा वसन्तोत्सव की तैयारियाँ होने लगतीं। हम लोग होली दो तरह से मनाते, एक बंगाली लोगों की तरह और दूसरी अपने उत्तर-प्रदेश की प्रथानुसार। वहाँ होली को पढ़े-लिखे लोग 'दोल-यात्रा' या 'होलिकादहन' कहते और गाँव वाले कहते 'बूड़ीरघर पोड़ा' (अर्थात् बुढ़िया का घर जलाना)। एक दिन रंग खेला जाता था और दूसरे दिन कीचड़ उछाला जाता।

पूर्व बंग में बैसवाड़े का रंग

उत्तर-प्रदेश की होली के लिए आदमी 'बैसवाड़ा' (उन्नाव-रायबरेली अंचल) से बुलाये जाते थे, और वे लोग या उनके प्रतिनिधि हर साल होली के १५ दिन आगे पूर्वी बंग पहुँच जाते। स्थानीय मुसलमान लोग उन लोगों के लिये साल भर प्रतीक्षा करते और उनके आने पर उनसे गले मिलते। बैसवाड़े के कुछ लोग लखनऊ की दुपल्ली टोपियाँ साथ लाते और मुसलमान लोग आनन्दित हो कर मुहमाँगे दाम पर खरीद लेते। बंगाली हिन्दू टोपी नहीं लगाते थे। वे लोग हिन्दुस्तानी भाइयों से मोटी तह का देशी अमावट और पान के सरंजाम रखने के लिये बटुए खरीदते और इस तरह वे लोग काफ़ी रकम कमा कर होली के बाद घर लौटते। कस्बों और बड़े गाँवों में हिन्दी समझने में कोई दिक्कत नहीं होती थी। मारवाड़ी लोग भी देखने को मिलते थे। बापू, नेहरू जी, और नेताजी की जय-जयकार के घोष ने वहाँ के सब लोगों के लिए हिन्दी सीखना सरल बना दिया था।

गाँव में चौपालों का काम देते थे चण्डीमण्डप जहाँ दुर्गा-पूजा, काली-पूजा, जगद्धात्री-पूजा, सरस्वती-पूजा और वसन्त-पूजा का उत्सव मनाया जाता था।

पान-तम्बाकू का प्रचलन अधिक था। कोई अतिथि आये तो हुक्का आगे बढ़ा दिया जाता था। अमीरों के घरों में कई तरह के हुक्के बैठके में रखे जाते थे— ब्राह्मण का हुक्का, और शूद्र का हुक्का। मुसलमान अतिथि के लिए भी बिना पानी भरा नारियल का (नैचेका) हुक्का रख दिया जाता था। एक-एक हुक्के में एक-एक तरह की कौड़ी बाँध दी जाती थी, जिससे यह सहज ही में मालूम पड़ जाता था कि कौन-सा हुक्का ब्राह्मण का है, कौन-सा कायस्थ का, कौन-सा शूद्र का।

थाली में पान धो कर रख दिये जाते थे और अलग से कटोरियों में चूना, कत्था और पान का मसाला। सुपारी दो तरह की प्रचलित थी—पक्की, यानी

नारिकेल कुंज

सूखी हुई और कच्ची जो देखने में हरी मालूम पड़ती थी। बड़ा-सा सरौता रख दिया जाता था, जिसको जितनी जरूरत हो काट कर ले लेता था। कत्थे की कीमत ज्यादा होती थी इसलिए कत्थे का उपयोग अमीरों के लिए होता था और साधारण जन बिना खैर के पान कच्ची सुपारी से खाते थे। कच्ची सुपारी सबके लिए खाना आसान नहीं था, क्योंकि नौसिखिये को कच्ची सुपारी खाने से तुरन्त चक्कर आने लगता था और कै होने लगती थी। दन्तविहीन पान के शौकीन व्यक्ति के लिए कच्ची सुपारी खाना जरूरी होता था, क्योंकि वह बहुत मुलायम होती थी और जबड़ों से चबायी जा सकती थी। एक बार कच्ची सुपारी खाने की आदत पड़ गयी तो छोड़ना मुश्किल हो जाता था और सुखायी हुई सुपारी फिर अच्छी नहीं मालूम होती थी।

पपीता कच्चा और पक्का दोनों तरह का काम में लाया जाता था। वहाँ के किसान लोगों का कभी-कभी दोपहर का भोजन था—पक्का कटहल, जिसमें बड़ी-बड़ी फाँकें होती थीं, बड़ा मीठा और रसपूर्ण। इसका एक तरह का अमावट भी बनाया जाता था।

फूलों की बहार का क्या कहना! छोटी-छोटी नदियों के (जिनको वहाँ के लोग 'खाल' कहते थे) किनारे और झीलों के आस-पास खाली जगहों में, जहाँ देखो वहाँ फूल ही फूल दिखायी पड़ते थे। क्राटन और 'कचू' और बेंत के पौधे (जिनको उत्तर-प्रदेश वाले कीमती गमलों में लगाकर बँगला सजाते हैं) इतनी प्रचुर मात्रा में पाये जाते थे कि उन्हें काटकर फेंक दिया जाता था।

दूब का लान तो वहाँ बारहों महीने बिना किसी तरह की सिंचाई के हरा-भरा बना रहता था। राधा-चूड़ा, कृष्ण-चूड़ा, काठ-मल्लिका, स्थल-पद्म, गन्धराज और जवाफूल वहाँ के विशेष प्रकार के फूलों में थे। और सब फूल यहाँ-वहाँ एक ही प्रकार के होते थे। स्वर्ण-चम्पा फूल का सौरभ सब का मन मोह लेता था।

●

नदी-मातृक देश

पूर्व-बंग में असंख्य नद और नदियाँ थीं। इन नदियों में साल में कई दफे बाढ़ आती थी, तूफान उठता था, अपार जलराशि आस-पास के गाँवों को प्लावित कर देती थी। बाढ़ के कारण वहाँ के अधिवासी सदा त्रस्त रहते थे। इन नदियों की बुभुक्षित धाराओं में यहाँ की सारी हरियाली, बड़े-बड़े नारियल, सुपारी के बगीचे, जनपूर्ण बस्ती-गाँव कवलित हो जाते थे। जनसमुदाय तितर-बितर होकर अन्यत्र चले जाते थे। तज्जनित दुःख, दैन्य और अभाव उनके जीवन को बारबार दुखमय और निराशापूर्ण कर देता था।

पद्मा नदी का पाट ढाई मील और कहीं पाँच मील का था और उससे आने-जाने का एक मात्र साधन था स्टीमर। कभी-कभी नौका-यात्रा भी काम में आती थी। बाढ़ आने के समय दोनों तरह की यात्रायें खतरनाक थीं। पद्मा नदी की एक शाखा का नाम था शान्त सीता। उस नदी में जल की तरंगे सदैव भीषणाकार धारण करती थीं। उसमें नाव द्वारा चलना बहुत कठिन और विपत्तिजनक था। इस वास्ते कहावत थी :—

जार नाई माता पिता,
से जाय शान्त सीता !

अर्थात् जिसके माँ-बाप नहीं हैं वही शान्त सीता नदी में नाव से यात्रा करता है।

एक अन्य नदी का आश्चर्यजनक नाम था 'अड़ियल खाँ' ! इसकी उत्ताल तरंगमाला बड़ी भयानक और डरावनी थी। यह नदी कभी-कभी प्रातःकाल में शान्त रहती, तब इस पार से उस पार जाया जा सकता था।

पारेरहाट राजमहल के दाहिनी ओर प्रवाहित नदी 'कचा' भी बहुधा भयंकर मूर्ति धारण करती थी और तब नाव और स्टीमर में चलना खतरे से खाली नहीं रहता था। इसकी चौड़ाई भी दो मील की थी। साल में कई नावें डूब जाती थीं।

एक दफे ढाई-सौ आदमी लेकर एक स्टीमर आ रहा था। बड़े ज़ोर की हवा चली, ज्वार का वेग बढ़ चला और ऊपर से मूसलाधार पानी बरसना शुरू हुआ। स्टीमर पानी के प्रचण्ड भँवर में अस्त-व्यस्त हो टूटकर जलमग्न हो गया और ढाई-सौ यात्रियों में सिर्फ दो आदमी जो 'लाइफ बाय' लेकर कूद पड़े थे, वे दूसरे दिन बेहोश अवस्था में नदी के दूसरे किनारे पर मिले थे। इस दुर्घटना में दो अंग्रेज अफसर और एक मेम भी जलसमाधि को प्राप्त हुए थे। यह घटना घटी थी जब स्टीमर भंडरिया स्टेशन से पारेरहाट बाजार स्टेशन की तरफ आ रहा था और एक घंटे के भीतर दुर्घटनाग्रस्त होकर डूब गया था।

बैशाख महीने में ऐसी दुर्घटनायें बहुत घटती थीं, क्योंकि तभी आँधी और तूफान हफ्ते में दो-तीन दिन होते थे। इन्हें वहाँ की भाषा में कालबैशाखी कहते हैं। अकस्मात् सब आकाश काले बादलों से ढक जाता है और बड़े जोर से आँधी आती है, नदियों में पानी की बाढ़ आ जाती है, उत्ताल तरंगमाला साँपों की फुफकार ऐसी मालूम पड़ती है, और उस भँवर में अगर कोई नाव पड़ गयी तो वह चकनाचूर हो जाती है और उसके आरोही विलुप्त हो जाते हैं।

बंगभाषा के सर्वश्रेष्ठ मुसलमान कवि और शक्तिसाधक काजी नजरुल इस्लाम की एक कविता की कई पंक्तियों में इस दृश्य का कुछ आभास मिलता है—

दुलितेछे तरी, फूलितेछे जल,
माझीभाई सावधान हे,
ए जे तूफान भारी,
दिते होवे पाड़ी,
निते होबे तरी पार।

नजरुल का यह संगीत, स्वाधीनता-संग्राम के जुलूसों में हजारों कण्ठों से ध्वनित-प्रतिध्वनित होता था और सबको मंत्रमुग्ध करता था। इसका अर्थ है—हे माझी भाई, बड़ी सावधानी से इस भारी तूफान में जब कि दरिया की लहरें फुफकार रही हैं, नाव डगमगा रही है और पानी फूलता जा रहा है, किश्ती को नदी पार कराना है और किनारे लगाना है।

पद्मा, मेघना, कीर्तिनाशा, दामोदर-ब्रलेश्वर, कालो जीरा, कचा, अड़ियल खाँ, कपोताक्षी, कर्णफूली, कितनी बड़ी-बड़ी नदियाँ, उनका विशाल विस्तार और इनके दोनों किनारे नारियल-सुपारी के बगीचे और असंख्य धानों के खेत, यह सब छोड़कर बंगदेश के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता था। पुराने संयुक्त बंगदेश का जो हिस्सा जादूभरा था, जो अंश वैचित्र्यपूर्ण था, उसके बगैर 'सोनार बँगला' की कोई कल्पना ही नहीं की जा सकती।

फिर इन नदियों के जल-कल्लोल के साथ अपनी वाणी मिलाकर कितने कवि, संगीतकार और बाउल बैरागी नये-नये अवदान देकर बंग-साहित्य और जन-संस्कृति को उच्च से उच्चतर शिखर पर ले गये थे।

पूर्वी पाकिस्तान के राजशाही और पाबना जिलों में १४० वर्ग-मील की एक लम्बी-चौड़ी झील है जिसका नाम है 'चलन बिल'। इसका पानी जब बढ़ जाता है तब ब्रह्मपुत्र, आत्रेयी आदि नदियों में जाकर मिल जाता है। जब तक बरसात होती है यह पानी १४० मील की परिधि में स्थिर हो कर जमा रहता है। शायद ही ऐसा दृश्य दुनियाँ में कहीं देखने को मिलता हो। बरसात के अन्त में पानी घटना शुरू हो जाता है और तब किसान लोग उसमें धान-रोपण (ट्रांसप्लान्टेशन) करते हैं और पूस महीने में वह धान काटा जाता है; हल चलाने की जरूरत नहीं होती। हजारों आदमी उसी झील में मछलियाँ पकड़ कर बाजारों में बेच कर जीविका निर्वाह करते हैं।

उसमें कहीं-कहीं कमल खिलते हैं और कहीं-कहीं पानीफल (सिंघाड़े) उगते हैं। कुंआर महीने में यह जलाशय एक शान्त समुद्र-सा प्रतीत होता है जिसमें कोई तरंग या लहरी देखने को नहीं मिलती।

रवीन्द्र नाथ को पूर्वी-बंगदेश का प्राकृतिक सौन्दर्य हमेशा मुग्ध और

आनन्दविभोर कर देता था, विशेषत: पद्मा नदी को उन्होंने कभी नहीं विस्मृत किया, अपनी कविताओं में उसको बार-बार स्मरण किया है—

चिर दिन माटि आमाके डेकेछे
पद्मार आंगन लागा,
खाड़ा पाडेर बन झाड़ बने,
आमार दु चोख भरे
माटि आमाय डाक पाठियेछे
शीतेर शुकनो घासेर हलदे माठे
चरे बेड़ाय दुटि-चारटि गोरु।

आज जब देखता हूँ कि हमारे देशवासी वैज्ञानिक छात्रवृन्द, अमेरिका और लंदन के विलासी-जीवन की सुख-सुविधाएँ अपने देश के हित के लिये त्याग करना नहीं चाहते और देश की सेवा नहीं करते, तब मैं देश के भविष्य के लिये संदिग्ध और चिन्तित हो जाता हूँ। देश के लिये सब कुछ निछावर करने में जो सुख मिलता है, देश-सेवा में जो परमानन्द का संचार होता है वह तो स्वर्गीय है, वह इस मरणशील जगत् की वस्तु नहीं है।

बालक रवीन्द्र नाथ की उच्चाशा कवि, नेता या कोई परमगौरवशाली महान् व्यक्ति बनने की नहीं थी। वे पूर्वी बंग देश की विशालकाया नदी पद्मा में नाव खेने वाले एक मांझी होना ही परम सौभाग्य मानते थे, उन्होंने अपनी माँ से कहा था—

बाबार मतो जाबो ना माँ
विदेशे कोनो काजे
माँ, यदि हओ राजी,
बड़ो होले आमि हबो
खेया घाटेर मांझी।

बंगला भाषा के साहित्य-सम्राट् बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने जिस सुजला, सुफला, शस्य-श्यामला देश की महिमा का गुणगान किया था, वह पूर्व बंग में ही देखने को मिलता था। छोटी-बड़ी बहुत-सी नदियाँ, बारहो महीने हरियाली, नारियल, सुपारी और ताड़ के बगीचे, धान और पटसन का अपार भण्डार—ये सब देखना हो तो बरीसाल, ढाका, नोआखाली, फरीदपुर, मैमनसिंह, आदि जिलों में जाना पड़ेगा।

साहित्य, संगीत, कला और देश-प्रेम

२

नातिशीतोष्ण जलवायु में छः ऋतुओं का आगमन और प्रस्थान, प्रकृति का पट-परिवर्तन, नीलाकाश और शस्य-श्यामला धरित्री का निखरता रूप—सब मिलकर मानव-मन में काव्य-रस और संगीत-अनुराग का संचार सहज ही में करता था और इसी के फलस्वरूप गाँव में पल्ली-कवि, वैरागी, गीतिकार, योगिनी, गायिका, बाउल, एकतारा बजा कर गानेवाले और वैष्णव-वैष्णवियों का सम्मिलित भक्ति रसात्मक नृत्य-संगीत पूर्वबंगवासी मात्र का मन मोह लेता था।

राधा-कृष्ण का विरह, मिलन, अभिसार, विराग, अनुराग का विषय लेकर और काली माता की महिमा लेकर, उनकी सृष्टि और विनाशकारी प्रभाव और दश-दिशा-पालयित्री, जगत् जननी दश-प्रहरण-धारिणी माँ दुर्गा को लेकर अगणित संगीत, कविता, भजनावली, प्रार्थना, कीर्तन, पदावली रचित हुई थी और प्रबल वेग से बढ़ चली थी और आबाल-वृद्ध-बनिता, सब के कण्ठ से ध्वनित-प्रतिध्वनित होती थी, प्रतिक्षण किसी न किसी रूप में।

●

जन्म-भूमि की प्रीति और पूर्वी बंगाल की काव्यधारा

पूर्वी बंगाल के लोगों में पल्ली-प्रीति (गाँव की प्रीति) बड़ी प्रबल होती थी। अपने गाँव को वे लोग प्राणप्रिय समझते थे और उसका स्वाभाविक निराभरण सौन्दर्य उनको मोह लेता था। अपने प्राणप्रिय गाँव की प्रकृति

हर मानव के अन्त:करण में परिपूर्ण महिमा में विराज करती थी। पल्ली कवि गोविन्ददास, जिनकी एक कविता का उल्लेख पहले किया गया है, असाधारण प्रतिभा के धनी थे। वे आजीवन दारिद्रय-व्रती रहे। वे बहुत थोड़े में गुजारा करते थे। किलक कलम, नारियल के सूखे छिलके को जला कर उसकी स्याही बनाते थे, घोंघे की दावात बनाते थे और बालू को स्याही-सोखते की तरह इस्तेमाल करते और मोटे कागज पर लिखते थे। ये थे उनकी अमूल्य, अतुलनीय कवितावली लिखने के साधन। कवि गोविन्ददास गान्धी-युग के बहुत पूर्व हुए थे। फिर भी उन्होंने गाया था—

स्वदेश स्वदेश करिस तोरा एदेश तोदेर नय,
तोरा शुधु, चासेर मालिक ग्रासेर मालिक नय।
एइ जमुना गंगा नदी, ए देश तोदेर होतो यदि,
परेर पण्ये गोरा सैन्ये जहाज केनो बय।
लाट बेलाट ताराई सबे जज मैजिस्ट्रेट ताराई होबे,
चाबुक खाबार बाबू शुधु तोमरा समुदाय।

तुम लोग किस देश को स्वदेश-स्वदेश कहते हो ? यह तो तुम्हारा देश नहीं है। तुम लोग तो इसकी जमीन के केवल चासी (किसान) हो, परन्तु इसका अन्न खा नहीं सकते। लाट, बड़े लाट, जज, मजिस्ट्रेट सभी सफेद चमड़ी वाले होते हैं, तुम लोग केवल चाबुक खाने के लिए बाबू बनाये जाते हो।

गोविन्ददास को किसी तरह का सहारा जीवन में नहीं मिला। भूखा, प्यासा, असहाय कवि सरस्वती देवी की पूजा में मग्न रहा और एक दिन इस दुनिया से यही गाते-गाते चल बसा—

आज जे आमि दूरे सरि, ना खेये शुकाए मरि, घुलाय करि छटपट,
ओ देशवासी, आमि मरले तोमरा आमार चिताय देबे मठ।

आज मैं अनाहार और निरादर में समाज से दूर परित्यक्त जीवन-यापन कर रहा हूँ। किन्तु मैं जानता हूँ, मेरे मरने के बाद, ऐ मेरे देशवासियो, तुम लोग मेरे चिता-स्थल पर मन्दिर और मठ-निर्माण करोगे। और वही हुआ।... भावालवासी गोविन्ददास की स्मृति में उनकी चिता पर कई लाख रुपये खर्च कर, मन्दिर बनवाया गया।

एक और कवि थे रजनीकान्त सेन। वे पावना जिले के अधिवासी थे। सब लोग उनको 'कान्त कवि' कहकर सम्बोधित करते थे। वे वकील थे, पर उन्होंने वकालत का पेशा नहीं अपनाया था। उनकी रचित कवितावली 'वाणी' और 'कल्याणी' नामक दो पुस्तकों में, प्रकाशित हुई है। वे गायक कवि थे।

हारमोनियम की धुन पर कविता-पाठ करते थे और सबको मन्त्र-मुग्ध कर देते थे। न रुपया, न [illegible], न मान का ख्याल।

भगवद्-भजन गाते ही उनके और श्रोता-वर्ग के नेत्र अश्रुप्लावित हो उठते थे। महापतित के मन में भी परिवर्तन आ जाता था। वह भी अपने कुकर्मों के लिए रो देता था। इस जगत् से प्रस्थान करने के पूर्व उनको कैन्सर हो गया था। वे कलकत्ते के अस्पताल में लाये गये, परन्तु रोग बढ़ता ही गया; बोलना बन्द हो गया, परन्तु कवि ने अपनी कविता और संगीतरचना-क्रम जारी रखा। माँ सरस्वती की पूजा अविरल चलती रही। विश्वकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर उनको देखने के लिए अस्पताल गये तब कान्त कवि ने गुरुदेव को प्रणाम किया और स्लेट पर एक कविता लिखकर उनको भेंट की। उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

आमाय सकल रकमे कांगाल करेछो गर्व करिते चूर।
मान ओ अर्थ, यश ओ स्वास्थ्य, सकलि करेछो दूर।
ओइगुलि सब मायामय रूपे, फेलेछिलो मोरे अहमिका कूपे।
सेई सब बाधा सराये दयाल, करेछो दीन आतुर।
भावितास आमि लिखि बुझि वेश,
आमार कविता भालोबासे देश,
ताइ बेदना दिले हे अशेष!

(हे परम दयालु, भगवन्!) तुमने मेरा मान, यश, धन, स्वास्थ्य, सब लेकर, झूठे अहंकार को चूर-चूर करने के लिये मुझे सब प्रकार से कंगाल कर दिया। इस माया की भूमि में मैं उन सबको लपेटे अहंकार के कुएँ में पड़ा था। तुमने वह सब बाधा हटाकर मुझे दीन और आतुर बना दिया (और इस प्रकार अपने पास आने का पथ सुगम कर दिया)। मैं सोचता था कि मैं अच्छा लिखता हूँ, मेरी कवितावली देशवासियों को प्रिय है। इसी कारण तुमने मुझे यह वेदना दी है, जिसका शेष नहीं है! (हे दयालु, मुझे अब अपनी शरण में ले लो।)

पूर्वबंग के लोगों को अपना गृह, अपना परिवार, अपना कुटुम्ब बड़ा प्रिय था। वहाँ की स्त्रियों में स्नेह, ममता और प्रेम का अपार भंडार निहित था। तभी बंगदेश के एक कवि ने कहा था—

बुक भरा मधु बंगेर बधु जल निये जाय घरे,
मां बोलिते प्राण करे आनचान, चोखे आसे जल भरे!

(बंग वधु का अन्तर मधुमय है और वह जल का कलश लेकर जब घर लौटती है तब उसको माँ कहकर संबोधन करने के लिये मन व्याकुल हो उठता है, आँखों में जल भर आता है।)

पूर्वी बंगाल में लड़कियों को शिव-पूजा करके अच्छे पति पाने के लिये और लड़कों को संयमी, सच्चरित्र और देशसेवक होने के लिये शिक्षा दी जाती थी। पश्चिम बंग की तरह वहाँ लड़के-लड़कियों को 'सोसाइटी बॉयज़ एण्ड गर्ल्स' बनाने की चेष्टा बहुत ही कम की जाती थी। वहाँ के धनी-मानी, राजा लोग भी नंगे बदन सिर्फ धोती पहन कर सबसे मिलते-जुलते थे। धार्मिक-भावनाओं में राधा-कृष्ण और काली का असीम प्रभाव था। आलोक और अन्धकार, जो विश्व को आवृत करता है, उसकी तुलना की जाती थी राधा-कृष्ण से और काली को जगत् की शक्ति-स्वरूपिणी समझा जाता था। काम-वासना, देह की लिप्सा जरा-मृत्यु में समाप्त हो जाती है। कृष्ण-भक्ति कभी समाप्त नहीं होती, कभी निःशेष नहीं होती, वह तो बढ़ती जाती है।

कवि अतुलप्रसाद सेन ने पूर्वी बंगाल में जन्म-ग्रहण किया था और विलायत से बैरिस्टर बन कर कुछ सामाजिक कारणों से, अपना निवासस्थान विक्रमपुर छोड़कर, लखनऊ आकर वकालत पेशा अपनाया था और उनको बड़ी सफलता मिली थी। उत्तरप्रदेशवासियों ने उनको एक सफल वकील के रूप में देखा है, परन्तु बंगवासियों ने उनको एक महान् कवि के रूप में ही परम समादृत किया है। लखनवी अचकन और साफा, चूड़ीदार चुस्त पायजामा, कलकत्ता पहुँचते ही ढाकाई शान्तिपुरी चुन्नटदार धोती, चुन्नट किये हुए कुर्ते में रूपांतरित हो जाता था और लखनवी उर्दू ज़बान ढाका विक्रमपुर की देहाती बोली में परिणत हो जाती थी। जो कुछ हो, अतुल बाबू कहते—"बंग देश हमारी जन्मभूमि है और उत्तरप्रदेश (तब संयुक्त प्रदेश) हमारी अन्न-भूमि है। दोनों मेरे लिये समान पूज्य हैं।"

कविवर द्विजेन्द्रलाल राय जिनको बंग-भाषा का सर्वश्रेष्ठ नाटककार माना गया है, वे संगीत साधक तपस्वी, मनीषी दिलीपकुमार राय के पिता थे। उन्होंने पूर्व बंग-रूप का इस तरह वर्णन किया है—

...कोथाय एमन हरित क्षेत्र
आकाश तले मेशे,
एमन धानेर ऊपर ढेऊ खेले जाय
बातास काहार देशे।

किस देश में ऐसे विराट्, श्यामल क्षेत्र हैं, जो क्षितिज पर आकाश से मिलते हैं? और धान के क्षेत्ररूपी सागर में हवा से ऐसी तरंगों का खेल और कहाँ होता है?

कविवर हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय और नवीनचन्द्र सेन ने भी बंगदेश के

शस्यश्यामला रूप का महत्त्व विशदरूप में वर्णन किया है और उस रूप का आधार था पूर्वबंग का प्राकृतिक सौन्दर्य।

फिर तो गोविन्ददास, सत्येन्द्रनाथ दत्त, रजनी सेन, नजरुल इस्लाम, कुमुदरंजन मल्लिक, कालिदास राय, आदि बंग-भाषा के गण्यमान्य कवियों और साहित्यिकों ने पूर्वबंग की अनुपम हरीतिमा और नैसर्गिक रूप का वर्णन विशेषकर किया है, क्योंकि पश्चिमबंग की वारेन्द्र भूमि में बर्दवान, मेदिनीपुर, वीरभूम आदि जिलों में पूर्वबंग का प्राकृतिक सौन्दर्य देखने को नहीं मिलता और पश्चिमबंग की जमीन न उतनी उपजाऊ है और न उतना पानी ही खेत को मिल सकता है। पश्चिमबंग की बीहड़ रेतीली जमीन पूर्वबंग जैसी उपजाऊ और उर्वरा नहीं है।

पूर्वी बंगाल का एक और दृश्य। महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर ने अपने कनिष्ठ पुत्र रवीन्द्र नाथ को पाबना और राजशाही जिले में जाकर डेरा शीलाईदह और पतिशर में रहकर जमींदारी की देखभाल करने को भेजा था। कवि शीलाईदह के डेरे की कोठी में ज्यादा दिन न रहकर पूर्वी बंगाल की सबसे बड़ी नदी पद्मा के विशाल वक्षपर तैरते बजरे में रहते थे। उन दिनों वे प्राकृतिक दृश्यों से विमोहित हो कर कविता-रचना में संलग्न रहे। उस अथक साधना ने तरुण रविबाबू को विश्वकवि रवीन्द्र नाथ में परिवर्तित कर दिया। रवीन्द्र नाथ का यौवनकाल पूर्वी बंगाल में ही व्यतीत हुआ था और उन्होंने वहाँ की प्रकृति की शोभा, नदियों का विस्तार, नारियल-सुपारी की श्रेणियों का सौन्दर्य मूर्त-रूप में देखा था।

चटगाँव के नवीनचन्द्र सेन एक प्रसिद्ध कवि थे और उनके रचित 'रेवतक' और 'पलाशीर युद्ध' काव्य के रूप में बहुत समादृत हुए थे। वहीं के एक और आधुनिक कवि थे शशांक सेन।

महिला कवयित्रियों में मानकुमारी वसु और कामिनी राय ने पूर्वबंग को गौरवान्वित किया था। मानकुमारी की एक कविता का एक अंश—

भाँगियो ना भूल प्रभु, भाँगियो ना भूल।
जे क दिन बेंचे रबो, तोमारे आमारि कबो,
अन्तिमे खूँजिया लबो ओ चरणमूल।
भूले यदि थाकि प्रभु, भाँगियो ना भूल।

कविता का भाव इस प्रकार है—"हे प्रभो, अगर हमने तुमको निराकार न मान कर साकार रूप में माना है, तो हमारे इस भ्रम को तुम न मिटाना। जितने समय तक जीती रहूँगी, तुम्हें अपना कहूँगी, और अन्तिम क्षण में तुम्हारे

चरण में ही आश्रय लूंगो। हे प्रभो, हमारी इस भूल को तुम दूर न करना।"
कामिनी राय की कविता की एक तरंग—

आपनारे लये विव्रत रहिते
आसे नाइ केह अवनी परे,
सकलेर तरे, सकले आमरा,
प्रत्येके आमरा परेर तरे।

केवल अपने को लेकर व्यस्त रहने के लिए कोई पृथ्वी पर नहीं आया। हमलोगों ने जन्मग्रहण किया है, एक ही उद्देश्य से कि सब कोई सबकी सहायता करें अपना स्वार्थं भुला कर।

कीर्तन को बंगाली अपना निजी आविष्कार समझते हैं और उनका कहना है कि बंगदेश ही में पहिले कीर्तन की प्रथा का प्रवर्तन हुआ था।

देशबन्धु चित्तरंजन दास प्रभृति कतिपय विशिष्ट व्यक्ति कीर्तन के प्रशंसक और प्रबल समर्थक थे। उनकी ज्येष्ठ पुत्री अपर्णा राय ने कीर्तन गाने में विशेष ख्याति प्राप्त की थी।

पूर्व-बंग के विख्यात शहर ढाका में संगीत का और वाद्यवादन का एक समय बड़ा समादर था। वहाँ भी कई कीर्तन गानेवालियों ने बड़ी प्रसिद्धि पायी थी। वहाँ के तबलाबादक भी मशहूर थे।

मुसलमान कवियों में जसीमुद्दीन, बन्दे अली मियाँ, मसरफ़ हुसेन और कतिपय पल्लीकवियों ने अच्छा नाम कमाया है, पर हिन्दू कविगण भी अभी तक पूर्वी पाकिस्तान में समादृत होते थे। सैयद मुजतबा अली सिलहट के अधिवासी थे। वह बंगभाषा के विख्यात लेखक हैं। पूर्व-बंग में हिन्दू-मुसलमानों की मातृ-भाषा थी बँगला। इस भाषा में दुर्गा सप्तसती, गीता, कुरान, हदीस छपती थीं और दोनों सम्प्रदायों के लोग पढ़ते थे। उर्दू, फारसी, अरबी बहुत कम लोग जानते थे। साधारण स्तर के आदमी, बंग भाषा के अतिरिक्त और कोई भाषा नहीं जानते थे। मुसलमान कवियों में काज़ी नज़रुल इस्लाम का प्रमुख स्थान है।

हिन्दी कवि रहीम खानखाना कृष्ण-भक्त थे और काज़ी नज़रुल इस्लाम हैं काली के उपासक, महामाया के भक्त। बँगला-काव्य में रवीन्द्र नाथ के बाद ही कवि नज़रुल इस्लाम का स्थान है, ऐसा बहुत लोगों का मत है।

अब तो उनका संगीत सूना पड़ा है, वे और उनकी पत्नी पक्षाघातग्रस्त होकर कलकत्ते में पड़े हैं, कण्ठ नीरव है और लेखनी स्तब्ध। सिर्फ आँखें कभी-कभी खोल कर दुनिया को देख लेते हैं, पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिम बंग सरकार उनको मासिक भरण-पोषण का खर्चा देते हैं।

नजरुल इस्लाम द्वारा प्रतिष्ठित ग्रामोफोन की दूकान 'कल-गीति' उनके दोनों लड़कों की देखरेख में चलती है। लड़कों के नाम हैं सव्यसाची और अनिरुद्ध।

भूतपूर्व केन्द्रीय मन्त्री हुमायूँ कबीर भी पूर्व-बंग फरीदपुर जिले के अधिवासी हैं। यह बंग-भाषा के एक अच्छे कवि माने जाते हैं। आगरा में अकबर की समाधि पर लिखित इनकी कविता 'सिकन्दरा' बड़ी प्रसिद्ध हुई थी। इनकी पत्नी शान्तिदास, एम० ए०, भी ढाका में काफी जनप्रिय थीं। पूर्व-बंग के एक और बड़े नामी मुसलमान कवि हैं अब्बासुद्दीन अहमद। वे शायद अब ढाका रेडियो स्टेशन में काम करते हैं। अब्बासुद्दीन ऊँचे दरजे के कवि भी हैं; और संगीत रचना कर और गाकर उन्होंने बड़ी ख्याति पायी है। आप एम० ए०, बी० टी० हैं, और अध्यापक थे।

गाँवों के चारण-कवि बाउल दोनों संप्रदायों में पाये जाते थे।

हिन्दू वैरागियों और वैष्णव-वैष्णवियों की संख्या पूर्व-बंग में बहुत थी। प्रत्येक बड़े कसबे में उनके अखाड़े प्रतिष्ठित थे। अवधूत भी बहुत पाये जाते थे।

●

प्रवासियों का अनुदान

बंगदेश के साहित्य, भाषा तथा शिक्षा आदि क्षेत्रों में उत्तरप्रदेश से जाकर बसे हुए लोगों का भी प्रचुर मात्रा में अनुदान रहा है, जिनका उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। इनमें प्रमुख थे, उत्तरप्रदेश के ब्राह्मणवंश के अमूल्य रत्न रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी। बंगदेश की उन्होंने देवीरूप में पूजा की थी—आमरण साहित्य-साधना कर और अपने अथक परिश्रम से बंग-भाषा में वैज्ञानिक शब्द-सृष्टि और पारिभाषिक शब्दों का निर्माण करके। बंगीय साहित्य-परिषद् उन्हीं के प्रत्यनों से स्थापित हुई और आजीवन वह उसके प्राण रहे। कलकत्ता विश्वविद्यालय में ऐसे कृती छात्र कम ही हुए हैं। इनके प्रतिष्ठित साहित्य-परिषद् की शाखायें पूर्व-बंग के लगभग सभी शहरों में स्थापित हुई थीं। उक्त शाखायें बंग-भाषा की उन्नति और प्रसार-साधन में महत्त्वपूर्ण योगदान देती रहीं।

रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी और रवीन्द्र नाथ ठाकुर दोनों घनिष्ठ मित्र थे। रामेन्द्रसुन्दर बड़े नम्र स्वभाव के थे और रवीन्द्र नाथ को वह सदा परम श्रद्धा और सम्मान से नतमस्तक होकर प्रणाम करते थे।

रामेन्द्रसुन्दर की षष्टिपूर्ति के अवसर पर रवीन्द्र नाथ ने उनकी जयन्ती मनायी थी और इस अवसर पर बहुत ही सुन्दर और मधुर भाषा में अपनी

रचना लिखकर रामेन्द्रबाबू का अभिनन्दन किया था। उन्होंने स्वयं पढ़ कर उसे उनके कर-कमलों में प्रदान किया था। बंगदेश के गण्यमान्य व्यक्ति उस सभा में उपस्थित थे। रवीन्द्र नाथ ने अपने उदात्त कंठ से सुनाया था—

हे रामेन्द्र सुन्दर,
तुमि सुन्दर, तोमार हास्य सुन्दर।
तोमार लास्य सुन्दर,
हे रामेन्द्र सुन्दर, तोमाय नमस्कार करि।

तुम सुन्दर, तुम्हारा हास्य सुन्दर, तुम्हारा लास्य सुन्दर, हे रामेन्द्रसुन्दर तुमको नमस्कार करता हूँ।

यह था उस अभिनन्दन-पत्र का आरम्भ और वैसी ही निरुपम शब्दावली और काव्य-माधुर्य से मंडित था उसका अन्त। वह अभिनन्दन-पत्र बंग-भाषा भंडार की एक अमूल्य निधि बन गया है।

बंग-भाषा के लिये इतनी सेवा, जिनका प्रधान कार्य था वैज्ञानिक परिभाषा-गठन, और किसी ने नहीं किया।

और एक थे उत्तरप्रदेश से आए हुये वंश से उत्पन्न साहित्यिक वीरेश्वर पाँड़े, जिन्होंने बच्चों के लिये और किशोर बालक-बालिकाओं के लिये पुस्तकें लिखी थीं। उनकी पुस्तकें बहुत समादृत हुई थीं।

यशोहर जिले के, जो अब पूर्वी पाकिस्तान में अवस्थित है, एक नामी जमींदार वंशोद्भव मनमोहन पाँड़े ने कलकत्ते में बँगला रंगमंच 'मनमोहन थिएटर' की स्थापना कर बड़ा नाम और यश कमाया था। युगलकिशोर शुक्ल ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय में पहला बँगला संवादपत्र निकाला था।

कालीशंकर शुक्ल विख्यात अध्यापक थे। उन्होंने ब्राह्मधर्म-ग्रहण किया था। और एक उत्तरप्रदेशीय मातादीन शुक्ल उस समय राजशाही जिले में अस्थायी प्रधान इञ्जीनियर थे।

पूर्व-बंग में हिन्दी का प्रचार बहुत कम हुआ था। मारवाड़ी और हिन्दी भाषा-भाषी वहाँ कम ही जाते थे, परन्तु, जो लोग गये थे, वह लोग बहुत समादृत होते थे और हिल-मिल कर रहते थे।...सब बाज़ारों और क़सबों में हिन्दी समझनेवाले कुछ लोग अवश्य मिल जाते थे।

आधुनिक काल में बँगला भाषा के एक कवि के रूप में जगदानन्द बाजपेयी ने बड़ी ख्याति पायी है। वह आंतकवादी पार्टी में शामिल हो गये थे। अगर वह काव्य-साधना में मग्न रहते तो निश्चय ही उनका यश भारत में व्याप्त होकर विदेशों तक फैल जाता।

उनकी रचित एक कविता की अंतिम पंक्ति विश्व साहित्य में स्थान पाने योग्य मानी गयी थी। वह है—

विश्व यदि चले जाय
काँदिते, काँदिते,
आमि एका बसे रबो
मुक्ति समाधिते।

"मुक्ति पाने के लिये, अर्थात् स्वाधीनता प्राप्ति के लिये, अगर विश्ववासी सब रोदन करते हुए विलीन हो जायँ और मैं अकेला रह जाऊँ, तो भी मैं मुक्ति की वेदी पर अकेला ही बैठा रहूँगा।"

उमापति वाजपेयी एक अच्छे अध्यापक माने जाते हैं। कलकत्ता बालीगंज के व्यवसायी, प्रफुल्ल वाजपेयी को भी साहित्य से प्रेम है।

इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखना जरूरी है कि उत्तरप्रदेश या बिहार में शिक्षित बंगाली भरे पड़े हैं। वकील, डॉक्टर, शिक्षक, पोस्ट-मास्टर, यह सब नौकरी इन लोगों को दी जाती थी, क्योंकि अंग्रेजी का प्रचार बंगदेश में पहिले हुआ और शोषक अंग्रेज लोग इन्हीं लोगों को अन्य प्रदेशों में अपने कारिन्दे बना कर ले गये थे। वे सब लोग अब उतना सुयोग नहीं पा रहें, क्योंकि स्थानीय अधिवासी लोग कृतविद्य हो गये हैं।

ठीक याद नहीं आती, शायद सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय या और किसी ने एक बार कहा था कि बंगाल की अवनति का कारण है कलकत्ता से भारत की राजधानी का अपसारण। अन्य प्रान्तवालों का एक बड़ा सम्प्रदाय यह समझने लगा है कि अंग्रेजी-शिक्षित बंगालियों ने भारत में अंग्रेजी हुकूमत कायम करने में भरसक सहायता की है, जो यथार्थ सत्य नहीं है।

जो कुछ हो, उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बंगदेश में, विशेष कर पूर्व-बंग में बहुत से असाधारण प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा हुए थे, जिन्होंने देश को गौरवान्वित किया है और उसकी ख्याति विश्व के अन्यान्य देशों में पहुँचा दी है।

●

एक महान् सुर-शिल्पी

कलकत्ता शहर। फागुन महीने का एक रमणीय प्रभात। सन् १९०७। कलकत्ता शहर के नाटौर भवन में महाराजा जगदीन्द्रनाथ राय चौधरी बहादुर ने एक संगीत सम्मेलन का आयोजन किया है। शहर के प्रमुख व्यक्ति, बाबू-लोग, राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार आदि महाराजा की मजलिस में बैठे

संगीत-कलाकारों के गाने-बजाने का आनन्द ले रहे हैं। जलसे में इत्र, गुलाब, पान के बीड़े, फूलों के गजरे और उपस्थित महिलाओं और पुरुषों के प्रफुल्लित चेहरे, इन सबने मिलकर एक अपूर्व, मनमोहक दृश्य का सृजन किया है।

कुछ देर बाद धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए एक फ़कीर कन्धे पर झोली लटकाये जलसा-घर के मुख्य द्वार पर उपस्थित हुआ और उसे देखते ही जगदीन्द्रनाथ उठ खड़े हुए और 'आदाब अर्ज़' कर उस फकीर को सादर महफिल में लाकर बैठाया।

आवभगत के बाद जगदीन्द्रनाथ और उनके मित्रों ने फकीर से एक भजन गाने के लिए प्रार्थना की और एक सितार उसके हाथ में थमा दिया। फकीर सितार बजाकर स्वयं गाने लगा—

मन लागो मेरो यार फकीरी में
हाथ में कूंड़ी बगल में सोंटा
चारों मुलुक जगीरी में—

फ़कीर के मधुर कण्ठ-स्वर और उसकी संगीत-क्षमता ने उपस्थित सभाजनों को मोह लिया। संगीत के प्रभाव में सारा विलास-वैभव जैसे फीका पड़ गया।

फ़कीर ने एक भजन गाकर सितार रख दिया और जाने लगा, तब जगदीन्द्रनाथ और उनके मित्रों ने उससे प्रार्थना की कि वह एक दफा अपनी बाँसुरी बजाकर सुना दे। उसने इस अनुरोध को स्वीकार किया।

फ़कीर ने अपनी झोली से बाँस की एक मामूली बाँसुरी निकाली और बजाने लगा। वंशी की ध्वनि क्रमशः बढ़ती गयी और उसने जगदीन्द्रनाथ और उनके मित्रों को अपने मोहपाश में बाँध लिया। वे लोग मन्त्र-मुग्ध होकर सुनते रहे। मौन, गम्भीर और निस्तब्ध सभास्थल में वंशीवादन चल रहा था। जादुई बँसुरिया सबको उड़ाये लिये जा रही थी।

उसी वंशीवादन के साथ-साथ सभाजन एक और अपूर्व दृश्य का अवलोकन कर रहे थे—वंशी-ध्वनि की अग्रगति के साथ ही राजमहल के चारो तरफ के बागों से एक-एक चिड़िया उड़कर कमरे के अन्दर आकर दरवाजों के पल्लों और कार्निसों के ऊपर बैठने लगीं। जबतक फकीर वंशी बजाता रहा, सब चिड़ियाँ बैठी रहीं, दरवाजों और कार्निसों पर स्थानाभाव होते हुए भी। सब लोग आश्चर्य-चकित होकर चिड़ियों का जमघट देख रहे थे और वंशीवादन सुन रहे थे। जब फकीर ने वंशी बजाना समाप्त किया, तब चिड़ियों का झुण्ड भी उड़कर बागों में चला गया।

यह फ़कीर थे सुर-शिल्पी साधु आफताबुद्दीन खाँ। वे सुविख्यात यन्त्र-शिल्पी उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के सगे बड़े भाई थे। इनका परिवार पूर्वी

पाकिस्तान के कोमिल्ला जिले का अधिवासी था, जो बाद में कलकत्ता आया और फिर भारत के अन्य प्रान्तों में रहने लगा।

आफ़ताबुद्दीन खाँ कलकत्ते में परम समादृत और प्रख्यात संगीतज्ञ माने जाते थे। उनका निष्कलंक चरित्र और गम्भीर भगवद्-भक्ति कलकत्ता में इतनी प्रसिद्ध और समादृत थी कि उनको सब लोग 'साधु आफ़ताबुद्दीन' कहकर सम्बोधित करते थे। उनके छोटे भाई उस्ताद अलाउद्दीन बंगदेश में थोड़े दिन ही रहे और फिर रामपुर चले आये। वहाँ उन्होंने संगीत-विद्या का अध्ययन किया और उसकी समाप्ति के बाद वे मैहर के राजा के दरबार में गायक नियुक्त हो गये—तब से वे बंगदेश में कम ही आते-जाते थे और जब वे बंगदेश जाते, तब उनको साधु आफ़ताबुद्दीन का छोटा भाई कहकर परिचित करवाया जाता था।

चिरकुमार और संगीतसेवी साधु आफ़ताबुद्दीन काली-भक्त थे और अधिक समय देवी की आराधना में मग्न रहते थे। वे एक सन्त-सुरशिल्पी थे और उन्होंने अपनी आराध्य देवी की पूजा और आराधना के लिये संगीत को माध्यम बनाया था और निन्दा-प्रशंसा से, यश-धन-मान से यथासम्भव दूर रहते थे।

उन्होंने अपने पिता सदू खाँ से उत्तराधिकार में संगीतविद्या प्राप्त की थी। उनके पिता सदू खाँ अपने समय के देश के सबसे बड़े सितारवादक माने जाते थे और इनकी भगवद्-भक्ति अतुलनीय थी। सदू खाँ के गुरु थे 'सैनीघराने' के विख्यात 'रबाबी' कासिम अली खाँ। कासिम अली खाँ पहले त्रिपुरा के महाराजा के दरबार में थे। फिर भावाल (ढाका शहर के पास) जमींदार के महल में उन्होंने अपना शेष जीवन बिताया था।

सदू खाँ का मकान कोमिल्ला जिले के शिवपुर गाँव में था। उन्होंने अपने ज्येष्ठ-पुत्र आफ़ताबुद्दीन को कोमिल्ला के सुप्रसिद्ध संगीतकार रामधन शील और रामकन्हाई शील के पास रख कर बेला (वायलिन) और तबला बजाना सिखाया था। न्यास-तरंग, दो-तारा और वंशी बजाने का अभ्यास उन्होंने बड़े परिश्रम से किया, पर उन्हें सबसे अधिक ख्याति वंशी-वादन में प्राप्त हुई। जिसने भी उनकी बाँसुरी की आवाज एक बार सुनी वह कभी उसको भूला नहीं पाता था। लोग खान-पान छोड़कर घंटों उनका वंशीवादन सुनते रहते थे। रईस लोग उनको अपने जलसों में लाने की बहुत कोशिश करते, पर वे बहुत कम जलसों में जाते। एकान्त में तन्मय हो कर वे बाँसुरी बजाते तो ऐसा मालूम होता मानो वे अपने आराध्य देवता को सुना रहे हैं, जैसे संसार की मलिनता-क्षुद्रता उन्हें स्पर्श नहीं कर रही है। बंगदेश के गायक गायिका

पाकिस्तान के कोमिल्ला जिले का अधिवासी था, जो बाद में कलकत्ता आया और फिर भारत के अन्य प्रान्तों में रहने लगा।

आफ़ताबुद्दीन खाँ कलकत्ते में परम समादृत और प्रख्यात संगीतज्ञ माने जाते थे। उनका निष्कलंक चरित्र और गम्भीर भगवद्-भक्ति कलकत्ता में इतनी प्रसिद्ध और समादृत थी कि उनको सब लोग 'साधु आफ़ताबुद्दीन' कहकर सम्बोधित करते थे। उनके छोटे भाई उस्ताद अलाउद्दीन बंगदेश में थोड़े दिन ही रहे और फिर रामपुर चले आये। वहाँ उन्होंने संगीत-विद्या का अध्ययन किया और उसकी समाप्ति के बाद वे मैहर के राजा के दरबार में गायक नियुक्त हो गये—तब से वे बंगदेश में कम ही आते-जाते थे और जब वे बंगदेश जाते, तब उनको साधु आफ़ताबुद्दीन का छोटा भाई कहकर परिचित करवाया जाता था।

चिरकुमार और संगीतसेवी साधु आफ़ताबुद्दीन काली-भक्त थे और अधिक समय देवी की आराधना में मग्न रहते थे। वे एक सन्त-सुरशिल्पी थे और उन्होंने अपनी आराध्य देवी की पूजा और आराधना के लिये संगीत को माध्यम बनाया था और निन्दा-प्रशंसा से, यश-धन-मान से यथासम्भव दूर रहते थे।

उन्होंने अपने पिता सदू खाँ से उत्तराधिकार में संगीतविद्या प्राप्त की थी। उनके पिता सदू खाँ अपने समय के देश के सबसे बड़े सितारवादक माने जाते थे और इनकी भगवद्-भक्ति अतुलनीय थी। सदू खाँ के गुरु थे 'सैनीघराने' के विख्यात 'रबाबी' कासिम अली खाँ। कासिम अली खाँ पहले त्रिपुरा के महाराजा के दरबार में थे। फिर भावाल (ढाका शहर के पास) जमींदार के महल में उन्होंने अपना शेष जीवन बिताया था।

सदू खाँ का मकान कोमिल्ला जिले के शिवपुर गाँव में था। उन्होंने अपने ज्येष्ठ-पुत्र आफ़ताबुद्दीन को कोमिल्ला के सुप्रसिद्ध संगीतकार रामधन शील और रामकन्हाई शील के पास रख कर बेला (वायलिन) और तबला बजाना सिखाया था। न्यास-तरंग, दो-तारा और वंशी बजाने का अभ्यास उन्होंने बड़े परिश्रम से किया, पर उन्हें सबसे अधिक ख्याति वंशी-वादन में प्राप्त हुई। जिसने भी उनकी बाँसुरी की आवाज एक बार सुनी वह कभी उसको भूला नहीं पाता था। लोग खान-पान छोड़कर घंटों उनका वंशीवादन सुनते रहते थे। रईस लोग उनको अपने जलसों में लाने की बहुत कोशिश करते, पर वे बहुत कम जलसों में जाते। एकान्त में तन्मय हो कर वे बाँसुरी बजाते तो ऐसा मालूम होता मानो वे अपने आराध्य देवता को सुना रहे हैं, जैसे संसार की मलिनता-क्षुद्रता उन्हें स्पर्श नहीं कर रही है। बंगदेश के गायक गायिका

हिन्दी संगीत के भी प्रेमी थे और हिन्दी के उच्चांग संगीत (क्लासिकल म्यूजिक) विशेषतः ध्रुपद, चौताल आदि को सर्वश्रेष्ठ मानते थे।

एक और जादूगर

फागुन का एक सुहावना वासन्ती प्रभात। विशाल पद्मा नदी का तीर 'बांशी बाजे फुलवने' वंशी फूलों के वनों में बज रही है। एक दुबला-पतला, साधारण-सा आदमी, अपनी बाँसुरी में यह संगीत बजा रहा था और उसकी जादुई बाँसुरिया को सुनने के लिए आबाल-वृद्ध-वनिता आदि का एक जमघट लग गया था। नारियल, सुपारी, बाँस के झुरमुटों में बसा हुआ गाँव था, कुसुमदिया। यह गाँव ढाका जिले के अन्तर्गत पद्मा नदी के तट पर अवस्थित था। इसी गाँव में एक मुसलमान किसान रहता था—कालू मियां। उसकी अपनी कोई जमीन नहीं थी। वह अन्य लोगों के खेतों में 'भागचासी' या 'अधिया' बनकर जमीन जोतता। जब काम न रहता तो कालू मियां अपनी कुटिया के दरवाजे पर बैठ कर बाँसुरी बजाता। बाँसुरी के छिद्रों में हारमोनियम की तरह सरगम के सुर तो नहीं थे पर बारहमासी, बिरहा और 'राखालिया' (गाय चराने वालों के गाने) को वह ऐसी मधुर धुन में बजाता कि सब लोग मन्त्रमुग्ध हो उसे सुनते रहते। वह रात में नदी के तीर एकान्त स्थान पर बैठ कर वंशी बजाता और ऐसा प्रतीत होता, जैसे उसकी वंशी सुनकर नदी के तरंगें नाच रही हों।

गाँव के कुछ भद्रपुरुष उसको कलकत्ता ले आये, और ग्रामोफोन कम्पनी में उसके बाँसुरी-वादन को रिकार्ड कराना चाहा, पर गरीब के वंशी वादन का रिकार्ड कौन करे? पर उसका अपूर्व वंशी-वादन शिल्पाचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और नटगुरु शिशिर कुमार भादुड़ी को बहुत पसन्द आया। कालू मियां अब ठाकुर की कोठी के दालान में बैठकर वंशी बजाता और ठाकुर परिवार के लोग आनन्दित होकर सुनते। क्या स्वर था! क्या समा था! सब आनन्द-विभोर हो जाते। एक दिन गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने मकान से (जो अवन ठाकुर के मकान के सन्निकट था) कालू मियां की बाँसुरी की मधुर ध्वनि सुनी और अपने कमरे से निकल कर दालान में खड़े होकर सुनने लगे गम्भीर मनोयोग के साथ, ऐसा लगा जैसे आज कालू मियां की वंशीवादनकला ने पूर्णता प्राप्त कर ली है और विश्वकवि का शुभाशीष उसे प्राप्त हो गया है। साधना सार्थकता प्राप्त होने के साथ कलकत्ता में उसका समादर प्रचुर मात्रा में बढ़ गया। बहुतों ने चाहा कि कालू मियां कलकत्ता में ही रहे पर वह न रहा। उसको तो पद्मा नदी के किनारे प्राकृतिक सौन्दर्य के गोद में एकान्त में, बैठ कर वंशी बजाना भाया और कलकत्ता महानगरी अपने मोहपाश में उसे बाँधने में

सर्वथा असमर्थ रही। वह अपने गाँव लौट आया और पूर्ववत् वंशी बजाना आरम्भ कर दिया। उसका एक गान था—

सांई तोमार पथ ढेकेछे
मन्दिरे मस्जिदे
मुई से पथे जाइते गेले,
रुख्या दाड़ाय गुरूते मुर्शिदे
तोमार दुआरे नानान ताला,
कोरान, पुरान, तवजी, माला
आमाय देय ना से घरे जेते।—

"हे स्वामी, तुम्हारे घर मैं जाना चाहता हूँ पर तुम्हारे घर जाने का रास्ता मन्दिरों और मस्जिदों ने ढक रखा है और उस रास्ते जाते ही गुरू और मुरशिद लोग मेरा रास्ता चलना रोक देते हैं और भय का प्रदर्शन करते हैं। यह बाधा-विपत्ति झेलते हुए जब तुम्हारे दरवाजे पहुँचा तो देखा तुम्हारे घर के द्वार पर कुरान, पुराण, तवजी (तस्बी) और माला के ताले लगे हुए थे और मुझे गृह-प्रवेश नहीं करने दिया गया।"

कालू मियाँ का दूसरा प्रिय गान था, जो रिकार्ड हुआ था—

—जाति गेलो वाइदार साथे,
जाति गेलो, कूल गेलो, भाँगलों सुखेर आशा रे...

"मेरी जाति खो गयी आवारा (वाइदा नावों के वास करनेवाले आवारा लोग) के साथ रहने पर, कुल नाश हुआ, सुख की आशा न रही, पर हम अपनी साधना में रत रहे।"

पूर्वी बंगदेश में हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदाय के कुछ लोग घुमक्कड़ वैष्णव के रूप में वाउल या आवारा कवि होकर गाँव में घूमा करते और जन-साधारण की धार्मिक प्रवृत्तियों के प्रसार में सहायता करते। हर कसबे में इनके प्रतिष्ठित आश्रम और अखाड़े दृष्टिगोचर होते थे।

●

कुटीर-शिल्पों की भरमार

नारियल के पत्तों की चटाइयाँ, बेंत के बने बैठने के मोढ़े और शीतल-पाटियाँ, साधारण आदमी के लिये होगला पाता की चटाइयाँ बुनना, नारियल और सरसों का तेल निकालने की चक्कियाँ बनाना, घरों और खेती के काम के लोहे के औजार बनाना, ये और सैकड़ों तरह के काम वे लोग करते थे। कई

स्थान उत्कृष्ट कोटि के करघे के बुने कपड़ों के लिये प्रसिद्ध थे। ढाका में मलमल और शंख की चूड़ियाँ बहुत अच्छी बनती थीं। खाने की चीजों में ढाकाई पराठे, कई मिठाइयाँ, विशेषकर इमरती, केले के पत्ते पर जमी हुई रबड़ी, तरह-तरह के केले, खिली और चिउड़ा, ताड़ का गुड़, पक्का कटहल आदि प्रसिद्ध थे। इन सब ने और उसके पुराने ऐतिह्य ने मिल कर ढाका शहर को बड़ा ही जनप्रिय बना दिया था। ढाका के बजरे प्रसिद्ध थे। शीतऋतु में बड़े-बड़े बजरे ढाका से मँगाये जाते थे। इन बजरों में जमींदार लोग सपरिवार अपने राज-पाट को देखने निकल पड़ते थे। कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ जब कभी ढाका या पूर्वबंग की यात्रा पर निकलते तो अधिकतर बजरे में ही नदी किनारे अवस्थान करते थे।

पूर्वी बंगाल का शिल्प 'नक्सी काँथा'

संस्कृत में कथरी को कंथा कहते हैं और बंग भाषा में काँथा। पूर्वी पाकिस्तान में एक सूक्ष्म सूई शिल्प था, जो बहुत विख्यात और चर्चित था, वह थी काँथा सिलाई, माने कथरी सीना। कुछ ग्रामीण औरतें ऐसी प्रवीण शिल्पी थीं कि एक-एक कथरी कई महीने, कई वर्षों में सिल पाती थीं और उसकी सिलाई इतनी बढ़िया और सूक्ष्म होती थी कि यह समझना मुश्किल था कि वह सिली गयी है या मशीन से बुनी गयी है। इस दीर्घकालीन कठिन अध्यवसाय और घोर परिश्रम के लिये ही शायद संस्कृत भाषा में एक प्रसिद्ध प्रवादवाक्य की उत्पत्ति हुई है—"शनैः पंथा शनैः कंथा, शनैः पर्वत-लंघनम्" अर्थात् धीरे-धीरे अथक परिश्रम से ही दुर्गम पथ का अतिक्रमण (पंथा = रास्ता), सूक्ष्म कंथा सीना (कंथा = कथरी) और दुर्गम पर्वत-आरोहण सम्भव होता है। शिल्पाचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने कंथा-शिल्प या कथरियों के बहुत से नमूने संग्रह किये थे। वे अपने संग्रहीत काँथा के नमूने एक कमरे में बहुमूल्य निधि के रूप में सजा कर रखते थे और बड़े आदर के साथ सबसे उन्हें देखने का आग्रह करते थे। उन कथरियों में पहाड़-पर्वत, झरना, नदी, हाथी, घोड़ा, बाघ, सिंह, मोर, सारस, बिल्ली, कुत्ता आदि-आदि सूक्ष्म सूई-कार्य से अपूर्व स्वाभाविक सौन्दर्य के साथ बनाये गये थे। कहा जाता है कि उनके पास ऐसी एक कथरी थी, जो पहली बार देखने पर बहुमूल्य दुशाले जैसी मालूम पड़ती थी और वे उसको खुद इस्तेमाल करते थे। यह कथा प्रचलित है कि सम्राज्ञी इसाबेला को बहुत बढ़िया नक्क़ासीदार एक विचित्र कथरी उपहार के रूप में दी गयी थी। यह कथरी दुनिया में सर्वश्रेष्ठ शाल व दुशाले से बढ़ कर मानी गयी थी। पूर्वी बंगदेश में एक जिला है, जिसका नाम है सिलेट (बंगभाषा में लिखते हैं श्रीहट्ट)। वहाँ एक विधवा औरत ने अपने बाल्यकाल, विवाहोत्सव, ससुर के घर

एक कांथा कलाकृति (मार्ग के सौजन्य से)

जाने, नयी-नवेली दुल्हन की गृहस्थी, पहली सन्तान के जन्म, पति की मृत्यु आदि विषयों पर आधारित चित्रों को सूई-डोरे से सी कर एक कथरी में चित्रित किया था, जो आज तक बेजोड़ मानी गयी है। जैसे उत्तरप्रदेश में 'चिकन' का काम होता है, वैसा ही पूर्वी बंगदेश में औरतों ने इस कंथा-शिल्प या कथरी बनाने की कला की प्रतिष्ठा की थी। शिल्पी महिलाएँ कपड़े के टुकड़ों को फैला कर धीरे-धीरे उन पर अत्यन्त मनोयोग के साथ सूक्ष्म कार्य करती थीं। बरसात के तीन महीने और जाड़े के तीन महीने महिलाएँ इस सूची-कार्य में रत रहती थीं, आहार-निद्रा को भुला देती थीं, तब कहीं कई आकार के नयनाभिराम काँथा बन पाते थे और अमीर-गरीब सब कथरी का उपयोग करते थे। ढाका के बुने 'मसलिन' कपड़े की तरह चित्रित काँथा अब विलुप्त हो कर स्मृति-मात्र रह गयी है।

पूर्वी बंगाल का एक स्वकीय वैशिष्ट्य था, एक अनोखी जीवन-प्रणाली थी। जीवन-निर्वाह का एक सहज-प्राप्य साधन था, चारु-शिल्प और कलाओं का विस्तार था, सुविकसित कुटीरशिल्प और उन्नत संगीत था। ढाका की मलमल और वस्त्र-शिल्प, रसगुल्ला, सन्देश, क्षीर-मिष्टान्न आदि की जनप्रियता, किश्तियों और नावों की यात्रा, किसान, मांझी और मल्लाहों के लोकगीत, मछली पकड़ने वाले मछुए और केवटों का लोक-संगीत, इन सब को मिला कर एक वैचित्र्यपूर्ण और उन्नत प्रदेश का निर्माण हुआ था।

वन्दे मातरम् की गूंज

पूर्वी बंगाल, ज्ञानियों और गुणियों का देश था। सबसे पहले भारत में राष्ट्रीय जागरण का उन्मेष बरीसाल में हुआ। वहीं पहला राजनीतिक सम्मेलन हुआ, जिसमें सुरेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय, विपिनचन्द्र पाल प्रभृति नेताओं ने भाग लिया था, और कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने उस सभा में पहला गान गाया था। बैरिस्टर अब्दुल रसूल उस सभा के सभापति थे। तब अश्विनीकुमार दत्त बरीसाल के मुकुटहीन राजा थे। ऐसा प्रभावशाली नेतृत्व उनका था। उसी सभा में सुरेन्द्र नाथ, विपिन पाल नेतागण पकड़े गये थे। अश्विनी दत्त को उत्तरप्रदेश में नज़रबन्द रखा गया था। उसी सभा में स्थानीय एक नेता मनोरंजन गुह ठाकुरता का पुत्र चित्तरंजन पुलिस के लाठी प्रहार से घायल होकर भी 'वन्दे मातरम्' गाता रहा था।

एक पैसे की कीमत की विदेशी वस्तु जिले भर में नहीं मिलती थी। यहाँ तक कि अंग्रेज की बनायी हुई एक सिगरेट तक नहीं मिल पाती थी। देश-प्रेम की ऐसी लहर वहाँ बह चली थी।

पूर्वी बंगाल के सपूत थे—देशबन्धु चित्तरंजन दास, देशप्रिय जे० एम० सेनगुप्त, विश्वविश्रुत वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु, आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय। इनसे पूर्व कितने ही महामना पण्डितों का पूर्वी बंगाल में जन्म हुआ था। अश्विनीकुमार दत्त, कांग्रेस सभापति अम्बिकाचरण मजूमदार, आनन्द राय, अखिलदत्त, कालीप्रसन्न घोष, बंगाल के सबसे बड़े शिकारी मैमनसिंह के महाराजा सूर्यकान्त आचार्य चौधरी, कवि नवीनचन्द्र सेन आदि। पाबना जिले में एक छोटा-सा गाँव है हरीपुर। उसी गाँव में एक जमींदार ब्राह्मण परिवार था। उसी परिवार ने जन्म दिया है वर्तमान बंगला भाषा-लेखनशैली के प्रवर्तक प्रमथ चौधरी को, और भारतीय सेना के एक समय सर्वोच्चनायक जयन्तनाथ चौधरी को।

बंगभाषा में अभित्राक्षर छन्द के प्रवर्तक महाकवि माइकेल मधुसूदन दत्त पूर्वी पाकिस्तान के यशोहर जिले के सागरदाड़ी गाँव में जन्म ग्रहण किया था।

*

चटगाँव रणाङ्गन बना

१९३० साल। १८ अप्रैल। पूर्वी बंगाल की शैल-किरीटिनी नगरी चट्टग्राम (हिन्दी में चटगाँव) में रात १० बजे परचे बाँटे गये, जिनमें लिखा था "बापू ने प्रेसिडेण्ट ऑफ़ दी रिपब्लिकन आर्मी, चटगाँव ब्रांच' को आदेश दिया है कि एक हफ्ते में चटगाँव को स्वतन्त्र बना दिया जाय और अंग्रेजी हुकूमत खत्म कर दी जाय।"

सूर्य सेन उर्फ मास्टरदा को नेता बनाकर अनन्तसिंह, गणेश घोष, अम्बिका चक्रवर्ती, शान्ति दादा, कल्पना, सुवासिनी, सावित्री, प्रीति ओहदेदार और उनके साथियों ने जोरदार आन्दोलन आरम्भ किया, जिसने समग्र चट्टग्राम जिले को एक रणाङ्गन बना दिया।

तारघर और पुलिस बैरकों में सबसे पहले हमला किया गया, नंगल कोट और धूम रेल स्टेशनों की पटरियाँ उखाड़ डाली गयीं, मेजर फ़ैरेन और दो सिपाहियों को मार डाला गया, मास्टरदा को रिपब्लिकन पार्टी का प्रेसिडेण्ट बनाया गया, महात्माजी के आदेशानुसार सरकारी शस्त्रागार और पुलिस बैरकें रिपब्लिकन पार्टी के कब्जे में आ गये। जिला मजिस्ट्रेट बाल-बाल बच निकला। उसने बेतार के तार से सन्देश भेज कर सरकारी फौज मँगायी और पहाड़ पर धावा बोल दिया।

यह था जलालाबाद पहाड़ी पर हमला, जिसमें क्रान्तिकारियों और अंग्रेजी हुकूमत के बीच घमासान लड़ाई हुई। १८ से २२ अप्रैल तक यह युद्ध चलता

रहा प्रबल पराक्रमी अंग्रेजी शक्ति और गिने-चुने, अनभिज्ञ और पददलित देश-सेवकों के बीच, जिन्हें अभी चार दिन पूर्व ही शस्त्रास्त्र प्राप्त हुए थे। भारतवासियों ने फिर से वीरता, शूरता और प्राण निछावर करने की महिमा की गौरवमण्डित छवियाँ देखीं।

फिर खान बहादुर असानुल्ला पुलिस इन्सपेक्टर को एक १४ वर्षीय किशोर हरिपद भट्टाचार्य ने मार डाला। उसको आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया। सन् १९२८ के जून महीने में ही सरकार को मालूम हुआ था कि चटगाँव शहर को 'डाइनामाइट' से उड़ा देने की योजना बनायी गयी है, जिसके अनुसार चटगाँव के सभी सरकारी दफ्तरों, अदालतों और जेलखानों को बमों तथा विस्फोटक शस्त्रास्त्रों से नेस्तनाबूद कर देने का कार्यक्रम है।

जब जलालाबाद में फौज पहुँच गयी थी, तब मास्टरदा, सूर्यसेन और उनके सहयोगियों को स्थान-परिवर्तन कर गाँव में छिप कर गेरिला युद्ध आरंभ कर देना पड़ा। गहीरा गाँव में क्रान्तिकारियों को फौजों ने घेर लिया।

इसके बाद अंग्रेजों का नृशंस दमन-चक्र शुरू हो गया। अंग्रेजों ने अपने छल-बल से बहुतों को मार डाला, कई को कालापानी भेजा और बहुत लोगों को जेलों में ठूस दिया।

अश्विनीकुमार दत्त और गौरवमय परम्परा

पूर्वी बंग में शायद ही ऐसा कोई जिला हो, जहाँ देश का मुक्ति-संग्राम नहीं छिड़ा और हजारों की संख्या में लोग बन्दी नहीं बनाये गये। विदेशी-वस्त्र और वस्तु का बहिष्कार सबसे पहले वहीं आरम्भ हुआ था, देश-भक्त अश्विनीकुमार दत्त की प्रेरणा से। इन्हीं सब दबावों के कारण गवर्नर सर वैम्पफील्ड फुलर को पद-त्याग करना पड़ा था। इस भारत-मुक्ति-युद्ध में अग्रणी रहे थे बरीसाल, नोआखाली, फरीदपुर, ढाका, मैमनसिंह आदि जिलों के लोग। पहला स्वदेशी आन्दोलन बरीसाल शहर में अश्विनीकुमार दत्त के तत्वावधान में हुआ था। उन्होंने ही देशी नमक बनाने का सर्वप्रथम प्रयास किया था और मद्य-निषेध के लिए भी उन्होंने अथक परिश्रम किया था। १९०२ से बरीसाल शहर की ५२ में से ५१ शराब की दूकानें बन्द हो गयी थीं। उन्हीं के प्रयत्नों के फलस्वरूप हजारों मन विलायती नमक दूकानों से हटाकर नदियों में फेंक दिया गया था। ढाका के प्रबल नवाब सर सलीमुल्लाह् खाँ बंगाल के गवर्नर के बहुत दबाव के बाद भी अपनी जमींदारी में एक तोला नमक बिकवाने में समर्थ न हो सके। यही नहीं, अश्विनीकुमार बरीसाल में विलायती चीनी बिकना भी बन्द कराया था और देशी गुड़ का प्रचार बढ़ाया था। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी

थी कि तत्कालीन जिला मजिस्ट्रेट (अंग्रेज आई० सी० एस०) को मजबूरन अपनी चाय के साथ देशी गुड़ का इस्तेमाल करना पड़ा था, क्योंकि एक रत्ती चीनी शहर में कहीं नहीं मिली।

पूर्वी बंग के राजनीतिक आन्दोलन और अश्विनीकुमार दत्त के कार्यकलाप के पर्यवेक्षण के लिए भारत सचिव लार्ड मोरले ने संसद्-सदस्य कीयर हार्डी को भेजा, जिन्होंने अपनी रिपोर्ट में अश्विनीदत्त का एक अत्यन्त प्रभावशाली, त्यागी जननेता के रूप में उल्लेख किया था। पर वह रिपोर्ट रद्दी की टोकरी में फेंक दी गई और १९०३ में अश्विनीकुमार को बंगाल से निष्कासित कर लखनऊ जेल भेज दिया गया। वहाँ उन्होंने विलायती रूई की बनी रजाई ओढ़ने से इन्कार कर दिया। बाद में उनके लिये साड़ियों की किनारी भरी रजाई बनवायी गयी थी और देशी वस्तुएँ उन्हें इस्तेमाल करने के लिये दी गयी थीं।

वस्तुतः चटगाँव की देशप्रेम की अपनी एक गौरवमय परम्परा थी। चटगाँव के यात्रामोहन सेन (देशप्रिय यतीन्द्रमोहन सेन गुप्त के पिता), मैमनसिंह के महाराजा सूर्यकान्त आचार्य चौधरी, बैरिस्टर अब्दुल रसूल आदि ने देश-सेवक के रूप में कार्य किया था और जेल-यातनाएँ भोगी थी।

गान्धीजी की बरीसाल-यात्रा

विश्वबन्धु बापू जब बरीसाल गये थे, तो वे अश्विनीकुमार के भवन में ही ठहरे थे। वहाँ वे अकेले बैठ कर जब कुछ लिखने लगते तो उन्हें लगता जैसे कोई दरवाजे का पर्दा हटाकर भीतर आ रहा है। पर वे जब पर्दे के पास जा कर देखते, तो कुछ भी नहीं दिखाई देता। महात्माजी ने यहाँ एक कागज के टुकड़े पर लिखा था—"अश्विनी बाबूज स्पिरिट हाण्टेड मी थ्रूआउट माई स्टे" अर्थात् मैं यहाँ जब तक ठहरा तब तक अश्विनीबाबू की आत्मा मेरे आस-पास मँडराती रही। काँच के एक फ्रेम में जड़ा हुआ गाँधीजी का वह वाक्य आज भी सुरक्षित है।

बंगीय जमींदार वर्ग और पारेरहाट राज

३

संयुक्त प्रान्त और अवध में जमींदारी और ताल्लुकेदारी की जो व्यवस्था, नियम-कानून और सुविधा थी, उससे बढ़कर थी बंगदेश की जमींदारी की व्यवस्था और हालत क्योंकि वहाँ परमानेंट सेटिलमेण्ट (पक्का ब्रन्दोबस्त) हो चुका था। जो राजस्व एक बार निर्दिष्ट कर दिया गया था, वही जमींदार राजाबाबू लोगों को देना पड़ता था चार किश्तों में—आषाढ़, आश्विन, पौष और चैत्र महीने में। वह जिस तारीख को देना होता था, सूर्यास्त के पूर्व दाखिल करना पड़ता था। न देने से रियासत नीलाम हो जाती थी और उसकी कोई अपील नहीं होती थी। इसी को कहा जाता था 'सन सेट ला' या सूर्यास्त-कानून। जमींदारों के नीचे होते थे ताल्लुकेदार, पत्तनीदार, हावलादार और बहुत तरह के भू-स्वामी वर्ग।

बर्दवान के महाराजाधिराज की जमींदारी के अन्दर बहुत से राजा, महाराजा, पत्तनीदार थे और ऐसा भी देखा जाता था कि एक छोटी जमींदारी रियासत को बर्दवान के महाराजा या ढाका के नवाब अपने-अपने तालुके का खजाना देते थे। ज़मीन का मध्य स्वत्व करीब बावन श्रेणियों में विभक्त था। बड़ी जटिल थी यह प्रणाली।

वहाँ की भूमि बड़ी उपजाऊ थी, इस वास्ते एक हाथ जमीन को लेकर हाईकोर्ट तक मुकदमा लड़ा जाता था। कोई किसी को एक इञ्च जमीन छोड़ने को तैयार नहीं होता था।

इसी के लिये एक पुरानी कहावत थी "माटी खाँटी" अर्थात् माटी को रखना या खरीदना और अपना पैसा माटी के लिये खरचा करना ही प्रकृत हित का कार्य है। और भी कहते थे माटी का अर्थ होता है 'माटि' अर्थात् माटी ही माँ या जननी है।

यहाँ के सब लोग जिनके पास पैसा था, वे जमीन खरीदने में ही पैसा लगा देते थे। एक अंग्रेज ने कहा था, 'The people of East Bengal invested their every pie in land—which was so kind.' क्योंकि भूमि बड़ी उर्वरा थी। सींचने की जरूरत नहीं थी, ज्वार का पानी काफी था। नीची जमीन में नदी की रेत में सिर्फ बीज के धान छिड़क दिये जाते थे और जितना ज्वार का पानी वहाँ ऊँचा होता जाता था उतना ही धान का पौधा बड़ा होता जाता था। बंग देश, विशेषतः पूर्व-बंग में सरकारी दफ़्तरों में जमीन्दारी सेरिश्तों में, दुकानों के खातों में और स्कूल-कालेजों में बंगाली तारीखें लिखी जाती थीं।

नया बँगला वर्ष पहली वैशाख से आरम्भ होता था और चैत्र के शेष दिन में अन्त होता था। हर साल नया पंचांग निकलता था, जिसे 'पंजिका' कही जाती थी। पूर्व-बंगवासी हिन्दू अपने धर्म को बहुत मानते थे और वही हिन्दू बड़ा आदमी माना जाता था जो अपना धन और शक्ति पूजा-पाठ में तथा ब्राह्मण और द्ररिद्र-नारायण को भोजन कराने में व्यय करता था, उनको वस्त्र देता था और रोगियों की चिकित्सा का प्रबन्ध करता था।

ऐसे राजाबाबू लोग भी थे जो रोज 'शतावृत्ति अतिथि' अर्थात् एक सौ मेहमानों को बिना खिलाये स्वयं भोजन नहीं करते थे।

राजू के पूर्वपुरुष राजा देवी गुलाम कहते थे, मैं देवी का गुलाम हूँ। मेरी रियासत में मालगुजारी देकर, जो कुछ आमदनी हो, बचत हो, वह देवी-पूजा में खर्च कर दो। इसी को वह बड़ा और प्रधान कर्त्तव्य समझते थे। फिर तो उनके बाद जो गद्दी पर आये, वे सदाचारी और त्यागी नहीं रह सके। कलेक्टर, कमिश्नर और उनके मित्र कहे जाने वालों में से बहुतों ने उनको बरबाद किया।

अश्विनीकुमार दत्त ने बरीसाल जिले में सबसे पहले एम० ए० पास किया था। कहा जाता था कि जब यह खबर उनके गाँव में पहुँची, तो वहाँ मेला लग गया था और उनके पिता को 'अन्न-सत्र' खुलवाना पड़ा था। कहा जाता है कि करीब चालीस हजार आदमी उनको देखने आये थे। इसके दो साल पहले कलकत्ता विश्वविद्यालय ने एम० ए० क्लास की शुरुआत की थी।

धीरे-धीरे पूर्व-बंग में जितने स्कूल-कालेज प्रतिष्ठित हुए, उतनी बड़ी संख्या भारत के और किसी प्रान्त में नहीं थी। पूर्व-बंग और केरल प्रदेश को सबसे ज्यादा शिक्षित माना जाता था।

एक बरीसाल जिले में ही करीब तीन-सौ हाईस्कूल और चार डिग्री कालेज थे, उनमें सबसे बड़ा बी० एम० कालेज था, जिसकी छात्र-संख्या उस समय तीन हजार थी।

बरीसाल में छोटी-छोटी रियासतें बहुत थीं, पर बड़े-बड़े भूस्वामी थे मैमन-सिंह जिले में। उनमें महाराजा सूर्यकान्त आचार्य चौधरी, राजा जगतकिशोर आचार्य चौधरी और बाबू ब्रजेन्द्रकिशोर राय चौधरी अगुआ थे।

उस जमाने में देश-सेवा के लिये महाराजा सूर्यकान्त को थोड़े दिन के लिये जेल भी जाना पड़ा था। वैसा ही हुआ था ब्रजेन्द्रबाबू को। लार्ड कार्नवालिस ने बंगदेश में चिरस्थायी जमींदारी या 'परमानेण्ट सेटैलमेण्ट' की प्रथा का प्रवर्तन किया था। जमीन की आय पाने वालों को बंगदेश के सामाजिक जीवन में बड़ा अंश ग्रहण करना पड़ा था। इसका नतीजा भला, बुरा दोनों तरह का हुआ था।

यदि एक ओर वाद्य, चित्रकला, संगीत आदि का विकास बंगदेश के अभिजातवर्ग ने किया था तो, उनके द्वारा गरीब काश्तकार के शोषण ने भी भयंकर रूप धारण कर लिया था। सबसे ज्यादा प्रजाजन का पीड़न और अहित करते थे अभिजातवर्ग के कर्मचारीगण, उनके कारिन्दे और अहलकार।

कलसकाठी में बरीसाल जिले के सबसे धनी जमींदार थे बाबू विश्वेश्वर राय चौधरी। वे उच्चकुल के ब्राह्मण थे और बड़े दानी और कर्मकाण्डी थे। रात चार बजे उठ कर तालाब में जाकर नहाते और पानी में खड़े हुए दो घण्टे तक दुर्गा-सप्तसती का पाठ करते। फिर नाश्ता करते थे एक मुट्ठी भर कच्चे चावल और आध सेर पानी का। नंगे बदन सिर्फ एक छोटी सी धोती पहनते थे। कहीं कलेक्टर, कमीश्नर या गवर्नर के दरबार में जाने के समय गर्मी में गले में एक चद्दर और जाड़े में एक ऊनी शाल डाल लेते थे। उनके दीवान फर्स्ट क्लास में चलते, पर कलसकाठी के महाराज थर्ड क्लास में एक शीतलपाटी बिछाकर, उस पर नंगे बदन एक धोती पहिने, सोने का बना हुआ छोटा-सा नारियल सदृश्य हुक्का पीते-पीते जाते थे। राजू के पिता और पितामह से उनका घनिष्ठ परिचय था।

विश्वेश्वर राय चौधरी दोपहर को खाना खाते थे करीब एक सौ आदमी के साथ। मोटे चावल का भात, थोड़ा गाय का घी, मसूर की दाल, दो तरह का छोटी मछलियों का झोल या शोरबा। दूध की कोई चीज नहीं, कच्चे नारियल

की गिरी बारीक कटी हुई और खजूर के रस का बना हुआ दानेदार गुड़। कभी जन्म भर चाय-बिस्कुट उन्होंने छुआ तक नहीं था। पर इन्हीं विश्वेश्वरबाबू ने अपने पितृ-श्राद्ध और लड़की के विवाह में उस जमाने में चार-चार लाख रुपया खर्चा किया था, जिसको देखकर कलकत्ते के अभिजातवर्ग आश्चर्यचकित रह गए थे। त्रिकालिक पूजा-पाठ में और गरीब ब्राह्मण पंडितों को आर्थिक संकट से उद्धार करने में ही उनका अधिक समय बीतता था।

●

बरीसाल जिले में चार सब-डिवीजन थे; सदर, पिरोजपुर, पटुआखाली और भोला। बंगदेश में तहसील नहीं होती थी, होते थे सब-डिवीजन। हर सब-डिवीजन में, उस जमाने में एक आई० सी० एस० सब-डिवीजनल आफीसर होता था और तीन प्रथम श्रेणी के डिप्टी कलेक्टर और तीन मुसिफ। इसके अलावा एक सब-ट्रेजरी, एक सब-जेल, एक अस्पताल और दो-सौ वकील और करीब उतने ही मुख्तार होते थे। बार एसोसियेशन और मुख्तार एसोसियेशन की बिल्डिङ्ग अलग-अलग, बाजार, सिनेमा, छोटा-सा टाउन हाल, हर सब-डिवीजनल टाउन में एक-एक गवर्नमेण्ट हाईस्कूल, बड़े सब-डिवीजनल टाउन में डिग्री कॉलेज अवश्य होते थे। संयुक्त भारत में पूर्व-बंग ही जनसंख्या और घनी बस्ती के लिये विख्यात था। अब उसका स्थान केरल ने ले लिया है। एक-एक सब-डिवीजन की जनसंख्या करीब सात-आठ लाख होती थी। जहाँ-जहाँ जिला बोर्ड था और पी० डबलू० डी० के रास्ते होते थे, वहाँ मोटर बसें चलती थीं। दरियाई मुल्क होने के कारण वहाँ रास्ता बनाना आसान काम नहीं था। मिट्टी डालकर ऊँचे रास्ते बनाये जाते थे। जहाँ समतल भूमि मिलती, वहाँ रास्ता बनाना बड़ा आसान था। हाट-बाजार में आदमी आते थे गाँवों में छोटी-बड़ी और मालवाही बड़ी-बड़ी बीस-पचीस मल्लाहों की नावों में। बड़े-बड़े मुकामों में कार्गो स्टीमर या मालवाही जहाज आते थे—माल लेकर, और यात्रीवाही जहाज या पैसेंजर स्टीमर यात्री लेकर। नदियों में जहाज और नावें सदैव दिखाई देती थीं; इस कारण पानी में डूबने का डर भी कम हो जाता था। पानी अधिक होने के कारण वहाँ के अधिवासी मर्द, औरतें और बाल-बच्चे सब सहज ही में अच्छी तरह तैरना सिख जाते थे।

करीब सब के घरों में पूकुर या पोखरा होता था और अमीर घरों में बड़े-बड़े तालाब जिनको 'दीघी' (संस्कृत में दीर्घिका) कहते हैं, होते थे। उनमें तरह-तरह की मछलियाँ पाली जाती थीं। भादों महीने में छोटे-छोटे मछली के बच्चे

पोखरों में छोड़ दिये जाते थे, और वे एक साल में बड़ी-बड़ी मछलियाँ बन जाती थीं आध मन, एक मन वजन की।

बंगालियों में ऐसे परिवार थे जहाँ मछली खायी जाती थी पर गोश्त नहीं खाया जाता था। कुछ परिवारों में पाति हाँस (छोटे बत्तक) का मांस और अंडे खाए जाते थे, पर मुरगी का गोश्त या अंडे वर्जित थे।

नवद्वीप, चन्द्रद्वीप, बाकला के बड़े बड़े पंडित, महामहोपाध्याय, न्यायरत्न और तर्कवागीश पारेरहाट राजमहल में आते थे और उनको सीधा दिया जाता था खाने के लिये, जिसमें परिमित चावल, दाल, तेल, घी, मसाला और मछली दी जाती थी। ये पंडित महोदय लोग स्वपाक खाते थे, किसी और की बनायी रसोई वे नहीं छूते थे, खाना तो दूर।

गोबर से लिपी-पुती रसोई में अपने हाथ से लोग भोजन बनाते थे, जिसमें मछली और कभी-कभी बलिदान किया गया बकरे का मांस रहता था और भोजन में प्रवृत्त होने के पूर्व वे अपने इष्टदेवता को निवेदन या उत्सर्ग करते थे।

विद्या का प्रचार और चारु कलाओं का प्रसार सबसे ज़्यादा पूर्व-बंगदेश के सवर्ण हिन्दुओं में हुआ था। थोड़े से इने-गिने मुसलमानों ने भी इसमें भाग लिया था, पर इनका बड़ा भाग और अन्त्यज जाति नमः शूद्रों का करीब-करीब समूचा भाग कृषिकार्य में लिप्त रहता था। मजबूत किसान श्रेणी (sturdy peasantry) इन्हीं लोगों को कहा जाता था।

पूर्व-बंग में परिगणित जातियों में सबसे बड़ी संख्या थी नमः शूद्रों की। इनकी श्रेणी से पाकिस्तान के भूतपूर्व कानून और श्रम-मंत्री जोगेन्द्रनाथ मंडल, बरीसाल जिले के अधिवासी थे और एक दरिद्र परिवार में उनका जन्म हुआ था। जन-नेता अश्विनीकुमार दत्त और नेताजी सुभाषबाबू के परिवार की सहायता से उन्होंने वकालत पास की थी, पर उन लोगों के आदर्श को भुलाकर वे, मुसलिम लीग में शामिल हो गये थे। बाद में अपमानित होकर वे पुनः भारत लौट आये।

पूर्व-बंग में एक उच्च मध्यमवित्त श्रेणी (अपर मिडिल क्लास) देखने में आती थी, जो उच्चशिक्षा-प्रेम, चारुकला-अनुराग, संगीत-नाट्यशास्त्र का प्रसारण और जन-हितकारी कार्य करने का आग्रह आदि सद्गुणावली से अलंकृत थी, और वैसी श्रेणी भारत के अन्य प्रान्तों में या पश्चिम बंगदेश में देखने को नहीं मिलती थी।

विद्यानुराग, साहित्य और कला-प्रेम ने उन लोगों को बहुजन समादृत और आदरणीय बना दिया था। पूर्व-बंग में अभिजात श्रेणी में बी० ए०, एम० ए०

और बार-एट-ला, तक पाये जाये जाते थे, जब भारत के अन्य प्रान्तों में अभिजातवर्गों में कोई मेट्रिक पास मिलना मुश्किल था।

राजसाही जिला अब पूर्वी पाकिस्तान के अन्तर्गत है। वहाँ बड़े-बड़े महाराजा, जमींदार थे। नवाबी के दिनों में तो नाटौर की महारानी रानी भवानी सबसे ज्यादा मालगुजारी देती थीं। इनके महल को पचपन लाख मालगुजारी देनेवाली का महल कहा जाता था।

उनके लड़के महाराज रामकृष्ण बड़े दानवीर थे। मालगुजारी न देने के कारण उनके राज का एक-एक परगना नीलाम हो जाता था। और वे अपनी इष्टदेवी भवानी के सामने बड़ी धूमधाम से पूजा देते और दरिद्रों को बहुत अर्थदान करते थे और इष्टदेवी से कहते थे कि उनका सब वैभव और ऐश्वर्य लेकर उनको भव-बंधन से मुक्त कर दें।

इसके बाद बहुत युग बीत गये थे। नाटौर में बड़े जोर का भूकम्प आया और राजप्रासाद और शहर गिर कर लुप्त हो गया। फिर इसी वंश के महाराज जगदीन्द्रनाथ राय ने कलकत्ते में रहना आरम्भ किया था।

बंगदेश के जमींदार, राजाओं का तभी से पतन हुआ, जब से उन्होंने अपना इलाका, अपना गाँव और भूस्वामी का कर्तव्य कार्य भुलाकर कलकत्ते में रहना शुरू किया था। परार्थे दान का मंत्र विस्मरण करके विलासपूर्ण जीवन बिताने में वे लग गये थे। अपना पूर्व गौरव वे खो चुके थे।

बंग-देश में बहुत से उत्तरप्रदेश और पंजाब से आये हुए जमींदार, राजा थे। सबसे बड़े थे बर्दवान के महाराजाधिराज। ये लोग खत्री थे। कपूर उपाधि थी पर अपनी एक पृथक् उपाधि या पदवी 'महताब' उनलोगों ने बना ली थी; क्योंकि महताबचन्द जब महाराजाधिराज थे, तब बर्दवान स्टेट की बड़ी उन्नति हुई थी और जमींदार होते हुए भी नौ तोपों की सलामी मिलती थी। बंग-देश में दो सामंत राजा थे, कूच-बिहार और त्रिपुरा। परन्तु बर्दवान के महाराजाधिराज जमींदार होते हुए भी उनकी आय उन दोनों सामन्तों से ज्यादा थी। इस कारण हैसियत के हिसाब से बर्दवान को बंग-देश में पहली कुरसी मिलती थी।

●

कान्यकुब्ज राजाओं में पारेरहाट, सरकुटिया, कोमिल्ला, तिवारी स्टेट, महिषादल, लालगोला, काँदी प्रभृति पुराने माने जाते थे।

पारेरहाट राज

उत्तरप्रदेश का एक परिवार क़रीब दो शताब्दी पूर्व बंग-देश में बस गया था। पारेरहाट राज परिवार के बारे में बंगाल रेवेन्यू बोर्ड के कागज़ातों में लिखा है—

"...the property (Parerhat Raj) is about two centuries old, which was created by the present proprietor's ancestor Rajah Devi Gulam, who came from the United Provinces, in the employ of the late rulers of Murshidabad, and which was once the biggest property in the district,......" (Vide Backerganj Collector's Report dated 26. 11. 1937.)

राजा देवी गुलाम जी का जन्म उन्नाव जिले के सुप्रसिद्ध ग्राम डौंड़ियाँखेरा में हुआ था। उन दिनों भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन चल रहा था। प्रजा अत्याचारों से त्रस्त थी और डौंड़ियाँखेरा कई बार आग से जलाया जा चुका था। राजा राव रामबक्स पकड़ लिये गये थे और सैकड़ों मनुष्य मौत के घाट उतारे जा चुके थे। समृद्धिशाली ग्राम श्मशान में परिणत हो गया था। उस समय देवी गुलामजी अपनी धर्म-पत्नी कमला देवी को लेकर भाग्यान्वेषण के लिये निकले और पटना होते हुए बंगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद पहुँचे थे।...वहाँ के नवाब के यहाँ उनकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई थी और कालान्तर में राजा की पदवी प्राप्त कर वह पारेरहाट राज के जो पूर्व-बंग के बरीसाल ज़िले में स्थित था, अधिपति बने थे। पूर्वी पाकिस्तान सरकार ने देश-विभाजन के बाद उस पर कब्जा कर लिया। पाकिस्तान बनने के पूर्व कभी-कभी नाबालिगी के कारण कोर्ट ऑफ वार्डस ने रियासत के संरक्षण का प्रबन्ध किया था।

राजा देवी गुलाम को जो इलाका मिला था, वह घने जंगल से समाच्छन्न था। देवी गुलाम बड़े ही साहसी पुरुष थे। उन्होंने जंगल कटवा कर करीब पाँच वर्ग मील जमीन को समतल बनवा कर कचा नदी के किनारे बाजार, पाठशाला, वैद्यक अस्पताल और बीच में राज-महल बनवाया था। बरीसाल शहर में कालीबाड़ी और नदी में पक्का घाट बनवाया था। नदी में पहला जहाज 'सरोजिनी' स्टीमर कलकत्ते के ठाकुर बाबूलोग और एक अँग्रेज ने मिलकर चलाया था। जहाज चलने के पूर्व इस प्रान्त में नौका या किश्ती में चलना ही यात्रा का एक मात्र साधन था।

पहले स्टीमर या जहाज में कोई चढ़ना नहीं चाहता था। मशीन से चलाया हुआ जहाज जब नदी के जल में तैरता हुआ दिखाई पड़ता, तो गाँववाले नदी के किनारे खड़े होकर कहते, 'अग्निबोट चला जा रहा है, पूजा चढ़ाओ।' कुछ दिन तक जहाज के लिए यात्री नहीं मिलते थे। फिर साहब और ठाकुर बाबू कम्पनी ने, जिसका नाम 'कार टैगोर' कम्पनी हो गया था, रूमाल और 'सन्देश' मिठाई पैसेंजरों में बाँटने का प्रबन्ध किया था। गर्मी के दिनों में 'डाब' का पानी पिलाने का, जाड़े के दिनों में कम्बल और कथरी बाँटने का प्रबन्ध करने के बाद यात्री लोगों ने जहाज से यात्रा प्रारम्भ की थी। बहुत से पैसेंजर स्टीमर के कल पुर्जों की पूजा करते थे। बाकायदा धूप, दीप, अक्षत और प्रसाद का उपयोग करते थे। धीरे-धीरे उस देश में जहाज ही यात्रा का साधन बना, जैसे उत्तर प्रदेश में रेल।...कहा जाता है कि रेल की भी यही हालत थी जब पहले पहल रेल चलनी शुरू हुई थी।

देवी गुलामजी की मृत्यु बयासी वर्ष की उम्र में हुई थी। देवी गुलाम बड़े दाता, परोपकारी और महाप्राण प्रतापी पुरुष थे, वे जिले भर में सर्वजन-मान्य और प्रिय थे।

देवी गुलामजी फल-फूल मेवा की डाली अंग्रेज और मुसलमान अफसरों को भेज दिया करते थे। घर में, अन्दर महल में या श्रीनिवास में, चमड़े के जूते पहन कर कोई नहीं जा सकता था। काठ की खड़ाऊँ पहन कर या नंगे पैर जाना पड़ता था। अन्दर महल से निकल कर खड़ाऊँ रख कर, चमड़े के जूते पहने जाते थे। चाय, काफी, सिगरेट, यह सब तब थी ही नहीं। राज परिवार में, कान्यकुब्ज ब्राह्मण होने के नाते, हुक्का पीना वर्जित था। परन्तु बंगदेश के प्रथानुसार चाँदी के मढ़े हुए नारियल के हुक्के ब्राह्मण, कायस्थ, व्रात्य और मुसलमान अतिथियों के लिये कचहरी या दरबार गृह में रखे रहते थे। अतिथि-सत्कार भली-भाँति किया जाता था। गोश्त, मछली राज परिवार के जो लोग खाते, उनके लिये बाहर हफ्ते में दो दिन बनता और जिन बर्तनों में गोश्त और मछली बनायी जाती थी, वह फिर अन्दर कभी नहीं लिये जाते थे। दो-चार दिन बाबूलोग बाहर शतरंज, ताश, पासा, और नाव की दौड़ में बिताते और फिर अन्दर महल में प्रवेश करने के पूर्व नहा-धोकर, गंगाजल छिड़क कर देवालय में जाना पड़ता था। वहाँ से लौटने के बाद अन्दर जाने की अनुमति मिलती थी।

इसके बाद गौरी रानी ने राज किया। पति उनके थे राजा ठाकुर प्रसन्न। वह पूजा-पाठ में ज्यादा समय बिताते थे। पूजा में बलिदान की प्रथा उनके समय बहुत बढ़ गयी थी। कार्तिक-पूजा का मेला उन्होंने शुरू किया था।

उन्हीं के जमाने से अँग्रेज अफसरों को खाना परोसने के लिये मुसलमान बावरची रखा गया था।

ठाकुर प्रसन्न के बाद राजर्षि कालो प्रसन्नजी गद्दीनशीन हुए थे। उनको बड़े-बड़े पण्डितों ने 'राजर्षि' की पदवी दी थी।...बाक्ला और नवद्वीप की विद्वत् मंडली में उनका बड़ा समादर होता था।

पुराना महल, बाजार नदी की बाढ़ में ध्वंस हो गया था। उन्होंने पुन: नया बनवाया था। बहुत रुपया इसमें खर्च हुआ था। बंगालियों में सबसे बड़े धनी थे भाग्यकुल के कुछ लोग जो पूर्वी पाकिस्तान के ढाका जिले के भाग्यकुल गाँव में रहते थे। और उन लोगों को सब लोग कुण्डूबाबू कह कर सम्बोधन करते थे। वह लोग अरबपति, खरबपति थे। कई जूट मिलों और कई जहाज कम्पनियों के वे लोग मालिक थे और कलकत्ते से लेकर समग्र बंगदेश के बड़े-बड़े मुकामों में उनकी दूकानें और रुपयों का लेन-देन का कारबार चलते थे। कलकत्ते में वे लोग 'भाग्यकुल के राजा' कहे जाते थे, और उन लोगों की बहुत-सी कोठियाँ थीं। कहा जाता है कि बरीसाल जिले में पारेरहाट और नलछिटी बाजारों में जब से उन लोगों ने अपनी दूकानें खोली थीं और लेन-देन शुरू किया था, तभी से उन लोगों का घर लक्ष्मीजी का निवासस्थान माना जाने लगा था। ये लोग तीन भाई थे। राजा श्रीनाथ राय, राजा जानकीनाथ राय और राय बहादुर सीतानाथ राय। ये लोग पूर्व-बंग के अधिवासी थे। पर समग्र बंगदेश में ये लोग सबसे धनी थे। कहा जाता है कि किसी जमींदार ने अपने शालिग्राम विग्रह को, जिसका नाम था लक्ष्मी-नारायण, रहन रख कर कुण्डूबाबू से रुपया कर्ज लिया था। परन्तु उनकी मृत्यु हो जाने से शालिग्राम की मूर्ति कुण्डूबाबू के पास रह गयी थी और तब से लक्ष्मी की कृपा-दृष्टि उनके ऊपर पड़ी थी। उनका धन इतना बढ़ गया था कि बंगदेश के आधे से ज्यादा राजा, जमींदार उन लोगों के कर्जदार बन गये थे, और उन लोगों को बहुत सी रितासतें कर्ज के रुपये के बदले में मिल गयी थीं।

इनके खानदान में यह प्रवाद प्रचलित था कि बुजुर्गी मकान, जो ढाका जिले के भाग्यकुल गाँव में था, पक्की ईंट का नहीं बनवा सकते थे। इस काम के लिए जब कभी ईंटों के भट्टे लगवाये जाते थे, तभी उनके परिवार में कोई न कोई दुर्घटना घटती थी और पक्की इमारत न बन पाती थी।

फिर तो इन लोगों ने कलकत्ते में चौदह-पन्द्रह कोठियाँ बनवायी थीं और वहीं रहना आरम्भ किया था।

राजा काली प्रसन्न के बाजार में इन लोगों की पुरानी गद्दी थी, जहाँ से कुण्डूबाबू लोगों ने उनकी आर्थिक सहायता की थी, और धीरे-धीरे उन्होंने, बाजार, महल, पक्के रास्ते और पक्के घाट-युक्त कई तालाब बनवाये थे। अपने जीवनकाल ही में उन्होंने कुण्डूबाबू लोगों का कर्ज का रुपया पाई-पाई अदा कर दिया था।

एक दिन राजा साहब स्टेट के काम से अपने बजरे में बैठकर जिले के सदर मुकाम गये थे, तब रेल-जहाज नहीं चलते थे। वहीं अकस्मात् उनकी मृत्यु हो गयी। अपने पीछे वे एक लड़की, जिसकी शादी वह कर गये थे, एक छोटा लड़का और रानी माँ राज लक्ष्मी देवी को छोड़ गये थे।

●

पारेरहाट राजमहल

नदी का नाम था कचा। ढाई मील पाट था उसका। उसके ज्वार-भाटों का प्रवाह, जलराशि का विस्तार, तूफानी हवाओं के झकोरों में उद्वेलित जल का प्रबल वेग, सब मिला कर प्रकृति कचा नदी की एक विचित्र छवि उपस्थित करती थी। देखने में यह दृश्य इतना अपूर्व था कि उसे भुलाया नहीं जा सकता।

कचा के उत्तरी किनारे पर एक सुन्दर, छोटा सा किन्तु समृद्ध कसबा—नाम था पारेरहाट। स्टीमर लगने का घाट और स्टीमर स्टेशन से कुछ ही दूरी पर पारेरहाट राज हाईस्कूल, राजमहल की सीमा में अवस्थित थे। राजमहल का मुख्य फाटक खुलता था पूर्व दिशा की ओर। फाटक के बायें और दाहिने सोलह हाथ चौड़ी और सदैव पानी से भरी नहर थी। नहर में एक छोटी किश्ती में बैठकर पहरेदार सौ बीघे की चहारदीवारी का रात को चक्कर लगाता था। मुख्य फाटक के बाद नाचघर, और नाचघर के बायीं तरफ देवालय और दाहिनी तरफ राज कचहरी, अर्थात् रियासत का दफ्तर था। फिर था हरी घास का लॉन, जिसका दक्षिण भाग उन्मुक्त था। इसके बाद दो मंजिला महल था, जिसके आँगन के सामने सीमान्त पर फल, फूल के बहुत से पेड़ और नहाने तथा पूजा करने के लिये पक्के घाट बने हुये दो जलाशय या पुष्करिणियाँ थीं।

आँगन के बाग में एक हिरन विचरण करता रहता था। इस हिरन का नाम आदुरी था। आदुरी सदा रानी माँ के हाथ से दिये हुए केले और हरी दूब खाता था। हिरन के अतिरिक्त दो मोर थे, तथा एक लंगूर नाचघर के खम्भे में लोहे की जंजीर से बँधा रहता था।
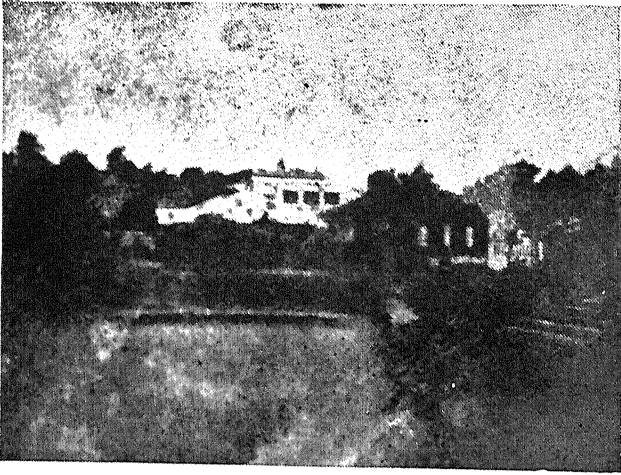
सौ बीघे के नारियल-सुपारी के बगीचे से घिरा हुआ
'पारेरहाट राजमहल', जिसकी अब स्मृति ही शेष है
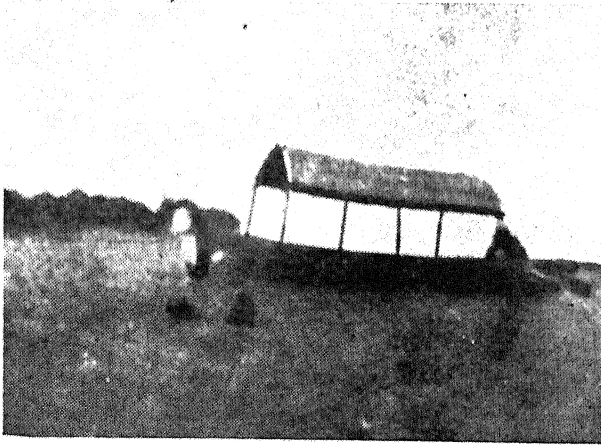
पूर्वी पाकिस्तान की विशाल नदी पदमा
की शाखा कुचा : लहरों से जूझती नौका

महल से निकलने के रास्ते की एक तरफ गौशाला और एक तरफ पचास राज-हंसों के रहने के लिये घर था। पूर्वी बंगाल में गायें छोटे क़द की होती थीं और दूध भी कम देती थीं। इस कारण महल की आवश्यकतापूर्ति के लिए पचीस गायें रखी जाती थीं। तभी बीस-बाईस सेर दूध मिल पाता था।

देवालय में दो ब्राह्मण पुजारी पूजा करते थे। मूर्ति-रूप में स्थापित थे— राम-सीता, काली माई, कृष्ण-राधिका, हनुमानजी, गणेशजी, दो शिव-लिंग और मनसा देवी। ये सब जयपुर के सफेद संगमरमर में प्रस्तुत भव्य मूर्तियाँ थीं। राम-सीता की मूर्तियाँ जयपुर से बन कर आयी थीं दो-दो दफे। वंगदेश में राम-सीता की महिमा का प्रचार कम था। राधा-कृष्ण और काली-माता का वह देश था, जैसे उत्तरप्रदेश राम-सीता का।

हर महीने कोई न कोई मिट्टी की मूर्ति बना कर उसकी पूजा बड़े धूम-धाम से की जाती थी और उसके साथ प्रसाद-वितरण और ब्राह्मण-भोजन भी होता था।

मुख्य फाटक के आस-पास बाहर के कॉटेजों में पुरोहित, पुजारी, राज हाई-स्कूल के हेडमास्टर तथा अन्य दो मास्टरों के सपरिवार रहने का प्रबन्ध था। इन्हीं कॉटेजों में राज के दीवान, अमला तथा कारिन्दों के लिये रहने का भी प्रबन्ध था। महल के बाहर तीन पुष्करिणियाँ थीं। सदर रास्ते के बाजू में सब के पानी पीने के लिये विशाल पुष्करिणी थी, जिसे 'दीघी' कहते थे। जल-राशिपूर्ण गंभीर दीघी का पानी निर्मल और स्वच्छ था और उसमें नहाना या मुँह धोना मना था। नहाने के लिए कचहरी के साथ लगा पोखरा और देवालय के पानी के लिये पुष्पकुञ्ज-समावृत एक दूसरी पुष्करिणी या तालाब था। नाचघर में करीब पाँच सौ कबूतरों ने अपना घोंसला बना रखा था और दिन-रात गुटुर गूँ की आवाज सुनाई पड़ती थी।

महल की दूसरी मंजिल के बरामदे में पिंजड़े में दो लाल चोंचवाले बड़े-बड़े तोते और दो मैना सदैव Good morning, Welcome home, 'नमस्कार', 'प्रणाम', 'चित्रकूट के घाट में भई सन्तन की भीड़' की आवाजें लगाये रहते थे।

सुबह-शाम कबूतर, हरिण और राज-हंसों को चावल और धान बिखेर कर नाचघर के फर्श पर खाना दिया जाता था।

पूजा-पार्वण और तीज-त्योहार

देवालय में सुबह-शाम पूजा होती थी और शंख, घड़ियाल और घण्टों की मधुर ध्वनि से वातावरण मुखरित होता रहता था। मंगलवार और शनिवार को मुख्य

फाटक पर शहनाई बजती थी, और चण्डी-पाठ होता था। अमावस को काली माँ की पूजा होती थी और बकरे का बलिदान होता था। रात को दो-तीन बजे के लगभग खिचड़ी और आमिश प्रसाद वितरित होता था।

रामनवमी और गणेश चतुर्दशी में उत्तरप्रदेश से पंडित आकर पूजा और उत्सव सम्पन्न करते थे। होली में फाग गाने के लिये उन्नाव, रायबरेली के गाँवों से कुछ लोग हर साल पारेरहाट आते थे। इन सबको आने-जाने का खर्चा, बीस-बीस रुपए दक्षिणा और एक-एक जोड़ी धोती और अँगोछा दिया जाता था।

अभिषेक और 'पुण्याह' (वर्ष का पहली मालगुजारी वसूल करने का दिन) होता था असाढ़ महीने में रथयात्रा के दिन। पीतल का रथ, रस्सा बाँध कर पाँच सौ आदमी खींचते थे, और उसमें विराजमान रहती थीं राज परिवार की प्रतिष्ठित मूर्तियाँ—राम-सीता, राधा-कृष्ण और जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा।

रंग और कीचड़ की बौछारों के बीच राजमहल के रास्ते से बाजार तक गुजरता हुआ रथ गाँव के मध्यवर्ती स्थान तक पहुँचता था। तीन दिवस वहाँ रथ रखा रहता था। तीसरे दिन फिर बड़ी धूमधाम और हर्षध्वनि के साथ देवताओं को लेकर रथ वापस राजमहल लौटता था। सुबह-शाम प्रसाद रूप में बतासा, लाई, चिवड़ा सब को बाँटा जाता था।

दुर्गापूजा का क्या कहना है! बड़े उत्साह के साथ तीन दिन की पूजा में पचीस बकरे और तीन बड़े-बड़े भैंसों का बलिदान होता था। बकरे के मांस का प्रसाद बँटता था और भैंसे मोची ले जाता था। बकरे और भैंसे काटनेवाले को रोज पाँच रुपया और एक 'सीधा' दिया जाता था। सीधे में रहता पाँच सेर चावल, एक सेर दाल, हलदी, नमक, मिर्च, तेल और घी और एक बड़ी मछली। तीन दिन के बाद दशहरा के दिन उसको एक जोड़ी धोती और एक अँगोछा दिया जाता था।

पूजा समारोह में गायिका पन्नाबाई का उदात्त कंठस्वर नाचघर की विशाल इमारत की दीवारों में टकरा कर गूँज उठता था :—

आमि तोमार प्रेमेर किबा जानि।
कानू कहे राई, कहिते डराई, धवली चराई मुई।
आमार राखालिया मति, ना जानि पिरीति,
...प्रेमेर पसरा तुई।

गीत क्या था, राधाकृष्ण के शाश्वत प्रेम का वर्णन था! कृष्ण कहते हैं, 'मैं तुम्हारे प्रेम की बात क्या जानूँ? कहते हुए डरता हूँ कि मैं गायें चराता हूँ, मेरी तो ग्वालों की बुद्धि है, प्रेम नहीं जानता। राधा, तुम परिपूर्ण प्रेममयी हो, प्रेम की पसरा अर्थात् मूर्तिमान् प्रेम हो।
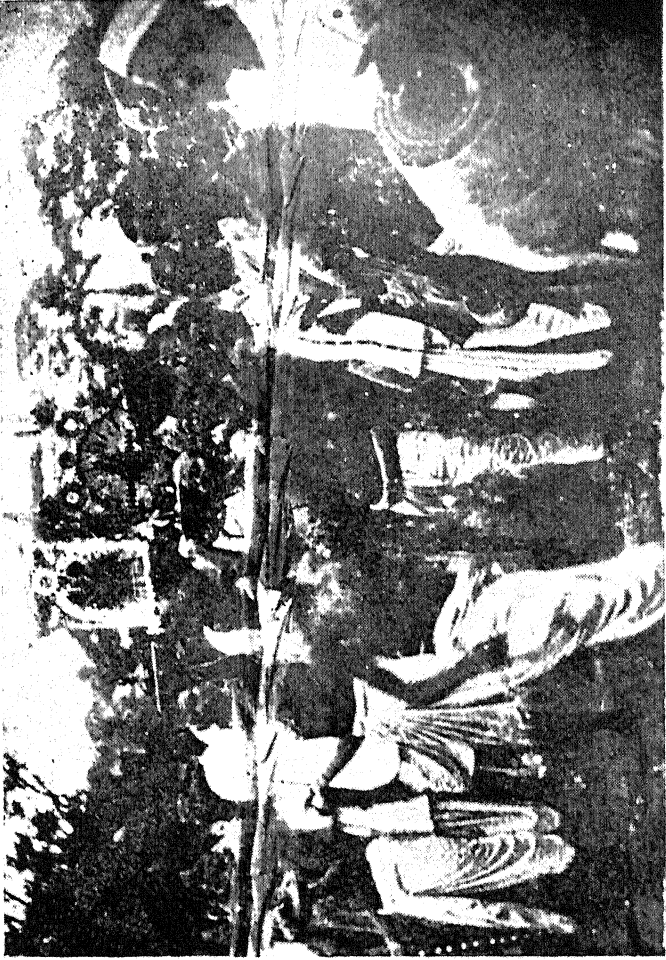
विभाजन से पहले पूर्वी बंगाल में हिन्दू-उत्सव

जैसे गानेवालों में दूसरा सहगल नहीं हुआ, वैसे ही कीर्तन गानेवालियों में पन्नाबाई की बराबरी कोई नहीं कर सकता था। उसका गाना श्रोताओं में पुलक का संचार कर देता था। जब वह राधिका के विरह का वर्णन करते हुए कहती : —

राइ धैर्यम्, राइ धैर्यम्, आमि गच्छामि मथुराय...

तब महफिल में उपस्थित जनों की आँखें राधा के विरहाश्रु से तरल हो उठती थीं।

दुर्गापूजा के बाद पारेरहाट महल में लक्ष्मीपूजा, कालीपूजा, जगद्धात्री-पूजा, कातिकपूजा, वास्तुपूजा, सरस्वतीपूजा और अन्त में चैत्र मास में वासन्तीपूजा विशेष समारोह के साथ मनायी जाती थीं। होली का उत्सव दो तरह से मनाया जाता था। एक बंगदेशीय प्रथा के अनुसार, और दूसरा अवध की प्रचलित रीति के अनुसार। एक और उत्सव बड़े जोर-शोर से मनाया जाता था, वह थी जन्माष्टमी। कभी मूसलाधार वर्षा और कभी रिमझिम पानी में जन्माष्टमी का जुलूस निकलता था और कीर्तन, संगीत तथा मृदंग-वाद्य से सबका मनोरंजन होता था।

सबसे बड़ा जुलूस निकलता था ढाका शहर में। उसमें दो से तीन-सौ तक चौकियाँ रहती थीं। ढाका का जुलूस बहुत कुछ तीर्थराज प्रयाग के दशहरे के जुलूस जैसा मालूम पड़ता था।

लक्ष्मीपूजा की मूर्ति बनाने का अपना ढङ्ग था। केले के पेड़ को साड़ी पहनाकर एक देवी-मूर्ति में परिणत किया जाता था और उसी की पूजा पुरोहित करता था। शरत् पूर्णिमा की ज्योत्सना-प्लावित रात्रि और पूजा का अपूर्व समावेश सबको मन्त्रमुग्ध बना देता था। मध्यरात्रि में महालक्ष्मी-पूजा होती थी।

अमावस की रात्रि में कालीमाई की पूजा बड़े धूम-धाम् से मनायी जाती थी। उसमें बकरे का बलिदान होता था, उसी दिन दीवाली भी मनायी जाती थी। परन्तु बंगदेश में, विशेष कर पूर्व-बंग में, दीपावली उतना वृहत् रूप में नहीं सम्पन्न होती थी जितना उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान और मध्यप्रदेश में।

जगद्धात्री-पूजा भी देवी की सिंहारूढ़ मूर्ति बनाकर की जाती थी। ब्राह्मण-भोजन कराया जाता था और उपस्थित जन समुदाय में प्रसाद वितरित होता था।

कातिक-पूजा में देव-सेनापति कार्तिकेय देव की मूर्ति बनती थी। और उनका वाहन था मयूर...पहले मूर्ति के रूप में बंगाली धोती पहने, नग्न-गात्र

उपवीत तथा उत्तरीय धारण किये एक बंगाली 'भद्र-लोक' के रूप में देव-सेनापति को दिखलाया जाता था। धीरे-धीरे इसमें सुधार हुआ, फिर तो मोर पर आरूढ़ देव-सेनापति तलवार और अस्त्रशस्त्र-सज्जित दिखलाये जाते थे।

पारेरहाट में कार्तिक-पूजा बड़ी धूम-धाम से मनायी जाती थी। उस उपलक्ष्य में महल से कुछ दूर पर मेला लगता था। वह मेला कार्तिक महीने से माघ महीने के अन्त तक चलता रहता था।

नाचघर में रात को आठ बजे गाना शुरू होता, और चलता था सुबह दस बजे तक। यह कभी 'यात्रागान', कभी 'कवि-गान', कभी 'पाँचाली', कभी 'जारी-गान', कभी नटिनियों का नाच-गाना, कभी 'गाजी-गान', कभी कीर्तन-पदावली; और फिर दिन को बारह बजे से चार बजे तक नाचघर में कठपुतली का नाच या कोई जादू का खेल, और फिर मेला से कुछ दूरी पर खुली जगह में घुड़दौड़ होती थी। ऐसा ही क्रम चलता था करीब तीन महीना।...दिन-रात यह उत्सव देखते रहने से बहुत आदमी बीमार पड़ जाते थे। परन्तु साल में एक दफे यह उत्सव देखने और आनन्द उपयोग करने के लिये सब लोग आतुर रहते थे।

'यात्रा-गान' अवध के 'रासधारी' संगीत मंडली से मिलता-जुलता था। मर्द लोग ही नाटक अभिनय करते थे खुली जगह में, और सब आदमी उनके चारों तरफ घेर कर बैठ जाते थे। रामायण-महाभारत या पौराणिक घटनाओं से सम्बन्धित नाटक अभिनीत होते थे। बीच में संगीत और नाच का पुट रहता था।

'जारी' और 'गाजी-गान' मुसलमान लोग करते थे। 'जारी-गान' में हिन्दुओं के देवदेवियों से सम्बन्धित प्रशंसा गीत होते थे। 'गाजी-गान' में महफिल की पश्चिम दिशा में अल्लाह के प्रतीकरूप में एक लाठी, जिसके सिरे पर एक पीतल का गोला लगा रहता था, गाड़ कर हसन-हुसेन या राबिया का क़िस्सा एक अजब तरीके से गा-गा कर सुनाते थे। गाना समाप्त होने के बाद गाजी देवता को गुड़ की 'सिन्नी' चढ़ायी जाती थी और वह हिन्दू-मुसलमानों में बाँटी जाती थी। उसको सब परम भक्ति से ग्रहण करते थे। 'कवि-गान' में दो पार्टियाँ गाती थीं। एक-एक पार्टी में एक-एक कवि होता था। पहले गाना होता था, फिर कवि कविता सुनाता था। और गाने के बाद दूसरी पार्टी का कवि भी कविता सुनाता था। कविता प्रश्नमूलक होती थी। एक कवि प्रश्न करता था और दूसरा कवि उत्तर देकर दूसरा प्रश्न उपस्थित करता था। इसका उत्तर फिर पहली पार्टी के कवि को देना पड़ता था। यह प्रश्नावली रामायण, महाभारत और पौराणिक तत्वों पर आधारित होती थी।

'यात्रा' और 'कवि-गान' की पार्टियाँ पहले राजा लोग भी आयोजित करते थे। जैसे एक ज़माने में भवाल के जमींदार राजा बहादुर कालीनारायण राय चौधरी की यात्रा पार्टी बहुत मशहूर थी।

कठपुतली तो उत्तरप्रदेश की ऐसे ही होती थी। उसके समाप्त होते-होते राज स्कूल के पास के मैदान में चार बजे से घुड़दौड़ आरम्भ हो जाती थी। यह घुड़दौड़, बम्बई, कलकत्ता ऐसे थोड़े ही होती थी। यह तो छोटे-छोटे घोड़ों पर, बिना लगाम, बिना काठी, खाली पीठ पर युवक दौड़ कर चढ़ जाते और करीब एक मील तक खूब भगाते, और जो घोड़ा जीत जाता उसको राज-दरबार की ओर से पचास रुपए और एक बड़ा पीतल का कलश पुरस्कार में दिए जाते थे।

पूजोत्सव में ही राज हाईस्कूल में भी पुरस्कार वितरित होता था और घुड़दौड़ और 'नाव-दौड़' का इनाम बाँटा जाता था। जिले के कलेक्टर या संभागीय कमिश्नर, जो प्रायः अँगरेज़ आई०सी० एस० होते थे, सपत्नीक इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये, दो दिन के लिए पारेरहाट आ जाते, अपने-अपने सरकारी मोटर स्टीमर में खाने, सोने, दफ़तर और नौकरों तथा स्टाफ़ के रहने के अलग-अलग कमरे होते थे। बड़ी ठाठ की सवारी थी, बड़ी शान की। यहाँ उत्तरप्रदेश में ऐसी शान का नदी का सफर कल्पनातीत है।

आतिशबाजी या रवाइस भी छोड़ी जाती थी। परन्तु वह उत्तरप्रदेश की रवाइस से निकृष्ट थी।

साहब-मेमों को बड़ी-बड़ी मछली ताल से पकड़ कर डाली में दी जाती थी। महल में जाकर मेम लोग रनिवास में 'ब्रिज' (bridge) खेलतीं और अच्छी साड़ी या नुमायशी चीजें, और क़ीमती जड़ाऊ गहने 'मेरी पसन्द की है', कह कर ले जाती थीं।

पूस महीने के आखिरी दिन रियासत के सब डेरों में वास्तुपूजा सम्पन्न होती थी। यह पूजा धरतीमाता की थी, जिसमें अन्न पैदा होता था और भू-स्वामी के लिये की जाती थी। उसमें बकरे का बलिदान किया जाता था। संतरे की फांकें, बताशे, केला और बेर का प्रसाद बाँटा जाता था। माघ महीने के अन्त में सरस्वती-पूजा की जाती थी, जो वसन्तपंचमी के दिन होती थी। देवी सरस्वती की मूर्ति बनाई जाती थी। सब कोई पूजा समाप्ति के उपरान्त सरस्वती को पुष्पांजलि देकर जल-ग्रहण करते थे। इसके पहले कोई पानी तक नहीं पीता था। सरस्वती-पूजा के दिन कोई बंगाली कलम-दवात नहीं छूते थे। लोग अपनी-अपनी कलम-दवात साफ कर. सरस्वती के मन्दिर में एक दिन एक रात के लिये रख देते थे। उस दिन बंगाली लोग भात या मछली नहीं

खाते थे। दिन को सरस्वती-पूजा का प्रसाद और रात को लूची, खीर, मूड़ी, मुड़की, खिली, चिवड़ा, दही और दूध की बनी हुई वस्तुओं को ग्रहण करते थे। सरस्वती की मूर्ति, और मूर्तियों की तरह मिट्टी की ही बनायी जाती थी; बड़ी सुन्दर, जीती-जागती प्रतीत होती थी, देखते ही मन में भक्ति का उदय होता था।

चैत में वासन्तीपूजा प्राय: दुर्गा-पूजा की पद्धति से की जाती थी। कहीं चरक-पूजा होती थी। इसमें आदमी की जीभ नाथी जाती थी लोह-शलाका से और बाँस गाड़ कर उसमें चरखी के रूप में उसे घुमाया जाता था। यह प्रथा लेखक के बाल्यकाल में ही समाप्त हो चुकी थी।

फागुन से मधुर दक्षिणी पवन डोलना शुरू होता था। पूर्वी बंगदेश में दक्षिणी वायु बहुत अच्छी मानी जाती थी। उत्तरी हवा शीत काल में बहती थी।

विरहिणी का विरह, प्रेमासक्त का प्रेम, मानव शरीर का उल्लास, स्वास्थ का सुधार, यह सब बातें दक्षिणी हवा से सम्बन्धित थीं--कवि ने कहा है :—

यदि दखिना पवन
आसिया फिरे गो द्वारे,
आजि ना कहिले प्रिय,
कहिबे कबे से कारे ?

हे प्रिय, आज दक्षिणी हवा आकर तुम्हारे द्वार से लौटी जा रही है, आज भी तुम अपने मन की बात न कहोगे तो कब कहोगे ?

स्मृतिपट पर उभरते चित्र—रानी माँ

४

राजमहल के विस्तृत आँगन में एक गौरवर्ण हृष्ट-पुष्ट बालक गेंद खेल रहा था और उसकी माँ एक पालतू हिरन को नरम हरी दूब खिला रही थीं। समय था ग्रीष्म ऋतु का अपराह्न शायद चार बजा हो।

दो नौकरानियाँ आँगन की सफाई में लगी थीं। एक दासी अनार और बतामी नीबू (चकोतरा) तोड़कर लायी थी और उसी का रस बना कर गिलास में भर रही थी। एक माली कुछ केवड़े के फूल के गुच्छे लाया था। उसके रस में कत्था बासा जायगा। यह कत्था पान सुगन्धित करने के लिए व्यवहृत होता था।

पक्के कटहलों का ढेर, हरे नारियल (जिन्हें 'डाब' कहते हैं) और बहुत से 'चालता' (एक तरह का खट्टा फल जो दाल में डाल कर खाया जाता है) और सुखायी हुई सुपारी आधा आँगन ढके पड़ी थीं। हिरन को खिलाकर रानी माँ बत्तखों के लिए आँगन में चावल बिखेर देती थीं। और बत्तखों का झुण्ड उन पर आकर टूट पड़ता था। एक के साथ एक झगड़ता था।

फिर माँ लड़के को लेकर अन्दर महल के तालाब के पक्के घाट पर जाकर बैठती थीं और पली हुई मछलियों में से दो सरदार मछलियों को, जिनके नाम थे लाली और रूती, बुलाती थीं। माँ की आवाज़ सुनते ही दो बड़ी-बड़ी मछलियाँ एक लाल और एक काली, बहुत सी मछलियों के साथ जोर से तैर कर पानी के हिलकोरों के बीच, माँ जी के पास आ जाती थीं। और माँ जी बहुत से लाई, चिवड़ा और खीली पानी में बिखेर देती थीं और सब मछलियाँ खाने में लग जाती थीं। बड़ी दो सरदार मछलियाँ लाली और रुती माँ जी के हाथ से चावल भी खा लेती थीं। वह तो बिलकुल पालतू हो गयी थीं।

इन्हीं सब कार्य-क्रमों में धीरे-धीरे शाम घिर आती थी। महल की बत्तियाँ जला दी जाती थीं। बैठक और नाचघर में तीस-चालीस मोमबत्तीवाला झाड़-फानूस जलाया जाता था, और विशेष उत्सवों में सौ बत्तियोंवाला झाड़। महल में जिस कमरे में रुपया-पैसा, गहना और जवाहिरात रखा जाता था, उसका नाम था लक्ष्मी-कोठा, अर्थात् लक्ष्मीदेवी का घर। उसमें घी का दिया जलाया जाता था। कुछ जगह मोमबत्तियोंवाले शमादान जलाये जाते थे और कुछ जगह मिट्टी के तेल के दीपक।

महल में और राज में माँ जी को रानी माँ कहा जाता था और उनके एकलौते पुत्र को राजाबाबू या राजू कहकर बुलाया जाता था। कलेक्टर और कमिश्नर उनको बुलाते थे, रानी साहिबा और कुमार साहब। रानी माँ हाथ-मुँह धोकर पूजा में बैठती थीं। वह विधवा थीं। दिन में एक ही बार भोजन करती थीं। निरामिष सात्विक आहार; और रात को एक आध केला या कोई फल और एक पाव दूध।

●

राजू की उम्र पाँच वर्ष की हो गयी थी। चार वर्ष, चार महीना और चार दिन के निर्दिष्ट समय पर उसका पाटी-पूजन हुआ और पढ़ाने के लिए एक मास्टर रख दिया गया।

शाम को कपड़े बदला कर एक दासी राजू को लेकर एक कमरे में मास्टर साहब के पास ले जाती थी। एक घंटा पढ़ने के बाद रानी माँ उसको अपने पास बुला लेती थीं। जब राजू और कुछ बड़ा हुआ तो और दो मास्टर नियुक्त किये गये।

इन दिनों रियासत का प्रबन्ध कोर्ट ऑफ वार्ड्स् कर रहा था। मासिक वृत्ति या एलाउन्स रानी माँ को मिलता था, पूजा का खर्चा अलग से।

सुबह दो पंडित महल में आकर माँ जी को दुर्गा-सप्तशती और कवच पढ़कर सुनाते थे, और इसके बाद माँ अपने लड़के के साथ जलपान करती थीं। जलपान होता था जमाये हुए मलाईदार दही में खिली और चीनी मिला कर। गरमी के मौसम में बेल का शरबत पिया जाता था। चाय का प्रचलन बाद में हुआ था।

दो पहर को चावल, दाल, सब्जी, फुलके और गाढ़े दूध का आहार किया जाता था। पूर्वी बंगाल में गेहूँ नहीं होता। चना भी बहुत कम होता था। रियासत के कारिंदे कलकत्ते से हर महीने छः मन गेहूँ और दो मन चने खरीद कर जहाज द्वारा पारेरहाट भेज देते थे।...पूर्वी बंगाल में द्वितीय महायुद्ध के

पहले कोई आटे की रोटी नहीं खाते थे। वहाँ जलपान के लिए अमीरों के घरों में मैदे की लूची (लुचुई), तले हुये आलू और भाँटे की टिकियों के साथ खायी जाती थी। परवल, गोश्त और मछली के साथ भी कभी-कभी अमीर घरों में लूची खायी जाती थी।

फिर चार बजे राजकुमार राजू को माँ जी दूध की खुरचन खिलाती या बंगाली तरीके से बने हुए पीठे (Cakes), राजू को 'पाटी सपटा' पीठा बहुत पसन्द था।

पूर्वी बंगाल में साधारणतः दोनों वक्त लोग दाल या मछली के शोरबे के साथ या कभी-कभी गोश्त के साथ भात खाते थे। कच्चे पपीते को तरकारी बहुत प्रिय थी।...मछलियों में 'मागुर' और 'कोई' मछलियाँ मटकों में भर कर रख दी जाती थीं और 'खसी' बकरे भी कई-कई रखे रहते थे। कोई अतिथि आये तो यह इस्तेमाल किया जाता था। कोई उच्चपदस्थ व्यक्ति आए, तो खसी का गोश्त बनता था। उसके नीचेवालों के लिये मछली का झोल (शोरबा) और भात। तरह-तरह की सब्जी जिसमें झींगा मछली पड़ी हुई, बनायी जाती थी।

घी-भात बनता था राज परिवार के खास-खास मित्रों के लिये। उसके साथ अण्डे की करी, गोश्त की अखनी और सूजी या रवा की खीर।

मुर्गी खाना या मुर्गी का अण्डा खाना पुराने परिवारों में मना था। बत्तख के अण्डे खाये जा सकते थे, पर मुर्गी के नहीं। उसमें जाति चले जाने का भय रहता था। ठेठ हिन्दू परिवारों में यही नियम चालू था।

कलकत्ते के जोड़ासाँको के ठाकुर परिवार को, जिसमें रवीन्द्र नाथ ने जन्म-ग्रहण किया था, नाम दिया गया था पिराली ब्राह्मण का घर। कहा जाता था कि ठाकुर बाबूलोगों के पूर्वपुरुषों को बादशाही जमाने में विषय सम्पत्ति के काम से एक बार दिल्ली जाना पड़ा था। तब उनको, शाही बावर्चीखाने के पास रहने का स्थान दिया गया था। और बंगीय हिन्दू समाज ने सिद्धान्त किया कि शाही बावर्चीखाने में पकनेवाले माँस की गंध ठाकुर बाबूलोगों की नाकों में जरूर पहुँची होगी। और शास्त्र में है, 'घ्राणेनार्धभोजनम्', अर्थात् पकाये हुए अन्न की गन्ध नाक में पहुँच जाय तो आधा भोजन हो जाता है। इस वास्ते ठाकुर लोगों का मुसलिम बावर्चीखाने में पके माँस भक्षण का अपराध हुआ और वे लोग समाज से च्युत समझे गये थे। इसी कारण बहुत वर्षों तक हिन्दू समाज के बड़े-बड़े घरों से ठाकुर बाबूलोगों का सम्बन्ध नहीं रहा और वे पिराली ब्राह्मण कहकर परित्यक्त रहे, ऐसा प्रवाद बंगदेश में प्रचलित था।

शाम को रानी माँ देवालय में राजू को लेकर आरती उतारने और सांध्य पूजा देखने जाती थीं। शनिवार को शनि-पूजा होती थी और मंगलवार को सत्यनारायण की कथा।

माँ जी की सास को भी 'रानी माँ' कहा जाता था। वह बहुत दानशीला थीं, मगर बहुत क्रोधी थीं। जब क्रोध होता, तो राज परिवार में तीन-तीन दिन तक रसोईं पकाना बन्द रहता था। अमला-कारिन्दों आदि के घरों में भी खाना पकाना बन्द हो जाता था। फिर जब उनका क्रोध शान्त हो जाता, तो सबको बुला कर वे खाना खिलातीं और खुद बैठ कर देखती थीं। उन्होंने करीब सौ कुमारी लड़कियों के अपने खर्चे से विवाह करवाये थे। पूर्व-बंग में वैशाख-जेठ और कार्तिक महीने में बड़े जोर के तूफान, आँधी और वर्षा का प्रकोप कई दिन तक लगातार चलता था। बहुतों के घर उड़ जाते थे। खुद रानी माँ तब गृहहीनों के घर बनवा देती थीं और अपने हाथ से कपड़ा बाँटती थीं।

उस ज़माने में उन्होंने पीपल और बरगद के पेड़ों के विवाह में पाँच हजार रुपया खर्चा किया था और उसमें बड़े-बड़े पण्डितों ने भाग लिया था। यह परम पुण्य-कार्य समझा जाता था।

कई तरह के यज्ञ भी उन्होंने किये थे। तुलसी का संगमरमर का चबूतरा और बड़े शिवजी का मन्दिर भी उन्होंने बनवाया था।

पूजा करने के पानी के लिये उन्होंने तालाब बनवाया था। उसमें सबको जाने की मुमानियत थी।

खुद रानी माँ का मायका था उन्नाव ज़िले के बारा सगवर गाँव में। आठ वर्ष की उम्र में उनकी शादी हुई थी। दूल्हा था दस वर्ष का राजा काली प्रसन्न। कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में धन और राजपाट से भी ज्यादा बड़ी मानी जाती थी कुल की मर्यादा। बीस बिस्वा के खालेवाले वाजपेयी, जो नरहर के आसामी होते थे, अपने लड़के-लड़की की शादी बीस बिस्वा वाले चत्तू के तिवारी या खोर के पाँड़े परिवार से करना ही समुचित समझते थे, और बीस बिस्वा वालों के पास अगर पैसा हुआ तो सोने में सोहागा समझा जाता था।

बीस बिस्वा वाले के घर में झाँखर रुँधे हों, खाने को न हो, तब भी अठारह बिस्वा वाले लखपति, करोड़पति लोग भी उसके पैर पूजते थे और उसके अनपढ़ लड़के से अपनी लड़की ब्याहना गौरव समझते थे।

खुद बड़ी रानी माँ की शादी हो जाने के बाद पालकी, पैदल, बैलगाड़ी और किश्तियों में सवारी करके क़रीब चार महीने में डौंड़ियाखेड़े से बरीसाल ज़िले के पारेरहाट राजमहल में वे लायी गयी थीं, क्योंकि तब रेल या जहाज का प्रचलन नहीं हुआ था।

चालीस बरस के बाद वे किश्ती में चढ़ कर कलकत्ता और फिर वहाँ से रेल द्वारा यात्रा कर तीर्थराज प्रयाग और काशी गयी थीं।

तीर्थ-यात्रा और दूर देश के पर्यटन के लिए प्रस्थान करने के पूर्व लोग सब रिश्तेदारों तथा मित्रों से बिदा माँगते थे इस आशय से कि जीवनकाल में शायद फिर भेंट न हो, और अब तो हवाई जहाज से चौबीस घंटे में भारत से लन्दन और वहाँ से न्यूयार्क सकुशल पहुँचकर लोग काम में जुट जाते हैं।

रानी माँ जी, राय बरेली ज़िले में एक मुसल्लम मौजा भावाखेड़ा, रहने का मकान और बाग समेत, मुरारमऊ के राजा से खरीदा था और बाद में उसी के पास चक चहातर और फ़तेहपुर जिले में कंसपुर गगोली मौज़ा का चार आना हिस्सा भी खरीदा था। और वे जब अपने परिवार सहित अपनी पितृ-भूमि उत्तरप्रदेश में आतीं तो भावाखेड़े में रहती थीं। भावाखेड़े में वे एक या दो महीना अवश्य रहती थीं। तब बंगाली नौकर, नाई, धोबी, कारिन्दा, कोई तीस-पैंतीस पूर्वबंगदेश-वासी आदमी उनके साथ आते थे।

पहले कुछ दिन माँ जी डौंड़ियाखेड़े में बिताती थीं। काशीश्वर और कामेश्वर के मन्दिरों में बड़ी धूमधाम से पूजा करवाती थीं। ग़रीबों को कपड़ा बाँटतीं और सीधा देती थीं।

नन्दो बाबू का बाघ

एक दिन एक हास्यास्पद घटना घटी थी, जो अभी तक गाँववाले कभी-कभी उल्लेख करते हैं।

एक बंगाली कर्मचारी नन्दकुमार राय, उर्फ़ नन्दो बाबू रानी माँ के साथ डौंड़ियाखेड़े के मकान में आये थे। पूर्वी बंगाल में गदहे नहीं होते। वहाँ के निवासियों ने कभी गदहा नहीं देखा था। हाथी और ऊँट भी वहाँ नहीं होते थे। मैमनसिंह ज़िले में हाथी पाये जाते थे। सरकस वगैरह में वहाँ के आदमी कभी-कभी हाथी वगैरह देख लेते थे, पर कभी गदहे देखने का अवसर नहीं मिला। सुन्दरवन में बहुत तरह के बाघ विशेषतः 'रायल बंगाल टाइगर' बहुत देखने में आते थे। चीता, बाघ और बनैले भैंसों का शिकार करने का रिवाज भी था। पर पूर्वबंग में गदहे कभी नहीं दिखाई देते थे।

उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले में डौंड़ियाखेड़ा गाँव गंगाजी के तट पर बसा हुआ था। छोटा-सा गाँव, मगर किसी जमाने में वह बारह बाजारों वाली नगरी थी और अपना राजा और किले भी थे। फिर तो गदर के जमाने में गाँव का राजा पकड़ कर फाँसी पर लटकाया गया और गाँव को सात बार

आग से जलाया गया था। अब भी गोली के निशान बहुत से मकानों में पाये जाते हैं।

गंगाजी से थोड़ी दूर, कगार पर वाजपेयी और पांडेय लोगों के मकान थे। उसमें अब पांडेय लोगों के मकानों के खंडहर वर्तमान हैं पर वाजपेयी लोगों के मकानों का कोई ध्वंसावशेष तक नहीं है। पारेरहाट की रानी माँ दल-बल समेत डौंड़ियाखेड़ा गाँव में ठहरी थीं। बंगाली कारिन्दे लोग गंगाजी में खूब नहाते थे, क्योंकि उत्तर प्रदेश की गर्मी उनको असह्य थी।

नन्दो बाबू सुबह आठ बजे गंगाजी के किनारे, दिसा-फिरागत से निपटने के लिये गये थे और एक करील की झाड़ी के पास बैठे ही थे कि एक गदहा ने चीपों-चीपों ध्वनि करते हुए दौड़ा आता दिखाई पड़ा। नन्दो बाबू ने कभी गदहा नहीं देखा था। उन्होंने समझ लिया कि यह बाघ ही होगा और बिना शौच किये लोटा छोड़ कर मुक्त-कच्छ होकर, दौड़ते-दौड़ते हवेली के अन्दर जा कर चिल्लाने लगे, "माँ जी! आज भगवान् ने हमको बाघ के पंजे से बचाया, एक मिनट दौड़ने में विलम्ब हो जाता तो बाघ काम तमाम कर देता, और आप लोगों से भेंट तक न होती।" वहाँ उपस्थित बहुत लोगों ने कहा, "यहाँ तो बाघ नहीं होता, हाँ, कभी-कभी भेड़िया आ जाता है, पर बड़ों को उससे कोई डर नहीं है।

"चलिये, देखा जाय बाघ कहाँ से आ गया, कैसे आया और वह कहाँ गया जिसके डर से आप बिना शौच किये, लोटा छोड़, प्राण लेकर घर भाग आये हैं।"

आठ-दस आदमी लठ और भाला आदि लेकर नन्दो बाबू के साथ गंगाजी के किनारे गये। करील की झाड़ी के पास जाते-जाते नन्दो बाबू भय से काँपने लगे और घटनास्थल पर पहुँचते-पहुँचते उनकी बेहोशी की सी हालत हो गयी। उन्हें पकड़ कर आदमियों ने कन्धों पर बैठा लिया और उसी हालत में करील की झाड़ी के पास उनको ले गये। तब देखते क्या हैं कि चालीस-पचास गज के फासले पर एक हृष्ट-पुष्ट गदहा दुम हिलाता हुआ घास चर रहा था। नन्दो बाबू ने उसी गदहे की ओर संकेत किया।

उपस्थित लोग ठहाका मार कर हँस पड़े और नन्दो बाबू को समझाया कि यह बाघ या सिंह नहीं है। यह है भारवाही जानवर, शान्त-शिष्ट गदहा और इसका मालिक इसी गाँव का मैकू धोबी है, जो उस पर लादी लादकर घाट पर आता-जाता है।

पूर्वी बंगाल के रहनेवाले उत्तर प्रदेश की सर्दी-गरमी सहने में असमर्थ पाये जाते थे। ऐसे भी बहुत बंगाली कर्मचारी रानी माँ के साथ आते थे, जो

लू के डर से बिना उनकी अनुमति के तुरन्त स्वदेश लौट जाते थे। वैसा ही हाल जाड़े के मौसम में भी था। तीन-तीन रजाइयाँ ओढ़ने को दी जाती थीं, तब भी वे लोग ठंड लगने के भय से कलकत्ता भाग जाते थे।

रानी माँ ने बाद में अपनी जायदाद, जो रायबरेली और उन्नाव जिले में अवस्थित थी, अपने दामाद गुरुप्रसाद पांडेय को दान दे दी, जिससे भविष्य काल में उनके नाती नतिनें वहाँ रह सकें।

एक हमारे सहपाठी सेन्ट्रल लेजेस्लेटिव असेम्बली (अब उसका नाम पार्लियामेन्ट में परिवर्तित हो गया है) के सदस्य निर्वाचित हुए थे। वे कहते थे कि जितने बंगाली एक्जीक्यूटिव काउन्सिलर या सेन्ट्रल मिनिस्टर बनाये गये थे, वे लगभग सब दिल्ली की आबोहवा बरदाश्त करने में अपने को असमर्थ पाते थे। इसके व्यतिक्रम थे एक नलिनी सरकार। यहाँ तक कि श्यामा बाबू (डाक्टर श्यामा प्रसाद मुकर्जी) को भी दिल्ली का शुष्क जलवायु माफिक नहीं था।

●

अगहन महीने के अन्त में राजमहल में कई जगह से नये चावल, डाब और खजूर का गुड़ आते थे।

पुरोहित रानी माँ को पारायण कराता था और पति और पितृपुरुषों के नाम पिण्डदान कराता था।

हर साल नवान्न उत्सव मनाया जाता था। इस शुभदिन में नया अन्न खाया जाता था। अगहन महीने से पके धान काटे जाते थे। यही पूर्वबंग की मुख्य फसल थी। उसी पर वहाँ के लोगों का भाग्य अवलम्बित था। अच्छी फसल हुई तो आदमी खुशहाल होते थे, नये कपड़े खरीदते थे। धान कूटना, माड़ना और फिर चावल बनाना, फिर उनको बीनना, कंकड़, पत्थर, कूड़ा निकालना, आरम्भ कर दिया जाता था और यह काम मुख्यतः औरतों को सौंपा जाता था।

नौकरानियाँ कच्चा नारियल पीसती थीं। नौकर हरे नारियल छील-छील कर ढेर लगाते थे। दो-एक नौकर सूखा नारियल, जिसमें नारियल का अंकुर उगा रहता था, काट कर उसके भीतर की गिरी के साथ जो फूल सा था (पूर्वबंग-वासी जिसको "फोग्रा या फोफरा" कहते हैं) उसको एक-एक नारियल से निकाल कर थाली में रखते जाते थे।

बड़े-बड़े मिट्टी के हंडे पानी से धोकर रखे जाते थे, जिनमें डाब का पानी भरा रहता था। उनमें उल्लिखित फोग्रा के टुकड़े, सन्तरे की फाँकें, पीसा

हुआ नारियल और थोड़ा शहद और गुलाब जल मिलाये जाते थे। मिश्री के ढेले आगे ही उनमें रख दिये जाते थे। उसको घर के प्रतिष्ठित देवताओं को निवेदन कर, फिर घर के प्रियजनों और निमन्त्रित व्यक्तियों में, पत्थर या फूल, (अमीरों के घरों में चाँदी) के कटोरों में परोसा जाता था। गरीबों के घरों में मिट्टी के कुल्हड़ों में परोसा जाता था।

नवान्न पर्व के दिन केवल रात को एक दफे खाना खाया जाता था। दिन को नवान्न रूपी पंचामृत सब कोई पेटभर पीते थे। बड़ा ही मधुर और लज्जतदार यह होता था। फल भी दिये जाते थे। केला, पपीता, अनन्नास और ताड़ की सुखाई हुई गुठली की गिरी और खीरे को काट कर दिया जाता था।

रात को पंचान्न व्यंजन बनाये जाते थे। घी-भात, मछली का पुलाव, मूंग की दाल में मछली का सिर, चने की मसालेदार दाल, सादी मसूर दाल, पालक, डेंगो डाटा, लाल साग, पोई साग, कद्दू के पत्ते का साग, कलकत्ते से आयी हुई फूल गोभी, नये आलू, मेटे आलू, शाक आलू की सब्जी, खजूर के रस के पीठे और खीर, दूध के छेने के बने हुए नकली आम, लीची, रसगुल्ला, तरह-तरह के सन्देश और बहुत तरह की चीजें बनायी जाती थीं। यह छोड़ कर बाबू लोगों के लिये लूची, आलू का दम, परवल, और भाँटे के तले हुए टुकड़े दिये जाते थे। रवा की खीर का प्रचलन बहुत था।

साधारणत: अमीरों के घरों में सुबह के नाश्ते में चाय के साथ हलुवा दिया जाता था और नमकीन मैदे की लूची और आलू या परवल की टिकियाँ तली हुई दी जाती थीं।

दोपहर को भात के साथ कई तरह की मछली का झोल, कई तरह की सब्जियाँ, एक-दो तरह की दाल, मीठा मलाईदार दही या गरम दूध और बढ़िया पके केले।

रात को बड़े घरों में भात के बदले लूची या कभी-कभी रोटी सब्जी के साथ और दूध दिया जाता था।

साधारण घरों में दोनों वक्त भात, दाल, और मछली का झोल खाया जाता था। गरीब घरों में एक वक्त मोटे चावल का भात और एक तरह की मछली का झोल खाया जाता था। वहाँ लोग मिट्टी की हांडी में भात बनाते थे, और जो भात बच जाता था उसमें पानी छोड़ कर रख देते थे दूसरे दिन सुबह खाने के लिये। दोपहर का खाना शुरू करने के पूर्व करेले की सब्जी या नीम के पत्ते मिले हुये भाँटे बड़े आदमी खाते थे। वहाँ भात के साथ गाय का घी खाया जाता था और पूड़ी या लूची भैंस के घी से बनायी जाती थी।

मछली, मांस, सब्जी सब सरसों के तेल में बनायी जाती थीं। वहाँ लोग भात खाते थे, इस कारण दाल और सब्जी, गोश्त और मछली का प्रचलन ज्यादा था। आटा तो उस देश में आया द्वितीय युद्ध के समय, जब चावल वहाँ प्राप्त होना नहीं के बराबर हो गया था। इससे पूर्व मैदे का प्रचलन था जिससे लूची बनायी जाती थी। १९४३ के दुर्भिक्ष में करीब पचास लाख आदमी मरे थे।

अब राजू की उम्र आठ वर्ष की हो गयी थी और सब कह रहे थे कि राजू का यज्ञोपवीत संस्कार या जनेऊ का उत्सव, नौ वर्ष की उम्र में किया जाना चाहिये।

कहाँ से होगा, उन्नाव या रायबरेली जिले के गाँव से या चन्द्रिका देवी या संकटा देवी के मन्दिर के पास से? ये सभी स्थान रायबरेली और उन्नाव जिले में अवस्थित थे।

बहुत विचार-विमर्श के बाद यह ठीक हुआ कि इस साल माँ जी बिठूर के मेले में जायेंगी और फिर पारेरहाट महल में अपने देश से पंडित और पुरोहित बुला कर लड़के का यज्ञोपवीत सम्पन्न करेंगीं।

●

बिठूर का विराट मेला और गंगाजी का विस्तीर्ण रेतीला तट

बिठूर में हजारों की संख्या में यात्री आये थे। जगह-जगह ग्रामीण जनों की उल्लास-ध्वनि सुनाई पड़ती थी। उनके अपने अनेक प्रकार के वाद्ययन्त्र थे।

एक पालकी में रानी माँ और करीब बीस आदमियों की एक टोली जिसमें पन्द्रह आदमी बंगाली कारिन्दे थे, बिठूर के विराट बालुकापूर्ण क्षेत्र से मेले की तरफ चले जा रहे थे...

राजू मचल कर पालकी से उतर रेत पर दौड़ता चला जा रहा था। उसका खास सेवक महाबीर सिंह, उसके साथ चल रहा था। कुछ देर चलने के बाद राजू कमर तक धूलि धूसरित हो गया था। यह देख कर महाबीर सिंह ने कहा, "राजा भैया, तुम हमारे कन्धे पर आ जाओ तो तुमको तकलीफ न होगी।" नौ बरस के राजू ने कहा, "महाबीर भैया, अगर एक घोड़ा मिलता तो उसी में चढ़ कर मेले में चले जाते।"

महाबीर ने कहा, "यह रेत है राजा भैया। यहाँ लकड़ी का घोड़ा ही चल सकता है।" यह कह कर पेड़ की एक डाल तोड़ कर, उसके पत्ते साफ कर उसने राजू से कहा कि वह उस पर चढ़ कर चले। राजू दोनों टाँगों के बीच उस लकड़ी को अड़ा कर 'तिक तिक' कर दौड़ता घोड़े से कहता था, "चल

मेरा घोड़ा सरपट चाल, दो दिन में पहुँचा बंगाल।" और मानो वह काठ का घोड़ा अपनी पीठ पर मखमली गद्दी पर राजू को बैठा कर दो दिन में बंगाल पहुँच जाता !

...माँ जी के रहने के लिए एक मकान आगे से ही निर्दिष्ट था। राय बरेली, हमीरगांव के निवासी डिप्टी कलेक्टर पंडित रामाधीन शुक्ल के मातहत था। उन्होंने बड़ा अच्छा इन्तज़ाम करवाया था। पास ही के कमरे में उनका परिवार भी, जो बिठूर नहाने आया था, वास कर रहा था।

बिठूर में तीन दिनों तक रानी माँ ने गंगा-स्नान, दान-पुण्य और यथा-विहित कृत्य किये। स्थानीय टूटा-फूटा किला और नाना साहब की स्मृति-मंडित अन्य अट्टालिकाओं के ध्वंसावशेष भी देखे।...इस बीच डिप्टी साहब के परिवार की औरतें रानी से मिलीं। दोनों परिवारों का परिचय, क्रमशः बन्धुत्व में परिणत हो गया।

डिप्टी साहब की इकलौती लड़की पद्मा सात बरस की छोटी-सी बालिका थी। वह राजू के साथ खेलती थी। बड़ी सुन्दर उसकी आकृति थी। घुँघराले बाल, गोरा रंग, मधुर बोली, गर्वीली चाल, सब मिला कर वह एक सुन्दर गुड़िया-सी मालूम पड़ती थी। बाहर बगिया में बैठ कर राजू और पद्मा खेलते थे और रानी माँ और डिप्टी साहब के परिवार के लोग बड़े आनन्द से उन लोगों को देखते रहते थे।

बाल-सुलभ चपलता और सुकुमार अंग-भंगी, नाचना, दौड़ना और फूल तोड़ना सब मिलाकर शैशव काल का एक मनोरम चित्र सब के सामने खिंच जाता था।

माँ जी ने राजू और अपने कारिन्दे और अहलकारों को लेकर तकिया का मेला देखा, हटिया का मेला देखा, फिर विगहपुर गोदोलेस्वर में, बकसर में चन्दिका देवी के मन्दिर में और असनी-गेगांसो स्थित संकटा देवी के मन्दिर में पूजा देकर अपने मौजे भावाखेड़े के मकान में आयीं। वहाँ तीन महीना रहने के बाद फिर पारेरहाट लौट आयीं।

राजू के स्मृति-पटल पर अंकित हो गये थे बिठूर में पद्मा से खेल-कूद, संकटा और चन्दिका देवी के मन्दिरों के पास गंगा के घाटों में नहाना और डौंड़ियाखेड़े और भावाखेड़े में घोड़े पर चढ़ना तथा ऊँट और हाथी की सवारी, तकिया के मेले के काले पौंड़ा गन्ने, बकसर के गट्टे और रेवड़ी, संकटा देवी के पास की दूकान के पेड़े और गुलाबजामुन और अवध की ग्राम्य शोभा का सौन्दर्य।

गत तीन साल से रानी माँ दो महीने के लिये अपने वंश की आदि जन्म-भूमि उत्तर प्रदेश देखने आ जाती थीं। वे दिन में एक दफ़े खाना खाती थीं।

रेल, जहाज में पानी तक नहीं पीती थीं। कलकत्ते से चल कर जब ट्रेन मुगलसराय में आधे घण्टे के लिये खड़ी होती, तो रानी माँ ट्रेन से उतर कर जहाँ प्लेटफार्म की छत नहीं थी, वहाँ जाकर पानी पीती थीं। सफर में उनके साथ वालों को यह ध्यान सदैव ही रखना पड़ता था कि कहाँ पर रेल या जहाज अधिक देर रूकेगा और कहाँ पर उनको उतार कर जलपान करवाया जाना चाहिए।

रानी माँ जब गाँव आतीं तो सत्यनारायण की कथा, रामायण की कथा, 'आल्हा' और कविता सुनाने वाले लोग आते थे। माँ जी उन लोगों को धोती जोड़ा, सर्दी के कम्बल और कुछ रुपया पारिश्रमिक के रूप में देती थीं।

माँ जी को गाँव की औरतें भजन, कजरी, सोहर, नकटा, बनरा, प्रभृति तरह-तरह की ग्राम्य गीतावली सुनाती थीं और उनको रानी माँ यथायोग्य पुरस्कार देती थीं।

माँ जी एक साल होली के समय 'फाग' सुनने को आयी थीं। गाँव भर के मर्द और औरतों को 'माजूम' की बरफी और भाँग का शरबत पिलाया था। फिर पान और तम्बाकू देकर सत्कार किया था। एक दिन बाजार से पान नहीं आये थे, तो 'दोहरा' (सुपारी, खैर, चूना और लौंग इलायची का मिला-जुला मसाला) दिया था। एक दफे चीनी कम पड़ गयी तो 'राब' से शरबत और चाय बना कर पिलायी गयी थी।

सावन में गुड़िया का मेला होता था। तब माँ जी बहुत से गुड्डे-गुड़ियाँ बनवा कर गाँव के सब बच्चों को बाँट देती थीं।...गुड़ियों की खूब पिटाई होती थी।

दो दफे माँ जी ने गाँव में कुश्ती दंगल का आयोजन करने के लिये खर्चा अपने पास से दिया था। बहुत से पहलवानों को पुरस्कृत किया गया था।

बंगाल से जब रानी माँ आतीं, अपने देश के रीती-रिवाज, रस्म और देशी तरीके से पूजा-पाठ, व्रतादि का अनुष्ठान विधिवत् सम्पन्न कराती थीं। एक दफे रानी माँ अपने मैके बारा-सगवर उन्नाव जिला गयी थीं। तब उन्होंने एक-सौ-एक ब्राह्मण-भोजन करवाया था और उपयुक्त दक्षिणा दी थी। गरीबों को कपड़ा भी दिया था। गाँव वालों ने राजू को लेकर जुलूस निकाला था और एक 'टाँघन' घोड़ा, जो अबलक रंग का था, नाना जी के घर से आया था। उसी में चढ़ कर राजू ने घुड़सवारी सीखी थी। पूर्व-बंग में अच्छे घोड़े मिलते नहीं थे और वहाँ पर नाव में सफर करना पड़ता था।

गाँव वाले राजू को तीतर, बुलबुल, बटेर, कबूतर और खरगोश ला लाकर देते थे। रानी माँ ने दरबानों के लिये बीस बाँसों की लाठियाँ बनवायी थीं, जिनमें गाँठें पीतल से मढ़ी थीं और नीचे लोहे के छल्ले लगे थे। लाठियों को

सेरों सरसों का तेल पिलाना पड़ता था। भाला, तब्बल, गँड़ासे और बहुत से सरौते असनी गाँव से तैयार करवा के रानी माँ पारेरहाट ले गयी थीं। रोटी बेलने के बेलन और चकले, काठ की बनी हुई 'पलरी', पीसने के जाँते, जो पूर्वबंग में नहीं मिलते थे, बहुत से खरीद कर पारेरहाट राज में भेज दिये गये थे।

पूर्वबंग से रानी माँ जब-जब उत्तर प्रदेश में आती थीं तब उनके साथ दस मन सूखी सुपारी, एक मन हरी-पीली कच्ची सुपारी, दो सौ सूखे नारियल और बहुत से डाब रेल और जहाज से लाये जाते थे। इसका प्रबन्ध करने में काफी खर्चा और परेशानी उठानी पड़ती थी। पर उत्तर प्रदेश की वस्तु बंग-देश में लाने में और बंगदेश की चीजें उत्तर प्रदेश में लाने में रानी माँ को बहुत आनन्द आता था। और इन सब बातों की आलोचना करने में भो उनको बहुत दिन तक आनन्द मिलता रहता था।

यज्ञोपवीत संस्कार

...राजू के यज्ञोपवीत का दिन ठीक हो गया था। बैशाख के दूसरे हफ्ते में होना था। बंगदेश में रहने वाले उतर प्रदेशीय सब रिश्तेदार और दोस्त और स्वदेश, उत्तर प्रदेश से भी सब सम्बन्धी और मित्र लोग बड़ी संख्या में निमंत्रित किये गये थे। पाँच पंडित आये थे उत्तर प्रदेश के गाँव डौंड़ियाखेड़ा और भावा-खेड़ा के आस-पास से, जैसे बक्सर, चहातर इत्यादि से। बीस बीस्वावाले, खालेवाले वाजपेयी, नरहर के आसामी और तिलकधारी राज घराने के लड़के के जनेऊ में बड़ी मात्रा में धूमधाम और तरह-तरह के आडम्बर रचे गये थे। सात-सात दिन तक नाचघर में महफिल जमी थी। और गाना, नाच, पेखना, कुछ न कुछ हुआ ही करता था। तीन दिन यात्रा-गान, अवध में जिसको रासलीला कहते हैं, रात भर हुआ था। दिन में, नाचघर में कठपुतली का नाच हुआ था। फिर तीन दिन कलकत्ते की और ढाके की पन्ना बाई और हरीमती का कीर्तन हुआ था और तीनों दिन नाच-रंग के वादकगण, जिनको पूर्व-बंग में नट कहते हैं बाजा बजाया था। यह वाद्य-वादन इतना अच्छा था कि उसकी स्मृति भुलायी नहीं जा सकती थी। उसकी वाद्य-ध्वनि कभी मेघ-गर्जन सी, कभी सिंहनाद सी और कभी मधुर वंशीध्वनि की तरह मालूम पड़ती थी। बड़े-बड़े नगाड़े, मृदंग, ढोल और उसी के साथ बाँसुरी, बेला, मँजीरा और इसराज आदि वाद्य बजाये गये थे।

ब्राह्मण-भोजन हुआ था और दरिद्रों को वस्त्र और कम्बल दान रानी माँ ने अपने उपस्थिति में किया था। जनेऊ का उत्सव बड़ी सफलता से सम्पन्न हुआ और जिले भर में कुछ दिन तक इसकी चर्चा रही।

एक पावन स्मृति

रानी माँ से अविभाजित बंगदेश के मुख्य-मन्त्री (बाद में पाकिस्तान के गृह-मन्त्री और ढाका के गवंनर) स्वर्गीय फज़लुल हक साहब की फूफू बेगम शम्सुन्निसा खातून बीबी साहिबा की बड़ी मित्रता थी। वे पर्दानशीन महिला थीं और दोनों सखियों में खान-पान तो नहीं होता था, पर वे पान-सुपारी-इलायची एक दूसरे को देकर प्रगाढ़ वन्धुत्व की रक्षा करती थीं। नौकरों-नौकरानियों के साथ अपनी ग्रीन-बोट में सवार होकर साल में तीन दफा बीबी साहिबा पारेर-हाट महल में आतीं और एक छोटी नाव में ब्राह्मण नौकर बहुत सी बँगला मिठाइयाँ लेकर उनके साथ आते। रानी माँ भी वैसे ही साल भर में उनसे दो-तीन दफे मिलने जातीं। बीबी साहिबा पीरोजपुर की जमींदार थीं।

राजू का उपनयन हो जाने के दो महीने बाद बीबी साहिबा एक दिन पारेरहाट आयीं और रानी माँ से मिलीं। बड़ी देर तक दोनों सहेलियों में दुख-सुख की बातें होती रहीं। लौटने के कुछ पहले उन्होंने रानी माँ का हाथ पकड़ा और कहा कि लड़के का जनेऊ हो गया, अब वे चाहती हैं कि लड़का एक दफा उनके घर जाकर कुछ देर ठहरे और भोजन कर चला आये। रानी माँ और घरवालों ने समझाया कि नया ब्रह्मचारी एक साल तक ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी और के हाथ का खाना तो दूर रहा, पानी तक नहीं पी सकता। पर उन्होंने रानी माँ का हाथ नहीं छोड़ा और कहा कि वे अच्छी तरह से जानती हैं कि ब्राह्मण लड़के को किस तरह रखा जाता है और अनुरोध किया कि जमाई बाबू (राजू के बहनोई साहब) को भी लड़के के साथ भेज दें, ताकि वे देख सकें कि शर्त का कोई उल्लंघन तो नहीं होता और ब्राह्मण लड़के का द्विजत्व तो नहीं नष्ट होता।

बीबी साहिबा का अनुरोध रानी माँ टाल न सकीं और राजू बहनोई साहब और नौकरों को अपने बजरे में लेकर उनकी हवेली पर गया, जो सात मील की दूरी पर थी। जब मुख्य द्वार से होते हुए सब लोग उनके मकान के प्रांगण में पहुँचे, तो देखा कि एक तरफ फूस के दो नये कमरे (जिनको उस देश में चाला-घर कहते हैं) बनाये गये थे और एक में नये पलंग पर नये कपड़े के बिस्तरे और बड़े तकिये (मसनद) रखे थे और नयी मखमली चादर बिछी थी। दूसरे घर में चार ब्राह्मण नौकर चावल, दाल और सब्जियाँ और घी, मिठाई आदि लिये बैठे थे, जो शहर के बाजार से अभी-अभी लायी गयी थीं। यही नहीं, स्थानीय मदन मोहन जी के अखाड़े से एक कलश (गागर) भर गंगाजल लाया गया था जो सब खाद्य पदार्थों में छिड़का जायगा। बिस्तर पर दो कुशासन भी रखे थे।

राजू के साथ जितने रिश्तेदार गये, वे यह सब देखकर दंग रह गये और ऐसा मालूम पड़ रहा था कि जैसे लोग किसी देवस्थान पर उपस्थित हुए हैं। नौकरानियाँ राजू को अन्दर ले गयीं। राजू को बीबी साहिबा ने अपनी गोद में बिठाया, उसके घुटे हुए सिर पर हाथ फेरा और एक मोहर उसके हाथ पर रख दी। बीबी साहिबा के कोई सन्तान नहीं थी। और उनका और रानी माँ का राजू ही एक मात्र स्नेहपात्र था। सब लोग दो दिन वहाँ रहे और देवस्थान का प्रभाव-सा अनुभव किया। लौटते समय बुर्का पहन कर बीबी साहिबा बजरे तक आयीं और दुआ देकर राजू को बिदा किया।

राजू की एक मात्र बड़ी बहन थी इच्छामयी देवी। वह राजू से तेईस वर्ष बड़ी थीं। उनका विवाह हुआ था डौंड़ियाखेड़ा के निवासी पंडित गुरुप्रसाद पाण्डेय से। उनको चार लड़कियाँ हुई थीं। पर चौथी लड़की के जन्म के दिन उनकी अचानक मृत्यु हो गयी। राजकुमारी इच्छामयी को रानी माँ ने भावाखेड़ा और चहातर का चक और कंसपुर गोगोलो मौजे का हिस्सा दे दिया था। और लड़के को दिया था पारेरहाट की राजगद्दी। दस्तावेज कलेक्टर ने खुद आकर मंजूर किया था।

•

घरजमाइयों का अत्याचार

राजू की नाबालिगी में राज जामाता गुरुप्रसाद बाबू को कलेक्टर ने रियासत का मैनेजर बना दिया था। पर राजू की बहन राजकुमारी इच्छामयी के मरने के बाद से गुरुप्रसाद बाबू के कामों से रियासत को नुकसान पहुँचना आरम्भ हो गया। उनकी चारों लड़कियों की शादियाँ रानी माँ ने की थी उन्नाव तथा राय बरेली जिले के बीस बिस्वावाले कान्यकुब्ज लड़कों के साथ और चारों नाती-दामादों को पारेरहाट राजमहल में चार कमरे और असबाब देकर रखा था।...उस जमाने में पी० सी० एस०; आई० सी० एस०, डॉक्टर, इञ्जीनियर, अध्यापक की माँग नहीं थी। तब तो कुलीन लड़कों के साथ लड़कियों की शादी करना बड़ी गौरव की बात या बड़प्पन माना जाता था। फिर उनको रोजगार-धन्धों में लगा दिया जाता था।

रानी माँ के चारों नाती-दामाद आलसी और विलासी थे। दिनभर शतरंज और पाशे का खेल, शाम को भंग छानना और रात को बुरी औरतों की संगत करना, यही उनका मुख्य काम था। हर हफ्ते दामादों को पाकेट खर्च पचीस रुपए दिए जाते थे और राजमहल का खाना मुफत, जिसमें मिलते

थे रोज दो दफे खाने को, सुबह-शाम नाश्ता, रात को पीने को एक सेर दूध, मौसम के फल, शाम को भङ्ग और मलाई और पान तम्बाकू, आदि। यह छोड़ अपनी बहुओं को, राज परिवार की लाड़ली बेटियों को डर दिखला कर, मार-पीट कर और कुछ रुपए दामाद लोग वसूल कर लेते थे हफ्ते में दो या तीन दफे।

आगे यह अक्सर देखा जाता था कि अमीर घरानों में लड़कों और दामादों का बहुत प्यार, लाड़-दुलार किया जाता था और उनको कोई विद्या या हुनर नहीं सिखलाया जाता था। जिसका परिणाम यह होता था कि वे लोग भोग-विलास में डूबे रहते थे। उसका बुरा नतीजा होता था। वे सब चरित्रहीन हो जाते थे और समाज-शरीर में कोढ़ ऐसे विराजमान रहते थे। पचास वर्ष आगे समाज का यही हाल था।

अमीर लोगों में कुछ आदमी अच्छे भी थे। गुण-ग्राहक थे, गरीब परवर थे। रियाया के लिये स्कूल, कालेज, अस्पताल बनवा देते थे। कुछ ऐसे भी थे जिनमें विलासिता भी नहीं थी, पर ऐसे हजारों में इनेगिने एक या दो ही दिखलाई पड़ते थे।

फिर राजा, जमींदार या लखपती अमीर लोग सौ में निन्नानबे, तीस-चालीस की उम्र में ही निकम्मे हो जाते थे। बहुत स्त्री-गमन से नपुंसकता और नाना प्रकार की व्याधियों के शिकार बन जाते थे। इससे बचे तो रिश्तेदार और कपट मित्र उनको विष प्रयोग कर या और कोई प्रक्रिया द्वारा इस संसार से हटा देते थे। फिर उनकी औरतों और नाबालिग बच्चों को फँसा कर रुपया कमाना और तरह-तरह का फायदा उठना ही उनका एकमात्र ध्येय होता था।

यही कारण था कि राजा-जमींदारों में बच्चे नहीं होते थे और क़रीब-क़रीब सभी परिवारों में लड़का गोद लेने की प्रथा चली आती थी।

जहाँ हिन्दू राजा का गौरव था वीर होना, त्यागी होना, चरित्रवान होना, बल-वीर्य-शाली होना, और प्रतिज्ञावश राजसुख भोग न कर वनवास जाना, वहाँ हीन-वीर्य, आलसी, मेमों और बुरी औरतों के पीछे लट्टू, काकटेल पार्टी और बाल डांस के शौकीन एक सम्प्रदाय की सृष्टि हुई।

अब राजू दस बरस का हो गया था; खेलना, तैरना, कुश्ती लड़ना, साइकिल चढ़ना और मामूली तरीके से बन्दूक का निशाना करना सीख गया था। पूर्व-बंग में लड़कों को चढ़ने के लिये घोड़े कम ही मिलते थे, पर रानी माँ ने एक अच्छा घोड़ा राजू के लिये लिया था, जो काफी ऊँचा था और टाप उठा कर राजू को सलाम करता था।

राजकुमारी इच्छामयी के मरने के बाद से राजमहल में चख-चख और बकवास लगी ही रहती थीं। राज-जामाता गुरुप्रसाद पांडेय और उनके चारों दामादों ने मिल कर रानी माँ को और राजू को सताना और तरह-तरह के उत्पात और नित नये षड्यन्त्र रचना आरम्भ कर दिया था।

अमला-कारिंदों की दो पार्टियाँ हो गयी थीं। कुछ सच्चे और ईमानदार अहलकार और कर्मचारी रानी माँ और राजू को निरापद और सब अभाव से मुक्त रखने के लिये सतत प्रयत्नशील थे। पर और सब जमाईबाबू तथा उनके दामादों का समर्थन करते थे। मालगुजारी का सालाना पचास हज़ार रुपया चार दफ़े साल में देना पड़ता था। पर अपरिमित अर्थव्यय के कारण कभी-कभी यह रुपया खजांची के पास नहीं रहता था। एक दफे तो क़र्ज ले कर यह रुपया देना पड़ा था। गुरुप्रसादबाबू और उनके दामाद लोगों ने मन-माना खर्चा करना शुरू किया था और रानी माँ को हिसाब देना बन्द कर दिया था। रानी माँ को वे बहुत सताते थे और ऐसा प्रतीत होता था कि राजू को विष प्रयोग या किसी अन्य उपाय से दुनिया से हटा देंगे, और रियासत और ज़ेवरात हड़प लेंगे।

रानी माँ दाँतों के बीच जीभ के समान अपने को महसूस करने लगीं। उनकी बेचैनी बढ़ चली थी और चिन्ता भी। प्यारे राजू का कोई कुछ बिगाड़ न सके इस वास्ते वे सर्वदा चिन्तित रहती थीं। एक दिन रानी माँ ने महल में कहा कि कुछ दिन से उनकी तबीयत ठीक नहीं है। वे शहर जायंगीं और वहाँ सिविल सर्जन से बातचीत करेंगीं।

बरीसाल जाते समय रानी माँ अपने पिता की रियासत सिद्धकाठी गयीं और वहाँ अपनी भ्रातृ-वधू, राजू की मामी के पास उन्होंने राजू को दो साल रखने और पढ़ाने का प्रबन्ध किया और जिले के कलेक्टर साहब से इस प्रस्ताव को मंजूर करवाया।

फिर जिले के शहर में एक हफ्ते रहीं और डाक्टर को दिखाने के बाद कलेक्टर से मिली थीं। कलेक्टर को रियासत की सब बातें समझायी थीं और उनसे उपाय करने को कहा था।

जिले की सबसे पुरानी राजगद्दी, जो एक समय सामन्ती प्रथा से शामिल होती थी उसके संरक्षण की भावना से कलेक्टर और जिला जज ने मिल कर शहर के एक नामी वकील और सज्जन बाबू यादव चन्द्र राय को राजकुमार का गर्जियन नियुक्त किया, और जब तक वह बालिग न हो जाय, तब तक यादवबाबू रियासत के दीवान के रूप में सब कार्य संभालें, यह प्रबन्ध कर दिया गया। जमाई बाबू गुरुप्रसाद जी को मैनेजर के पद से हटा दिया गया, और

उनको तथा उनके चारों दामादों को गुज़ारा निर्दिष्ट कर दिया गया। महल से संलग्न मकानों में उनके रहने का प्रबन्ध कर दिया गया।

कुलीन और कौलीन्य

उत्तर प्रदेश में ब्राह्मण को पंडित जी, क्षत्रिय को ठाकुर साहब, और कायस्थ को मुन्शी या लाला लिखा जाता था। अब तो ये सम्बोधन श्री में परिवर्तित हो गये हैं, हम लोग सब श्रीयुक्त हो गये हैं।

समग्र बंगदेश में, तीन जातियाँ उच्चकुल हिन्दू माने जाते थे। ब्राह्मण, वैद्य और कायस्थ। पूर्व-बंग में स्थानीय अधिवासियों में कोई क्षत्रिय नहीं था। बाहर से आकर कुछ लोग वहाँ कार्यवश रहते थे। सबको बाबू सम्बोधन किया जाता था। नाम के प्रथम शब्द के साथ मिलाकर। यथा आशु बाबू, रवि बाबू, इत्यादि।

पश्चिम-बंग में क्षत्रिय और खत्री भी बहुत से थे और अब भी हैं। बंगदेश के सबसे बड़े जमींदार, बहुतों के मत से भारतवर्ष के बहुत बड़े जमींदार वर्दवान के महाराजाधिराज बहादुर खत्री थे, और उन लोगों के विवाह और शुभकर्म सब पंजाब के खत्रियों की तरह होते थे।

पूर्व-बंग और पश्चिम-बंग के अधिवासियों के बहुत से रीति-रिवाजों और जीवनयापन प्रणाली में अन्तर था। पश्चिम-बंग में मारवाड़, उत्तर प्रदेश, पंजाब और उड़ीसा से बहुत आदमी आकर बस गये थे, और वहाँ के अधिवासी बन गये थे। बहुत से विवाह करके पूरे बंगदेशवासी बन गये थे। यह बात पूर्व-बंग में नहीं थी, वहाँ बंगाली ही ज्यादा थे। और दूर के प्रदेशवासी बहुत कम थे। इस कारण बहुत बंगालियों का कहना था कि there cannot be Bengal minus East Bengal, यानी बिना पूर्व-बंग के बंगाल को बंगाल ही नहीं माना जा सकता।

●

पूर्व-बंग में हिन्दीभाषियों की तादाद या संख्या बहुत ही कम थी। हिन्दी-भाषी कलकत्ता तक ही सीमित थे। उधर रेल भी अधिक नहीं थी, खुलना पहुँचकर रेल-यात्रा समाप्त हो जाती थी। फिर स्टीमर या जहाज की यात्रा आरम्भ होती थी। उस जमाने में हिन्दीभाषियों की धारणा थी कि कलकत्ते के बाद और रहने लायक जगह नहीं है और सब दरियाई मुल्क हैं। वहाँ जाने से आदमी फिर लौट कर घर नहीं आता। इस सम्बन्ध में एक किस्सा सुनिये। राजू की बहिन राजकुमारी इच्छामयी जब नौ वर्ष की हुई, तब उसको ब्याहने

की चिंता माँ जी को हुई थी। राज घराने की शान के लिए बीस बिस्वावाले कान्यकुब्ज बालक की जरूरत थी। यह था अस्सी बरस आगे का रवैया।

दो-तीन बंगाली कारिन्दे लेकर रानी माँ के भाई, कुञ्जबिहारी शुक्ल उन्नाव और राय बरेली के बीस बिस्वावाले कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के घरों का चक्कर काटने लगे।

एक खोर के पाँडे थे। पक्के बीस बिस्वावाले और दस बीघे खेत और एक पक्के मकान के मालिक थे नन्दकिशोर पाँड़े। उनके दो पुत्र थे। दोनों सुन्दर एवं हृष्ट-पुष्ट थे और गाँव की पाठशाला में पढ़ते थे। बड़ा लड़का गुरुप्रसाद पसन्द आया, तो कुञ्जबिहारी जी ने कुंडली मिलायी और नन्दकिशोर पाँड़े जी से प्रस्ताव किया कि पूर्व-बंग के पारेरहाट के राजा की लड़की के साथ उनके ज्येष्ठ पुत्र के साथ विवाह का सम्बन्ध लेकर ये लोग आये हैं और उनकी अनुमति हो जाने के बाद बरिच्छा और फलदान का प्रबन्ध किया जायगा।

नन्दकिशोर पाँड़े घुटे हुये सिर पर गोखुर-प्रमाण शिखा के ऊपर एक दुपल्ली टोपी लगाये, धोती पहने, नंगे बदन, एक अँगौछा कन्धे पर डाले चारपाई पर बैठे थे। सब बात सुनकर नन्दकिशोर पाँड़े जी ने पूछा कि यह पूर्व-बंगदेश कलकत्ते के आसपास ही होगा? उत्तर में कुञ्जबिहारी शुक्ल ने कहा था कि वह कलकत्ते से पूर्व की दिशा में बड़ी दूर बसा है और वहीं पारेरहाट रियासत है।

नन्दकिशोर पाँड़े जी ने कहा कि कलकत्ता के बाद तो टापू है और खाड़ी और समुद्र हैं, वहाँ कोई देश ही नहीं है; और कलकत्ता के बाद वे अपना लड़का न ब्याहेंगे क्योंकि उधर आदमी नहीं रह सकते, वे अपना लड़का उतनी दूर न भेजेंगे। ऐसी ही धारणा पहले के अवधवासियों की थी और इस कारण ही वे लोग कलकत्ते से पूर्व-बंग की तरफ कम जाते थे।

बहुत कहने-सुनने के बाद, रुपयों का प्रलोभन देकर और ससुराल में दामाद को स्थान देकर राजमहल में रखा जायगा, यह प्रस्ताव उपस्थित कर नन्दकिशोर पाँड़े के ज्येष्ठ पुत्र गुरुप्रसाद से इच्छामयी का शुभ-विवाह सम्पन्न किया गया था। ऐसे ही राजपुत्री इच्छामयी की चारों लड़कियों की शादियाँ भी बीस बिस्वावाले कान्यकुब्ज घरानों में की गयी थीं।

कुलीन घरवाले क़रीब-क़रीब सभी महादरिद्र थे, आजीविका के लिये काम करना अपमानजनक मानते थे और ससुराल, नाना के घर और मामा के साथ ही जीवन बिताने में गौरव समझते थे। इसीलिए वे विद्याविहीन, कलाविहीन और अकर्मण्य होकर पराये घर में जीवन बिताते थे। इनमें नब्बे फ़ी सदी चरित्रहीन भी होते थे।

ग्रन्थिबन्धन, शिक्षा-दीक्षा, साहित्य-चर्चा

५

राजू अब अपनी मामी के संरक्षण में रहता था, गिद्धकाठी गाँव में, जहाँ का रास्ता राजमहल से एक दिन का था।

कलेक्टर ने अवनी मोहन वन्द्योपाध्याय बी० ए० को, जो वहाँ के हेड मास्टर थे, राजू का ट्यूटर नियुक्त कर दिया था। इन्हें सब अवनीबाबू कहकर बुलाते थे। ये बड़े सज्जन, भगवद् भक्त और ऊँचे दरजे के विद्वान् थे।

राजू के जीवन में अवनी बाबू और यादव बाबू का बड़ा प्रभाव पड़ा था। उसे ब्राह्म मुहूर्त में उठना, व्यायाम करना और पढ़ना पड़ता था। साथ ही चित्रकारी, साहित्य और संगीत के प्रति उसका ध्यान आकर्षित किया जाता था। तैरना और शिकार खेलना भी उसको सिखलाया गया था। एक बार गरमी की छुट्टी में राजू पारेरहाट आया। तभी एक दिन डिप्टी साहब पं० रामाधीन शुक्ल इलाहाबाद से रेल, स्टीमर और नाव की सवारी की दुःसाहसिक यात्रा करके पारेरहाट राजमहल में पहुँचे। उनका रसोइया तिवारी और नौकर उनके साथ था।

उनके रहने के लिये और उनकी रसोई बनाने के लिये रियासत की कचहरी का मकान दिया गया।

पूछने पर पता चला कि डिप्टी साहब जल्द ही रिटायर होने वाले हैं और अब कलेक्टर की जगह अस्थायी कार्य कर रहे हैं। उनके आने का उद्देश्य है कि पारेरहाट बाजार में कोई कारबार करेंगे। कुछ दिन रहने के बाद उनको जगह बहुत पसन्द आयी। फिर उन्होंने रानी माँ से मिलने का आग्रह

किया। माँ जी के पास उपस्थित होकर उन्होंने अपनी लड़की पद्मा का विवाह राजू से करने का प्रस्ताव रखा।

रानी माँ जी कुछ समय से बहुत चिन्तित दिखायी पड़ती थीं। लड़का अपनी मामी के पास रहता था और लड़की का, कई साल हुए, स्वर्गवास हो गया था। अपने दामाद गुरुप्रसाद बाबू और उनके चार दामाद, जो राजमहल में रहते थे, छोटी-छोटी बातों को लेकर झगड़ा करने पर उतारू रहते थे। माँ जी का यह विश्वास दृढ़ हो चला था कि लड़के का राजमहल में इन लोगों के साथ रहना, खतरे से खाली नहीं है। इस कारण वे अपने एक मात्र लड़के को अपने पास नहीं रखती थीं।

उनके मन में था कि लड़के को खूब पढ़ावेंगी और शान्ति निकेतन की पढ़ाई समाप्त कर विदेश यात्रा करावेंगी, जिसमें उसकी शिक्षा सर्वांगसुन्दर हो। राजमहल की परिस्थिति, नित्य कलह-कोलाहल, कटुता की वृद्धि, यह सब उनको खलता था। सर्वदा वे चिंतित और विषण्ण रहती थीं। उनके मन में इसी एक भावना ने घर कर लिया था कि राजू को कैसे सही सलामत बड़ा और ज्ञानवान बनाया जाय।

बाल-विवाह उनका और पूर्वजों का हुआ था और इसका नतीजा भी उनको भलीभाँति मालूम था। कम उम्र में बच्चे होने से माता-पिता उपयुक्त निरीक्षण नहीं कर सकते यह भी उनको मालूम था।

माँ जी जिले के शहर में गयीं और कलेक्टर और रियासत के शुभार्थियों से मिलकर सलाह मशविरा किया और फिर पारेरहाट लौटकर डिप्टी साहब की लड़की के साथ अपने लड़के के शुभ विवाह की अनुमति दे दी। वास्तव में राजू की माँ की उसका विवाह करने की कतई इच्छा नहीं थी। पर जिन्दगी सिर्फ फूलों की आरामदेह सेज नहीं थी, बल्कि मुसीबतों व काँटों का बीहड़ रास्ता था। अपने पतिदेव और कन्या को उन्होंने खो दिया था तरुण उम्र में ही और अपने आदर्शों के लिये कदम-कदम पर उनको त्याग और बलिदान करना पड़ा था पर उनमें तेजस्विता और दुःख सहने की क्षमता कभी कम नहीं पायी गयी।

रानी माँ अपने ससुर के पैतृक गाँव उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के अन्तर्गत डौंड़ियाखेड़ा पहले गयी थीं और वहाँ से बारासगबर अपने पैतृक घर जाकर राजू की मामी के मतानुसार वहाँ से राजू के विवाह की बरात रवाना करने का प्रबन्ध किया था। रानी माँ के पिता की जायदाद भी बरीसाल के सिद्धकाठी गाँव में थी पर उनकी मृत्यु के बाद वह जायदाद उनकी लड़कियों को मिल गयी थी।

मध्यम वर्ग के परिवारों की सी उनकी हालत थी। गाँव में मामा का घर कच्चा था सो रहने के लिये पड़ोसी अवस्थी जी का मकान खाली करवा कर वहाँ रानी माँ के साथ आये हुए पचीस आदमियों के साथ, जिनमें अहलकार, कारिन्दे और अनेक बंगाली नौकर-नौकरानी शामिल थीं, रहने का इन्तजाम किया गया था।

बरात का इन्तजाम बड़े पैमाने पर किया गया था। खजूरगाँव के राणा साहब ने रानी माँ को सब सामान, हाथी, पालकी, टेढ़वा, कई अच्छे घोड़े, रहलू और रथ भेज दिये थे। चाँदी का सामान रानी माँ अपने साथ ले आयीं थीं। और लायी थीं रियासत से रेल जहाज के जरिये पार्सल में बीस मन सुपारी और तीन-सौ सूखे नारियल। बहुत सी शीतल पाटियाँ और चटाइयाँ भी वहाँ से आयी थीं।

राजू और पद्मा का शुभ विवाह निर्विघ्नता और बड़े धूमधाम से सम्पन्न हुआ था। किसी बात की कोई कमी नहीं थी।

विवाह के बाद पद्मा बहूरानी पहले मामा के घर आयी थीं, फिर वहाँ से भावाखेड़ा गयीं थीं। वहाँ एक महीना रहकर बंगाल लौटने का बन्दोबस्त किया गया था।

जेठ का महीना था, सख्त गरमी पड़ रही थी। रानी माँ के बंगाली कर्मचारियों को बड़ी तकलीफ मालूम पड़ने लगी थी। वह ठण्डे देश के रहने वाले थे, उत्तर प्रदेश की लू-लपट से अनभ्यस्त थे।

एक दिन सुबह मालूम हुआ कि रानी माँ के बीस बंगाली कर्मचारी रात को मौहार से बिदकी रोड रेल स्टेशन की तरफ चले गये हैं और वहाँ से कलकत्ता होकर पारेरहाट चले जायेंगे, कारण, कह रहे थे कि यहाँ की भीषण गरमी उनको असह्य है।

रानी माँ के पास अब बंगाली तीन नौकरानी और कुछ नौकर रह गये थे और रिश्तेदार सब ही थे। रानी माँ ने लड़के और बहू को लेकर बक्सर में चंडिका देवी की पूजा की और असनी-गेगासों गाँव होते हुये संकटा देवी की भी बड़े धूमधाम से पूजा की। आनुषंगिक ब्राह्मण-भोजन, सत्य नारायण की कथा और गाँव की औरतों के मंगल-गीत भी बहुत दिन तक जारी रहे।

फिर रानी माँ लड़के और नववधू को लेकर पारेरहाट सही-सलामत लौट आयीं। नववधू के साथ उसका एक भाई भी पारेरहाट गया था और एक दासी भी उसके साथ थी। वे लोग एक साल रह कर राय बरेली लौट गये।

●

कोर्ट आफ वार्ड्स की ओर से कलेक्टर ने राजू को कलकत्ता जाकर पढ़ने का इन्तजाम कर दिया था।

सेंट जेवियर्स कॉलेज में सीनियर केम्ब्रिज क्लास में राजू की पढ़ाई शुरू हुई थी और प्राइवेट ट्यूसन के लिये रखे गये थे बहुत नामी अध्यापक रेवरेण्ड फादर पावर, बड़े ही सज्जन तथा साधु प्रकृति के आदमी थे। किसी तरह की धूर्तता, नीचता, असत्य, वे कभी सहन नहीं कर सकते थे।

उन्हीं के एक परम मित्र थे बंगाली अध्यापक प्रिंसिपल हेरंबचन्द्र मैत्र, बंगवासी कॉलेज के प्रधान, धुंरधर विद्वान्, जिनके पाण्डित्य की धाक विलायत तक फैली थी।

फादर पावर और अध्यक्ष मैत्र दोनों झूठ बोलना और विलास-वैभव में रहना महा पाप समझते थे।

मैत्र महाशय किस तरह के सच्चरित्र व्यक्ति थे यह मालूम करने के लिये एक ही घटना का यहाँ उल्लेख करना पर्याप्त होगा। एक दिन अध्यक्ष मैत्र फुटपाथ पर चले जा रहे थे, तभी विश्वविद्यालय के एम० ए० क्लास के एक लड़के से भेंट हो गयी। उसने पूछा, 'मनमोहन थियेटर' किस रास्ते से जाने से जल्द पहुँचा जायगा ?'

यहाँ कहना उचित होगा कि मैत्र महोदय लड़कों की विलासिता को प्रश्रय देना या थियेटर देखने में (तब सिनेमा गृह नहीं थे।) समय गँवाना बिलकुल पसन्द नहीं करते थे और कोई लड़का यदि ऐसा करता और उनको मालूम हो जाता तो कठिन से कठिन दंड देते थे।

मैत्र महोदय ने उस लड़के से कहा मनमोहन थियेटर जाने का रास्ता नहीं जानते। लड़का यह जवाब पाकर चलता बना। जब वह कुछ दूर चला गया तब मैत्र महोदय को यह ध्यान आया कि उन्होंने लड़के से जो कहा था कि मनमोहन थियेटर जाने का रास्ता वे नहीं जानते, वह सरासर झूठ बात थी। जबकि सत्य बात छोड़कर किसी भी प्रकार का झूठ बोलना वे महापाप समझते थे।

वे लड़के के पीछे दौड़कर उसके पास पहुँचे और बोले, 'देखो, हमको मालूम है कि किस रास्ते से मनमोहन थियेटर जाया जाता है पर हम तुमको बतावेंगे नहीं, क्योंकि लड़कों को पढ़ाई छोड़कर थियेटर इत्यादि में जाना उचित नहीं।'

तो ऐसे परम सच्चरित्र लोग थे यह प्रिंसिपल मैत्र और फादर पावर।

फादर पावर लड़कों का चरित्र निर्माण और उन्हें सेवा-भाव से अनुप्राणित करने में संलग्न रहते थे। विलासिता के वे घोर विरोधी थे।

कलकत्ते में रहने के समय से ही राजू की बड़ों से मिलने की आदत पड़ गयी थी। वड़े माने, विद्वान्, धार्मिक व्यक्ति, कवि, वैज्ञानिक, त्यागी देश-नेता, दारिद्रय-व्रती संन्यासी, इन्हीं सब लोगों के सान्निध्य में आने की राजू की प्रबल इच्छा सदैव रहती थी। जब फ़ुरसत मिलती तब वह वैसे ही विख्यात आदमियों के पास मिलने चल देता था।

जोरासाँको की ठाकुर-बाड़ी, अवनी बाबू (प्रसिद्ध चित्रकार अवनींद्रनाथ ठाकुर) का मकान, चोर बागान के राजा राजेन्द्र मल्लिक का मकान, पारसनाथ का मन्दिर, विश्वविद्यालय का दरभंगा हाल, साहित्य परिषद् का मकान ये सब राजू के प्रिय स्थान थे। ठाकुर-बाड़ी में 'विचित्रा' सभा का अधिवेशन भी देखा था। स्वयं रवीन्द्रनाथ बीच में बैठे बात कर रहे थे। कितना प्रभावशाली व्यक्तित्व था उनका और उपस्थित जन कितनी सादगी और उच्च विचारों के साथ वार्तालाप करते थे। राजू सोचता स्वर्गलोक में देवताओं की सभा भी ऐसी ही होती होगी।

रवीन्द्रनाथ के परमप्रिय शिष्य और उनके बाद जो कवि उनके रिक्त आसन के पास शोभा पा सकेंगे, ऐसा जिनके बारे में अनुमान किया जाता था, उन्हीं कवि सत्येन्द्रनाथ दत्त को भी उसने देखा था।

रानी माँ के साथ वह पहले ही कालीघाट की काली माता का मन्दिर, चिड़िया-खाना, जादूघर आदि कई दफ़ा देख चुका था।

एक महान् व्यक्तित्व

एक दिन राजू अपने एक अध्यापक के साथ भवानीपुर गया था सर आशुतोष मुखोपाध्याय को देखने।

उसने देखा कि एक विशाल काया पूरी तरह बालों से ढकी हुई, सिर के और मूँछ के बाल धवल, छोटी धोती घुटनों तक की, इस अवस्था में आशु बाबू अपने हाथ में तेल की एक शीशी से तेल लेकर एक चौकी पर बैठ कर तेल लगा रहे थे। या यों कहिये कि अपने हाथ से खुद मालिश कर रहे थे। पास ही एक बड़ा चौकोर टेबुल घेर कर पाँच आदमी कुर्सियों पर बैठे थे और आशु बाबू से बातें कर रहे थे। उसमें दो थे अंग्रेज जस्टिस वुड्रफ़ और डाइरेक्टर ऑफ़ एजूकेशन हरनेल साहब; तीन थे भारतवासी या बंगाली, खाँनबहादुर असदुल्ला, आजेद अली बैरिस्टर और ज्ञान घोष, रजिस्ट्रार, कलकत्ता विश्वविद्यालय।

सर आशुतोष अंग्रेजी में बात कर रहे थे धड़ल्ले के साथ।

राजू और उनके मास्टर आशु बाबू के पैर छूने लगे तो उन्होंने मना किया कि तेल मालिश करने के समय प्रणाम नहीं लिया जाता। वहाँ एक तख्त था, जिस पर सफेद चादर बिछी हुई थी, उस पर बैठने के लिए राजू और उसके मास्टर से आशु बाबू ने कहा। पर उन लोगों ने बैठने से इनकार किया कि जब खुद परमपूज्य सर आशु तोष नीचे बैठे हैं तब वे लोग कैसे ऊँचे तख्त पर बैठें, पर आशु बाबू ने उनको डाँट कर तख्त पर बैठने को कहा और उनको बैठना पड़ा।

राजू के शिक्षक, अपनी एक गरीब विधवा रिश्तेदार के लड़के को, जो तीन दफे मैट्रिक फेल हुआ था, आशु बाबू से अनुरोध करके इस बार पास करवा कर, राजू को लेकर लौट आये थे।

स्कूल कॉलेजों के छात्र और शिक्षक वर्ग सर आशुतोष के परम प्रिय थे और उनकी दुर्दशा दूर करने में वह सर्वदा प्रयत्नशील रहते थे।

बाहर से उनका स्वरूप निर्दयी और कर्कश मालूम पड़ता था परन्तु अन्तर उनका क्षमा, दया, स्नेह और सेवा-भाव से परिपूर्ण था जिसके द्वार सबके लिये, विशेष कर निराश और दुर्बल व्यक्तियों के लिये सर्वदा उन्मुक्त रहते थे।

राजू बँगला में कविता रचना करता था। बँगला भाषा के लोक प्रिय मासिक 'मालंच' में उसकी दो कविताएँ प्रकाशित हुई थीं। चन्द्र नगर के प्रसिद्ध मासिक 'प्रवर्तक' में दो दफे उसके लेख निकल चुके थे।

इसी समय 'मालंच' सम्पादक और प्रवीण साहित्यिक काली प्रसन्न दास गुप्त एम०, ए० ने राजू के द्वारा रचित कविता संग्रह 'माला' को अपनी भूमिका के साथ प्रकाशित किया था और अबंगाली होते हुए भी बँगला भाषा में राजू की विलक्षण योग्यता की सराहना की थी।

छुट्टियों में राजू घर आता था। पूर्वबंग जाने के लिये सब यात्रियों को कलकत्ते के सियालदह रेल स्टेशन से रेल में चढ़ कर यात्रा करनी पड़ती थी। खुलना में रेल यात्रा समाप्त हो जाती थी। वहाँ से स्टीमर की यात्रा आरम्भ करनी पड़ती थी और स्टीमर यात्रा बरीसाल तक जाकर खत्म हो जाती थी। वहाँ से दूसरे स्टीमर ढाका और चटगाँव जाते थे। बरीसाल से ही मदारीपुर, पटुआखाली और कई जगहों के लिये स्टीमर जाते थे।

राजू के साथ एक नौकर रहता था, उसका नाम था भोलानाथ शील, जात का नाई। सियालदह से रवाना होकर बनगाँव स्टेशन पहुँच कर राजू जलपान करता। तब तक चाय पीने की आदत नहीं पड़ी थी। नाश्ते में बनगाँव के मशहूर समोसे और रसगुल्ला। पानी की जगह डाब का पानी पिया जाता था।

जब ट्रेन सिंगिया स्टेशन पहुँचती तो वहाँ पर वहाँ की बनी हुई प्रसिद्ध मिठाई 'काँचा-गोल्ला' दो बड़ी हाँडी भर कर खरीदता घर के लिये। फिर यशोहर के स्टेशन से वहाँ की बहुत सी मिठाई सरमाजा खरीदता और खुलना पहुँचकर खरीदता बहुत सा परवल, एक पूरा झाबा। इस तरह बहुत सा सामान हो जाता था।

फिर स्टीमर से यात्रा शुरू होती। उसका फर्स्ट क्लास बहुत सुन्दर था। उसका लाउंज, डाइनिंग सैलून, सजे कमरे सब बड़े आकर्षक थे। पारेरहाट राज परिवार के पास स्टीमर में चलने के लिये बारह व्यक्तियों का फर्स्ट क्लास का परिवारिक पास था। ढाका से खुलना तक जिस जहाज में चाहते थे वे लोग जा सकते थे। हुलारहाट में उतर कर दूसरे स्टीमर पर चढ़कर पारेरहाट बाजार स्टेशन में जाकर उतरना पड़ता था। वहाँ से दो दरबान आकर राजू को राजमहल में ले जाते थे।

रानी माँ महल के बरामदे से सदर फाटक की तरफ लड़के के आने की बाट जोहती रहती थीं। राजू आ जाता था तब उसकी इच्छा पूरी हो जाती थी। राजू के पैर छूते ही रानी माँ उसका मुख चूम लेती थीं, बलइयाँ लेती थीं। फिर उसको लेकर अन्दर चली जाती थीं और नहाने खाने के प्रबन्ध में व्यस्त हो जाती थीं।

नव वधू की शिक्षा

अन्दर महल में रानी माँ का काम बहुत बढ़ गया था। लड़के की शादी देकर बहूरानी पद्मा को इतने दूर से ले आयीं थीं, उसको ठीक तरह राजमहल में रख कर सब काम सिखाना था। वह बहुत छोटी थी। रानी माँ कभी-कभी उसे गुड़िया या गुड्डी कहकर बुलाती थीं। उसको पढ़ाने के लिये मास्टर था, वह अंग्रेजी और बँगला पढ़ाता था। फिर एक मास्टरनी भी रखी थी, सिलाई कढ़ाई सिखाने के लिए।

राजू और पद्मा दोनों छोटे थे। दोनों एक साथ खेलते, खेलते-झगड़ते, रानी माँ बीच बचाव कर सुलह करा देती थीं। एक दफे झगड़ा हुआ तो राजू ने पद्मा का फूलों से बँधा जूड़ा और बिलम्बित दोनों वेणियाँ खींच ली थीं तो वह गिर पड़ी थी और उसे चोट लगी थी।

राजू के दोनों कानों में सोने की लौंग और कण्ठ में सोने की जंजीर थी और उसमें कुल की रीति के अनुसार एक फीरोजा नग जड़ा था। दाहिने हाथ में एक सोने का मणिबन्ध था जिसमें काली माई और राम सीता के चरणों का चढ़ा हुआ फूल और भोजपत्र में कोई मंत्र लिखा रखा था।

बहूरानी को बाहर जाने के समय माथे पर घूँघट के ऊपर छोटा सा मुकुट पहनना पड़ता था जो सोने का था और जिसमें नग जड़ा हुआ था। बहूरानी का भाई पहले तीन महीने के लिये आया था, फिर करीब एक साल रह कर घर लौटा था। बहूरानी के मायके की नौकरानी का नाम राम बेई था। तीन बरस बाद जब वह देश लौटने लगी तो रानी माँ ने उसे बहुत सा इनाम दिया था। चाँदी के कड़े, कर्नफूल सोने के और पाँच बढ़िया साड़ी और चार जोड़ा धोती, एक सोने की सुलतानी मोहर यह सब उसको दिया गया था।

●

कई साल बाद राजू को ढाका शहर में रह कर पढ़ाना पड़ा। तब वह ढाका से स्टीमर में चढ़कर बरीसाल होते हुये घर आता था।

लड़का और बहू दोनों बहुत छोटे होने के कारण रानी माँ के साथ उनके अगल-बगल उनके पलंग पर ही सोते थे। रानी माँ रामायण, महाभारत, राजपूतों की कहानियाँ और बंग वीरों की कथायें उनको सुनाती थीं और वह दोनों बड़े चाव से सुनते-सुनते सो जाते थे।

बाद में राजकुमार राजू और बहूरानी पद्मा के लिये एक कमरा खूब सजा कर उसमें रखने का बन्दोबस्त रानी माँ ने किया था।

विलासी जीवन नहीं था रानी माँ का। वे सुबह चार बजे उठतीं और तभी नहा धोकर तालाब के किनारे तुलसी मंच के पास वेदी पर पूजा करने बैठ जाती थीं। पूजा का उपकरण जैसे पत्र, पुष्प, धूप, दीप, दो तरह का चन्दन, शंख, घंटा, सब का इन्तजाम बहूरानी पद्मा को अपने हाथ से करना पड़ता था, नौकर नौकरानियों को छूने तक की अनुमति नहीं थीं। रानी माँ जब तक पूजा करतीं, बहूरानी को बैठा रहना पड़ता था। फिर पूजा का आशीर्वादी फूल बहू को मिलता था, अपने लिये और राजू के लिये।

रानी माँ अपनी मुक्ति के लिये प्रार्थना नहीं करती थीं, उनकी एक मात्र प्रार्थना थी कि राजू और पद्मा चरित्रवान हों और वंश का नाम रोशन करें।

फिर वे देवालय जाती थीं, बहूरानी को लेकर। वहाँ से लौटकर, राजमहल के दो मंजिले के बरामदे में गरमी में शीतल पाटी बिछाकर और शीत काल में ऊनी गलीचे बिछाकर रानी माँ सबको लेकर नाश्ता करने बैठती थीं।

नाश्ते का उपकरण था मलाईदार दही, खिली, और कुटी हुई ताड़ की मिसरी या साधारण मिसरी, भिगोयी हुई अंकुरित मूंग, साथ में अदरख के टुकड़े और लाल नमक, फलों में केला और सन्तरा और मौसम के अनुसार अनन्नास, लीची, आम, लुकाट, पक्का कटहल और पपीता। दोपहर का खाना

होता था करीब एक बजे दोपहर को। दो कान्यकुब्ज परिवार इस काम के लिये महल में रखे जाते थे और रियासत से उनकी परवरिश की जाती थी। तीस-पैंतीस राज परिवार के लोग एक साथ खाना खाने बैठते थे। पटरे पर सामने चौकी पर थाली रखी जाती थी।

रानी माँ सफेद पत्थर की थाली में खाना खाती थीं, केवल एक बेला; रात को एक गिलास दूध।

जब तक राजू कलकत्ता पढ़ने नहीं गया था तब तक रानी माँ उसको अपने साथ खाना खिलाती थीं, दूध भात के साथ आम का रस या अमावट का गारा अवश्य रहता। यह न होता तो बढ़िया 'दूध सागर' या 'अग्नि-सागर' श्रेणी के पक्के केले।

हेमन्त और शीत काल छोड़कर और सब ऋतुओं में राज परिवार के लोग दिन में खाना खाने के बाद दो-तीन घंटे सोने के आदी थे। दिन में रानी माँ तीन बजे से पाँच बजे तक रियासत के दीवान को बुलाकर सब जरूरी कामों पर बातें करतीं और यथोपयुक्त आदेश देती थीं।

लड़की के स्वर्गवास हो जाने के बाद दामाद और चारों नात-दमादों ने रानी माँ और उनकी रियासत को बहुत नुकसान पहुँचाया था। जेवरात और नक़द रुपया भी छीन लिया था। खबर पाते ही कलेक्टर ने आकर सबका मुचलिका लिया एक-एक हजार का और रियासत का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया था।

रानी माँ और सब घर वालों को गुजारा मिलता था। फ़िजूल खर्ची एक दम बन्द कर दी गयी थी। बहुत से नौकर-चाकर और आश्रित रिश्तेदारों को राजमहल से निकाल दिया गया था। दान करने का खर्च, मेले तथा गाने बजाने का खर्च, सब बन्द कर दिया गया था। रियासत के अहलकार हर महीने कलकत्ते जाकर तेल, साबुन, पाउडर, सिल्क का कपड़ा, तरह-तरह के मेवे और मिठाई लाते थे। यह सब बन्द कर दिया गया था।

तीन-तीन महीने बाद कलकत्ते एक आदमी भेज कर छै मन गेहूँ और छै मन चने स्टीमर के जरिये पारेरहाट लाया जाता था और राजमहल में अपनी चक्की में पिसवा कर आटा और बेसन बनवाया जाता था। बंगाली नौकर चाकर दोनों वक्त भात खाते थे और उनके लिये मछली पकाने का इन्तज़ाम अन्दर महल के बाहर कर दिया गया था।

उत्तर प्रदेश निवासी एक दरबान साल में दो दफे उन्नाव, राय बरेली जाकर अमावट, मिथौरी, मुँगौरी, तरह-तरह के अचार और मुरब्बे और 'सिरका' और रनजीत पुरवा के पेड़े ले आता था।

उदड़ की दाल और अरहर की दाल आती थी कलकत्ते से। पूर्वबंग में सोना मूँग, मसूर और खेसाड़ी की दाल खायी जाती थी। राज परिवार में सोना मूँग और मसूर की दाल खायी जाती थी और नौकरों के लिये खेसाड़ी की दाल।

एक नौकरानी कच्चे नारियल की गिरी करीब दो सेर सिल पर पीस कर रख देती थी, वह पिसी हुई गिरी थोड़ी-थोड़ी दाल, सब्जी और दूध की खीर में इस्तेमाल की जाती थी।

इस तरह गिरी देने से सब चीजों का स्वाद बढ़ जाता था। इस प्रकार कई वर्ष बीत गये। अब राजू और बहूरानी समझदार हो गये थे तथा युवावस्था को प्राप्त हो चुके थे। प्रथम प्रणय पुलक उनको स्पन्दित करता था और वह एकान्त में समय बिताने के लिये सर्वदा उत्सुक रहते थे।

रानी माँ चाहती थीं की राजू और बहू रियासत के गाँवों के डेरों में घूम-घूम कर देखें कैसे जन साधारण का जीवन व्यतीत होता है और उनके अभाव और अस्वच्छन्दता, उनकी जीवन यात्रा प्रणाली और उनके सुख-दुःख की अनुभूति करें।

●

राजू की पढ़ाई भी खतम होने जा रही थी। अब ढाका में एक साल ही रहना था।

कलेक्टर आकर रानी माँ को समझा गये थे की अब कुमार बालिग हो गया है और इलाका कोर्ट ऑफ़ वार्ड्स से लेकर उसे खुद प्रबन्ध करना वाजिब है। एक ही लड़का था, उसकी बहिन तक नहीं थी, रानी माँ जी अकेली कैसे रह सकती थीं इतने बड़े महल में, सो शीघ्र ही लड़के की शादी कर दी गयी थी जिससे नयी बहू उत्तर प्रदेश से आकर पूर्वबंग देश के रस्मरिवाज से परिचित हो जाय और वहाँ की प्रचलित प्रथाओं और रियासत में उसका क्या-क्या करणीय कार्य था उससे अवगत हो जाय, ताकि उसकी अभिज्ञता से उसके पति को भविष्य में सहायता मिलती रहे। विवाह के समय राजू ग्यारह बरस का और बहूरानी पद्मा नौ बरस की थी। रानी माँ ने दोनों को अपने मन की पूरी शक्ति लगाकर भविष्य में जीवन धारण करने की शिक्षा देने में कोई कसर नहीं उठा रखी थी। अच्छे शिक्षक पढ़ाते थे और सबसे अच्छे स्कूलों में पढ़ाया गया था। साथ ही व्यायाम, खेलकूद और शिकार करने का अभ्यास कराया गया था। तैरना और घोड़े पर चढ़ना और संगीत की भी शिक्षा दी गयी थी।

साहित्यिकों से सम्पर्क

राजू बँगला, अँग्रेजी और हिन्दी में लिखने का आदी हो गया था विशेष कर बंगदेश में रहकर बंगदेश वासी और बंगभाषा से उसका गहन संपर्क स्थापित हो गया था।

शुभ विवाह के बाद सात बरस समाप्त हो गये थे।

बरीसाल जिले में एक विख्यात जमींदार कवि थे देवकुमार राय चौधरी। वे विख्यात साहित्य सेवी तो थे ही और थे कलकत्ते के धनी मानी समाज में विशेष प्रतिष्ठित। बँगला भाषा के सर्वश्रेष्ठ नाटककार द्विजेन्द्र लाल राय के अभिन्नहृदय मित्र और अंतरंग सखा थे देवकुमार बाबू।

देवकुमार कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ के प्रिय शिष्य और कलकत्ते के साहित्यकार संघ के सम्माननीय सर्वजन प्रिय सदस्य थे। वे मुख्यतः कवि थे। उनका स्वभाव, उनका दैहिक सौन्दर्य और उनका रहन-सहन सब बात कविजनोचित थी। वैसा सुपुरुष लाखों में एक मिलना मुश्किल था। बरीसाल शहर और कलकत्ते में सुकिया स्ट्रीट में उनके मकान थे। वे राजू के परिवार से बहुत दिनों से परिचित थे और साहित्य साधना के व्रत की दीक्षा देवकुमार बाबू ने ही राजू को दी थी।

इस देश में जैसे साहित्य सम्मेलन का दफ्तर है, और हिन्दी के राष्ट्र भाषा हो जाने के बाद से हिन्दी-साहित्य सम्मेलन अब केवल उत्तर प्रदेश का नहीं रह गया, वह अब समग्र देश का हो गया है। वैसे ही बंगदेश में 'साहित्य परिषद्' थी और उसका प्रधान कार्यालय कलकत्ते में था। उसके प्रधान संस्थापक, कहा जाता है, स्वर्गीय रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी थे और सबसे ज्यादा उस प्रचेष्टा को रूप देने में आर्थिक सहायता की थी लाल-गोला के महाराजा स्वर्गीय योगीन्द्र-नारायण राय पांडे. महोदय, ने।

इस साहित्य परिषद् की शाखायें बंगदेश के प्रायः सभी बड़े-बड़े शहरों में थीं। उसकी एक शाखा की प्रतिष्ठा बरीसाल शहर में हुई थी जिसके स्वर्गीय देवकुमार बाबू संपादक थे और सभापति बरीसाल जिले के जननेता, भारत विख्यात त्यागी पुरुष बाबू अश्विनी कुमार दत्त थे,

जब राजू की रचित एक कविता 'मालंच' मासिक पत्र में प्रकाशित हुई तभी उसको पत्र द्वारा सूचित किया गया कि उसको बरीसाल साहित्य परिषद् का सदस्य निर्वाचित किया गया है और उसको प्रबन्ध पाठ करने के लिये आमंत्रित किया गया है।

देवकुमार बाबू ऊँचे दर्जे के कवि थे और उन्होंने द्विजेन्द्र लाल राय की जीवनी लिखकर बंग साहित्य क्षेत्र में बड़ा नाम कमाया था। देवकुमार बाबू 'आकार-सदृश: प्राज्ञ:' तो थे ही और रूपवान भी थे। उनके हाथ की लिखावट रवीन्द्रनाथ के सदृश्य थी और रवीन्द्रनाथ ने खुद कहा था कि देवकुमार के हस्ताक्षर उनके अपने लिखे हुये हस्ताक्षर ही प्रतीत होते हैं।

इसके बाद राजू हर महीने बरीसाल जाकर साहित्य परिषद् की सभा में योगदान करता था और कई दफे उसने प्रबन्ध पाठ भी किया था।

देवकुमार बाबू उसको लेकर अश्विनी कुमार के पास जाते थे। उनका उपदेश और संयमित जीवन यात्रा प्रणाली के विषय में मनोयोगपूर्वक राजू सुनता था।

बरीसाल शहर में अश्विनी कुमार के सहचर थे एक महाज्ञानी पंडित और तपस्वी आचार्य जगदीशचन्द्र मुखोपाध्याय। आजीवन कौमार्यव्रतधारी आचार्य जगदीश सच्चे अर्थ में जनसेवक थे।

सत्य, प्रेम, पवित्रता, यही उनका मूल मंत्र था। "लिटिल ब्रदर्स ऑफ़ दि पुअर" संस्था उन्होंने प्रतिष्ठित की थी। शहर में या दूरवर्ती किसी गाँव में कहीं कोई बीमारी, जैसे कालरा या चेचक का प्रकोप होता तो आचार्य जगदीश का यह सेवादल वहाँ पहुँचकर दवा, पथ्य और अर्थ की सहायता प्रदान करता था।

बरीसाल जिले के अधिवासियों की स्वादेशिकता और देशोन्नति की प्रचेष्टाओं की ख्याति सुदूर लन्दन तक जब पहुँची तब पार्लियामेण्ट के प्रसिद्ध सदस्य और वर्षीयान कर्मी केयर हार्डी बरीसाल आये थे और उन्होंने जगदीश की जन सेवा और अश्विनी कुमार के जनसंगठन कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

अश्विनी कुमार दत्त को 'बरीसाल का मुकुट हीन राजा 'कहा जाता था। उन्होंने (बी० एम० कॉलेज) की प्रतिष्ठा की थी जो आगे चलकर संयुक्त बंग-देश का सबसे बड़ा कॉलेज माना जाने लगा था।

बरीसाल शहर नदी के किनारे बसा था और नदी के किनारे एक बड़ा सुन्दर रास्ता था जिसके दोनों तरफ झाऊ और कई तरह के बड़े-बड़े पेड़ों की श्रेणियाँ तीन मील तक चली गयी थीं। सुबह-शाम शहर के बहुत आदमी, विशेषकर स्कूल कॉलेज के छात्र छात्राएँ, सैर सपाटे और हवा खोरी के लिये वहाँ समवेत होते थे। पास ही में "बेलस पार्क" नामक खेलने का प्रसिद्ध मैदान था।

नदी के किनारे जहाजों का बड़ा स्टेशन था जहाँ प्रति घण्टे एक न एक यात्रीवाही या भारवाही जहाज आता जाता था। शहर में चलने के लिये घोड़ा गाड़ी और गाँव जाने के लिये किश्तियाँ थीं। बड़े-बड़े कस्बों में और बड़े बाजारों में स्टीमर से जाना पड़ता था। कहीं भी रेल नहीं थी, साहब लोग कहते थे 'Not an inch of Railway in Barisal District' अर्थात् एक इंच भी रेल बरीसाल में नहीं है। उन दिनों सिनेमा नहीं थे। फिर तो बड़े-बड़े तीन सिनेमा गृह बन गये थे।

'काली बाड़ी' थीं पाँच। राजू के पूर्व पुरुष राजा देवी गुलाम की बनाई हुई भी एक काली बाड़ी थी। वहाँ उनका बनाया हुआ घाट भी था। सबसे पहले जब अंग्रेज कम्पनी ने जहाज चलाया था, कलकत्ते के ठाकुरबाबू लोग जिसके प्रधान थे तब इसी घाट में जहाज भिड़ने की अनुमति राजा देवी गुलाम ने दी थी। घाट का नाम था पारेरहाट घाट।

आचार्य जगदीश की और श्रेष्ठ कृति थी 'धर्म रथिनी सभा।' इसके गृह निर्माण के लिए धन दिया था फरीदपुर जिले की एक महिला जमींदार ने।

ढाका कमिशनरी में चार जिले थे ढाका, बरीसाल, फरीदपुर, और मैमनसिंह। मैमनसिंह जिला भारतवर्ष में सबसे बड़ा माना जाता था, जिसकी आबादी थी छप्पन लाख।

दाम्पत्य जीवन, नये दायित्व, राजकाज

६

अब राजू उन्नीस बरस का हो गया था। कलेक्टर चाहते थे कि वह अब अपनी रियासत हाथ में लेकर खुद उसका प्रबन्ध करे।

राजू ने अपनी माँ और कलेक्टर से कहकर और दो साल का समय लिया। यह निश्चय किया गया कि राजू इक्कीस बरस की उम्र में रियासत अपने हाथ में लेगा और उसका प्रबन्ध करने का बोझ सम्हालेगा।

तब वह पूरा बालिग हो जायगा और बहूरानी पद्मा भी उन्नीस बरस की होकर अन्दर महल का भार संभालेगी।

दोनों का बाल-विवाह हुआ था। एक बच्ची भी हो गयी थी।

रानी माँ अपनी पोती को गोदी से नीचे जमीन पर नहीं उतारती थीं, नाम रक्खा था लावण्यप्रभा।

राजू की पढ़ाई खतम हो गयी थी और गवर्नमेण्ट ने उसको प्रथम श्रेणी का मैजिस्ट्रेट बना दिया था।

राजा देवीगुलाम को तो अपने राज में फ़ौजदारी और दीवानी दोनों तरह के मुक़दमों का फैसला करने का अधिकार था, किन्तु, ईस्ट इंडिया कम्पनी ने पारेरहाट राज को एक साधारण 'राजगी' बना दिया था।

राजू की पितामही बाल विधवा थीं, उनके एकमात्र बालक पुत्र राजा कालीप्रसन्न थे। तरह-तरह के षड्यंत्र रच कर स्टेट पर कर्ज लाद दिया था रिश्तेदारों और कर्मचारियों ने। उसी के फलस्वरूप तेलीखाली महल, पारेरहाट रियासत का एक बड़ा हिस्सा, ढाका के नबाब ने हथिया लिया था बहुत कम क़ीमत पर।

फिर जब राजा काली प्रसन्न बालिग हुए तो उनको बहुत कष्ट सहना पड़ा था। विशाल नदी के वक्ष में पारेरहाट प्रासाद और कई रास्ते और रहने की तीन कोठियाँ बह गयी थीं, वह सब नये सिरे से बनवाना पड़ा था। फिर उनका स्वर्गवास कम उम्र में हुआ था और अपने पीछे छोड़ गये थे अपनी विधवा स्त्री रानी माँ, लड़की इच्छामयी और लड़के राजू को। मँझधार में नाव डूब जाने में जैसा होता है वैसी ही हालत थी इस राज परिवार की। फिर उतार चढ़ाव शुरू हुआ और रियासत को सरकार ने अपने हाथों में ले लिया।

राजू के अब दो लड़कियाँ थी, लावण्य और कमल। पर अचानक छोटी लड़की दिवाली के दिन फ्राक में आग लग कर जल गयी। बड़े-बड़े डॉक्टरों ने देखा पर सब विफल रहा। वह चल बसी।

बड़ी राजकुमारी लावण्य की भी मृत्यु हुई पेट की बीमारी से। तरह-तरह का इलाज डॉक्टरों ने किया पर कोई फायदा न हुआ।

कई बरस राज महल में बड़ी उदासी छायी रही। रानी माँ और बहूरानी बहुत दुःखी रहती थीं। फिर तीर्थ पर्यटन के लिये रानी माँ, बहूरानी और राजू निकल पड़े थे।

कई जगह जाने के बाद वे लोग (जगन्नाथपुरी) पहुँचे और वहाँ तीन महीने उन्होंने बिताये। समुद्र के तट पर 'सी बीच व्यू' नाम का एक बँगला किराये पर लिया था।

वहाँ के युवराज राजू को बहुत मानते थे और उन्हीं के कहने से कई साल रथयात्रा के समय वहाँ सब कोई जाते रहे और यह पुरी यात्रा कई बरस तक जारी रही।

वे लोग साक्षी गोपाल, कटक, भुवनेश्वर और कोणार्क भी गये थे। राजू ने सब स्थानों के फोटोग्राफ लिये थे।

●

रानी माँ के दीक्षागुरु पुरी के शंकराचार्य की गद्दी के तत्कालीन मठाधीश थे। बंगदेश में बसे अनेक कान्यकुब्ज परिवारों के वे गुरु थे। रानी माँ ने राजू से कहा था कि वह और बहूरानी भी दीक्षा ले लें।

राजू था आधुनिक शिक्षित युवक। मन में उसके थी अवज्ञा और घृणा महन्तों और गुरुओं के प्रति, पण्डों और मठाधीशों के प्रति और विशेष कर उन लोगों के प्रति जो ऊपर से राम-राम भीतर से कसाई का काम करते थे। चन्दन भस्म लगाकर, त्रिशूल कमण्डल हाथ में लेकर सरल हृदय ग्रामवासी लोगों को

ठगने वालों को राजू ने कई दफे आड़े हाथों लिया था और रियासत से खदेड़ भी दिया था।

उसकी धारणा थी की लगभग सभी गुरु और पण्डे कुमार्गी और धूर्त होते हैं और वे लोग अमीर लोगों को और ज्यादा ठगते हैं अपने चक्र में फंसाकर। इसीलिए रानी माँ के कहने पर राजू ने उनसे कहा था कि अभी तो दो महीना जगन्नाथ पुरी में रहना है, कुछ दिन विचार करने के बाद मंत्र लेना ठीक होगा।

जगन्नाथ का रथ

पुरी में रथ यात्रा सबसे बड़ा पर्व है। बड़ा मेला लगता है। भारत के कोने-कोने से आषाढ़ महीने के इस शुभ दिन पर भक्तजन आते हैं और रथारूढ़ भगवान् की मूर्ति का दर्शन करते हैं।

काठ के बृहत रथ बनते हैं। तीन, जिसमें जगन्नाथ, सुभद्रा और बलराम की मूर्तियाँ रखी जाती हैं। बड़े-बड़े रस्से बाँध कर हजारों आदमी खींच कर रथों को 'गुंडिचा बाड़ी' ले जाते हैं, जहाँ कहा जाता है कि जगन्नाथ जी की ससुराल है और नौ दिन बाद फिर लौटा कर लाते हैं मन्दिर में वैसी ही धूमधाम के साथ।

बड़ा जुलूस निलकता है रथों के साथ, बहुत तरह के बाजे-गाजे, तरह-तरह की पताका शोभित यान-वाहन और लाखों नर-नारियों का अपूर्व उल्लास और हर्ष ध्वनि करते हुए रथों के साथ सहगमन। समग्र वातावरण आनन्दमय हो जाता है।

रथों के पीछे चलता है मठाधीशों और महन्तों का जुलूस। एमार मठ के महन्त की सवारी में सात-सात हाथी और स्वर्णमंडित होदे पर आसीन वे स्वयं, स्वर्ण छत्र का आवरण ऊपर से और सोने का मुरछल, पंखा, आसा-सोंटा सहित भृत्यों से परिवृत्त होकर निकलते हैं। 'आसा-सोटा' एक प्रकार का राजदण्ड होता है।

ऐसे ही और भी सजे-धजे महन्त और अभिजात वर्ग मिलते हैं, कोई स्वर्ण-खचित तामजाम में, कोई ऐसे ही पीनस पालकी में। उनके पीछे पदज यात्रा करते हैं गेरुआधारी बहुत साधु-साधुनी।

पुरी के युवराज के साथ राजू यह अपूर्व दृश्य देख रहा था। रानी माँ और बहूरानी पुरी के राजा के मैनेजर राय बहादुर सखीचन्द के दो मंजिले की छत से यह अपार भीड़ और महोत्सव देख रही थीं। वहाँ परिवार के सब लोगों के बैठने की जगह आगे से ही निर्दिष्ट की गयी थी।

राजू रानी माँ के गुरु को देख रहा था, वे सबके पीछे नंगे पैर, मामूली गेरुआ वस्त्र धारण किये, हाथ में बाँस की लाठी लिये चले आ रहे थे और उनका हाथी, तामजान और भृत्यगण रथ के जुलूस के साथ आगे-आगे चले गये थे।

राजू गुरुजी को, जो जगद्गुरु शंकराचार्य की पुरी की गद्दी के मठाधीश थे, एक साधारण भिक्षुक की तरह जाते देख कर बहुत ही प्रभावित हुआ।

उसकी समझ में आया कि दुनिया में सब आदमी, सब साधु और महन्त शत प्रतिशत धूर्त और विलासी नहीं हैं, उनमें कुछ सच्चे और जनहितचिन्तक भी हैं। परन्तु ऐसे व्यक्ति को पहचान लेना सरल नहीं है। क्योंकि ये लोग अपना प्रचार नहीं करते, अपनी महिमा के व्याख्यान नहीं देते, अपना ढोल नहीं पीटते।

मूक सेवा और अप्रकाशित जनहित-कार्य में ये लोग अपने को छिपाये रहते हैं। परहित चिन्ता और यथासाध्य परोपकार करने में रत रहना ही ये लोग अपना परम धर्म समझते हैं।

संत-समागम

एक दिन गुरुजी ने रानी माँ और उनके साथ के बीस आदमियों को प्रसाद लेने के लिये आमन्त्रित किया था अपने महल में। केलों की पत्तल पर पूरी, मालपुआ, हलुआ और कई तरह की सब्जियाँ और दही परोसे गये थे। बीच में गुरुजी राजू के साथ प्रसाद भोजन के लिये बैठे थे।

चाँदी की थालियाँ, सोने की कटोरियाँ और सब कीमती असबाब से भरा था गुरुजी का आश्रम, पर वह सब भक्तों और शिष्यों का दान था, उनको गुरुजी ने कभी छुआ तक नहीं था। कई शिष्यों ने सोने की खड़ाऊँ दी थीं, पर उन्होंने कभी नहीं इस्तेमाल की। वे तो काठ की साधारण खड़ाऊँ ही पहनते थे। नित्य रात चार बजे उठकर नहा-धोकर गुरुजी गोसेवा में प्रवृत्त हो जाते थे। पन्द्रह-बीस गायों को अपने हाथ से नहलाते थे, उनके सींगों और खुरों में तेल लगाते थे और अपने हाथ से उनकी सानी लगाते थे। चाँदी का पलंग था, पर सोते थे चटाई बिछाकर फर्श पर और आँगन की वेदी पर कुशासन बिछाकर बैठते थे। संगमरमर की बनी वेदी पर नहीं बैठते थे। उम्र होगी बासठ-तिरसठ के करीब, स्थूल काय, रंग गोरा, मुख-मंडल पर छोटी दाढ़ी और शिर पर छोटे कटे बाल और बीच में मामूली शिखा या चुटिया। कोई आडम्बर नहीं था, कोई व्यसन नहीं था उनके जीवन में, सच्चे भक्त की जीवन-झाँकी ही राजू को दिखायी पड़ती थी।

एक दिन राजू ने गुरुजी से कहा कि उसकी माँ दीक्षा लेने को कहती हैं, पर वह समझता है कि संसार के जाल में फँसकर और रियासत के काम में नियुक्त होकर मन्त्र का जाप और पालन कैसे कर सकता है, पूरी श्रद्धा और विश्वास के साथ, उसमें तो उसको बहुत सा दिखावटी अभिनय करना पड़ेगा और मिथ्या का आश्रय लेना पड़ेगा। इससे तो तभी मंत्र लेना बेहतर होगा जब संसार का मोह छोड़ सके।

गुरुजी राजू की बात सुनकर बड़े खुश हुए और कहा, "Be initiated when you feel the urge, not before that".—अर्थात् जब तुम्हारे मन में मन्त्र-दीक्षा लेने की प्रबल आकांक्षा हो तभी मन्त्र लेना, इसके पहले नहीं।

गुरुजी के वाक्य सुनकर वह मन्त्र-मुग्ध सा कुछ देर बैठा रहा। फिर चला आया था, गुरु को महान् ज्ञानदाता मान कर।

उसी मठ में गुरुजी के प्रधान शिष्यों और चेलों को अति विलासमय जीवन बिताते देखकर राजू को दुःख होता था। उसमें कुछ लोग क्लीन शेव करके रहते, सिल्क के गेरुआ वस्त्र पहनते, और मुख-मंडल में स्नो और पाउडर का इस्तेमाल करते थे और कहा जाता था कि इन्हीं में से कुछ लोगों का अनैतिक सम्बन्ध भी बाजारू औरतों से है।

परन्तु गुरुजी का कहना था कि आप अच्छे बनो, दुनिया के लोग अच्छे हो जायेंगे। हम लोगों में बातें बहुत होती हैं पर काम कुछ नहीं होता। थ्योरियाँ बनती जाती हैं। जब तक हमलोगों में नैतिकता और ईमानदारी नहीं आती तब तक भारतवासियों की उन्नति नहीं हो सकती। हम लोगों में दायित्वबोध बिलकुल नहीं है। जिसको जो काम सौंपा जाता है वह करता नहीं और विश्वासघात करता है। विश्वासघात करना तो अब मामूली-सी बात हो गयी है। सैकड़ों बरस से हमलोग पराधीन रहकर साहस, पराक्रम, सत्यता, धर्म, विश्वास और आत्मबल सब खो बैठे हैं। इसका सुधार होने के लिए बहुत दुःख सहना पड़ेगा, तब शायद हम लोगों का मंगल हो। अभी तो बहुत बुरे दिन सामने पड़े हैं। भगवान सब का मंगल करे।

गुरुजी घण्टों इसी तरह राजू को समझाते रहते और किस तरह आदर्श गृही बनता है इस तत्व का विशद वर्णन कर उसको समझाते।

वे कहते, "राजू, कभी क्रोध न करना, घर में सबको समझाना। न समझने तक समझाना पड़ता है, कभी धैर्य न खोना—तभी तुम संसार में विजयी होगे और सब बाधा विपत्ति को अतिक्रमण कर सकोगे। मन में शान्ति आवेगी।"

राजू सोच में पड़ जाता । ऐसा सच्चा गुरु कहाँ मिलेगा जिसे लोभ, मोह, क्रोध छू तक नहीं गया । सब की भलाई करना उनका प्रण है, जीवन-व्रत है ।

पुरी आये राजू को कई महीने हो गये थे और अब रानी माँ और बहूरानी पारेरहाट लौट जाना चाहती थीं ।

रानी माँ और बहूरानी के मन में एक बड़ा दुःख का बोझ था कि घर में लड़का नहीं हुआ । दो लड़कियाँ हुईं, दोनों गुजर गयीं । भविष्य में क्या होगा, बुढ़ापे की लकड़ी मिलेगी कि नहीं ?

एक दिन रानी माँ ने गुरुजी से पूछा कि बहूरानी का हाथ देखकर वे विचार करें कि उसके लड़का होगा कि नहीं ।

राजू था आजकल के सामाजिक जीवन से परिचित वह यह सब चिन्ता नहीं करता था, उसने अपने जीवन को लड़कपन से इस तरह ढाल लिया था, इस तरह बना लिया था, कि उसको किसी की परवाह न करना पड़े । किसी के संसर्ग या परामर्श की उसे जरूरत न पड़े ।

उसका व्यसन था खूब पढ़ना, English classics, हिन्दी और बंग भाषा की प्रसिद्ध पुस्तकें, बड़े-बड़े विद्वानों से मिलना, टेनिस खेलना, तैरना । गाने का शौक भी था... वह खुद बंगला और अंग्रेजी पत्रों में लिखता, विशेषकर उसकी लिखित बँगला निबंधावली बहुत ही समादृत हुई थी । यह छोड़ कर, वह रियासत का उचित प्रबन्ध करने के लायक सर्वथा उपयुक्त मालिक बनने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहता था ।

गुरुजी ने रानी माँ से कहा कि वे ज्योतिष शास्त्र नहीं जानते और थोड़ा बहुत जो सीखा था युवाकाल में, उस पर वह निर्भर नहीं करते और औरों को आत्मावलम्बन और आत्म सुख-त्याग और कठिन परिश्रम पर ही निर्भर करने का उपदेश देते हैं ।

रानी माँ के बारंबार कहने से गुरुजी ने बहूरानी का हाथ देखकर कहा कि बहूरानी के दो भाग्यवान और कुल-दीपक लड़के होंगे, जो वंश की मर्यादा की रक्षा कर सकेंगे ।

रानी माँ सुनकर आश्वस्त होकर घर लौटी थीं ।

इस बात का राजू पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा । वह यही सोचता था कि ऐसे गुरु अब भारत में नहीं मिलेंगे, कितना विलास और ऐश्वर्य फिर भी कितने वीतराग, परदुःख में संवेदनशील, कितने परोपकारी । आत्म-निग्रह, कृच्छ्र-साधन, दारिद्र्य-व्रत-धारण, निष्काम सेवा यही सब था गुरूजी के जीवन-धारण का अवलम्ब । छल-कपट, परानुकरण, आत्म-सुख-साधन, इन सबसे वे

राजू सोच में पड़ जाता। ऐसा सच्चा गुरु कहाँ मिलेगा जिसे लोभ, मोह, क्रोध छू तक नहीं गया। सब की भलाई करना उनका प्रण है, जीवन-व्रत है।

पुरी आये राजू को कई महीने हो गये थे और अब रानी माँ और बहूरानी पारेरहाट लौट जाना चाहती थीं।

रानी माँ और बहूरानी के मन में एक बड़ा दुःख का बोझ था कि घर में लड़का नहीं हुआ। दो लड़कियाँ हुईं, दोनों गुजर गयीं। भविष्य में क्या होगा, बुढ़ापे की लकड़ी मिलेगी कि नहीं?

एक दिन रानी माँ ने गुरुजी से पूछा कि बहूरानी का हाथ देखकर वे विचार करें कि उसके लड़का होगा कि नहीं।

राजू था आजकल के सामाजिक जीवन से परिचित वह यह सब चिन्ता नहीं करता था, उसने अपने जीवन को लड़कपन से इस तरह ढाल लिया था, इस तरह बना लिया था, कि उसको किसी की परवाह न करना पड़े। किसी के संसर्ग या परामर्श की उसे जरूरत न पड़े।

उसका व्यसन था खूब पढ़ना, English classics, हिन्दी और बंग भाषा की प्रसिद्ध पुस्तकें, बड़े-बड़े विद्वानों से मिलना, टेनिस खेलना, तैरना। गाने का शौक भी था... वह खुद बंगला और अंग्रेजी पत्रों में लिखता, विशेषकर उसकी लिखित बँगला निबंधावली बहुत ही समादृत हुई थी। यह छोड़ कर, वह रियासत का उचित प्रबन्ध करने के लायक सर्वथा उपयुक्त मालिक बनने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहता था।

गुरुजी ने रानी माँ से कहा कि वे ज्योतिष शास्त्र नहीं जानते और थोड़ा बहुत जो सीखा था युवाकाल में, उस पर वह निर्भर नहीं करते और औरों को आत्मावलम्बन और आत्म सुख-त्याग और कठिन परिश्रम पर ही निर्भर करने का उपदेश देते हैं।

रानी माँ के बारंबार कहने से गुरुजी ने बहूरानी का हाथ देखकर कहा कि बहूरानी के दो भाग्यवान और कुल-दीपक लड़के होंगे, जो वंश की मर्यादा की रक्षा कर सकेंगे।

रानी माँ सुनकर आश्वस्त होकर घर लौटी थीं।

इस बात का राजू पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा। वह यही सोचता था कि ऐसे गुरु अब भारत में नहीं मिलेंगे, कितना विलास और ऐश्वर्य फिर भी कितने वीतराग, परदुःख में संवेदनशील, कितने परोपकारी। आत्म-निग्रह, कृच्छ्र-साधन, दारिद्र्य-व्रत-धारण, निष्काम सेवा यही सब था गुरूजी के जीवन-धारण का अवलम्ब। छल-कपट, परानुकरण, आत्म-सुख-साधन, इन सबसे वे

सम्पूर्ण अपरिचित थे। जरूरत से ज्यादा अर्थ होने से आदमी दुश्चरित्र हो जाता है, कुमार्गी होता है, यही था उनका उपदेश।

राजू को पाश्चात्य देशों का उन्नति, साधन मार्ग अपनाने का मन होता। वह जानता था कि मूर्खता और दारिद्रय को देश से हटाने के लिये विज्ञान की सहायता लेना और आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ देश की आर्थिक उन्नति के लिये प्रयत्न करना जरूरी है।

गुरुजी यह बात नहीं मानते थे। वे कहते थे कि भारत, भारत ही रहकर उन्नति कर सकता है और अमेरिका या रूस बनने से उसे कोई फायदा न होगा। विज्ञान और विदेशियों की सहायता लेकर भारत कहीं अपने मूल से विलग न हो जाय। देश में एक न एक दिन आजादी आवेगी पर उसको कायम रखने के लिये हमलोगों को क्या-क्या करना है? पुरानी परिपाटी में जो शुभ है उसको तो रखना ही पड़ेगा और उसको मूलाधार मान कर अपने देश की उन्नति करना है, तभी देश का सर्वांगीण मंगल होगा। विदेश का रहन-सहन अपनाकर हमलोग अपने देश का क्या भला कर सकते हैं? कभी नहीं। ऐसा हो नहीं सकता, अगर होता तो सुभाष बोस विदेश में रहते और भारत में न आते। श्री अरविन्द वहीं कहीं रम जाते, पर उन लोगों ने अपनी मातृभूमि की सेवा करना ही अपना सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य समझा।

भार-ग्रहण

माघ का महीना।

बंगाल में एक कहावत है 'माघेर शीत बाघेर गाये लागे'—अर्थात् माघ महीने का जाड़ा बाघ को भी लगता है।

पर इलाहाबाद या दिल्ली के शीत का एक-चौथाई भाग भी बंगाल में नहीं पड़ता। वहाँ की रजाई या लिहाफ़ में एक सेर या दो सेर रुई देना काफी समझा जाता है। पाँच-छह सेर रुई के लिहाफ की वहाँ कल्पना भी नहीं की जा सकती।

कलकत्ते में बाबू लोग शीतकाल में अद्धी का कुरता और उस पर शाल का एक पल्ला या अलवान ओढ़ लेना ही काफी समझते हैं।

पूर्वी बंगाल में लगभग ऐसा ही जाड़ा पड़ता था या कुछ ज्यादा। राज-महल में सरस्वती-पूजा का आयोजन किया गया था।

पूजा-मंडप में देवी की मूर्ति ऐसी शोभा पा रही थी, जैसे जीती-जागती देवी हों। अपूर्व श्रृंगार और वाहन पर आरुढ़ मूर्ति देखकर सब चकित हो रहे थे।

यह पूजा माघ महीने में ही होती थी। माघ के महीने में वहाँ मूली की सब्जी नहीं खायी जाती। वहाँ की मूली कच्ची नहीं खायी जाती थी, वह बड़ी और बहुत मोटी होती थी केवल सब्ज़ी बनाने में इस्तेमाल की जाती थी। वहाँ तो मछली सब्जी में भी डाली जाती थी, करीब-करीब सभी प्रकार की तरकारी बनाने में मछली डाली जाती थी।

सरस्वती पूजा के दिन राजमहल में दिन भर सबको उपवास करना पड़ता था और पूजा-समाप्ति पर रानी माँ, राजू, बहूरानी और सब हिन्दू कारिन्दों को सरस्वती देवी के चरणों में पुष्पांजलि देनी पड़ती थी।

इसके बाद पुरोहित को दक्षिणा दी जाती थी और प्रसाद बाँटा जाता था, जो मुख्यत: होता था, लाई, खिली, चिउड़ा के मोये, कच्चे खीरे की फाँकें, ताड़ के बीज की गिरी, भीगी हुई मूँग की दाल, तीन तरह का गुड़, (ईख, ताड़ और खजूर का), ईख की गँड़ेरी, बतासा, संतरे की फाँकें और खीर (खीर बंगभाषा में रबड़ी को कहते हैं जिसमें चावल नहीं पड़ता), और उसीसे बने हुये तरह-तरह के 'पीठे' या पुये।

रात को यही प्रसाद खाया जाता था और दूसरे दिन रोज का सामान्य भोजन लेना आरम्भ होता था।

करीब-करीब इसी तरह का प्रसाद हर पूजा में बाँटा जाता था, सिर्फ मौसम के फलों में अदला-बदली होती थी।

पूर्व-बंग में सभी पूजाओं में बलिदान होता था पर राजू ने सरस्वती पूजा में सफेद बकरे का बलिदान बन्द कर दिया था।

केवल यही नहीं, उसने धीरे-धीरे सब पूजाओं में बलिदान की तादाद घटा दी थी।

सरस्वती पूजा के दो दिन आगे खबर मिली कि राजू को गवर्नमेण्ट ने रियासत की देखभाल करने के लिये आदेश दे दिया है। यही नहीं, रानी माँ उसको साथ लेकर रियासत के सब गाँवों में जायेंगी और प्रजा-जनों से मिलेंगीं। इस यात्रा के लिए ढाका से एक बड़ा, नया, सुन्दर बजरा आ गया था।

कारिन्दे लोग उस बजरे को सजा रहे थे। सामने के कमरे में मिलनार्थी आगन्तुकों के लिये दरी पर सफेद चादर बिछाकर सजाया गया था। इसके बाद वाले कमरे में राजू के बैठने का कमरा बनाया गया था। उसमें एक चार बत्ती का झाड़ टँगा था और कालीन पर एक सोफा सेट रखा था। बीच में गोल मेज पर लाल कमलों से शोभित फूलदान था। एक तरफ छोटी सी लिखने के लिये मेज़। कमरे के चारों तरफ चाँदी के फ्रेम में कई चित्र और एक ओर एक

तमंचा और एक राइफल रखा था। इसके बाद वाले कमरे में दो हिस्से थे, एक में रानी माँ और दूसरे में बहूरानी के ठहरने का प्रबन्ध किया गया था। इसके बाद वाला कमरा था स्नानागार और शौचागार का।

बजरे के साथ-साथ 'पानसी' नाव थी जिसमें दीवान के रहने के लिये बन्दोबस्त था। एक बड़ी 'कोष' नाव भी थी। उसकी छत बाँस के टट्टर से बनी थी। उसमें चार अमला बाबू और दो महाराज भोजन बनाने वाले थे।

और दो नावों में भोजन बनाने का सामान तथा बर्तन और कई कारिन्दे थे।

रानी माँ की और बहूरानी की खास दो नौकरानियों के लिये बजरे की छत पर तम्बू के अन्दर रहने का इन्तजाम किया गया था। राज-पुरोहित निशिकान्त मुखोपाध्याय ने पंचांग देखकर शुभ दिन निर्दिष्ट कर दिया था।

'सर्व सिद्धा त्रयोदशी' के दिन राजू दल-बल सहित रवाना हो गया।

चरबलेश्वर को राजू के जाने की खबर दे दी गयी थी। पूर्वबंग में अभिजातों के निवास को 'कचहरी' कहते हैं। चरबलेश्वर की कचहरी सज रही थी, फूल पत्तों से। नारियल और खजूर के पत्तों से प्रवेश-द्वार बनाये गये थे। नौकर लोग खाना बनाने का सामान लेकर आगे वहाँ पहुँच गये थे।

राजू का बजरा सुबह पाँच बजे रवाना हुआ था। हवा अनुकूल थी। बड़ा सा पाल तान दिया गया था और बजरा तीर की तरह पवन वेग से जा रहा था। दिन के एक बजे चरबलेश्वर पहुँचने की बात थी।

ढाई मील पाट की नदी, जो आगे चल कर बंगोपसागर से मिल जाती थी, उससे जब हवा जोर पकड़ती थी, और तूफान आता था तो वह नदी भयंकरी मूर्ति धारण करती थी। साढ़े बारह बजे नदी की यात्रा समाप्त हुई थी और पाल उतार कर रख दिया गया था। अब छोटी नदी में, जिसको वहाँ के लोग खाल कहते हैं, आठ मल्लाहों और एक माँझी ने बजरा खे कर कचहरी के घाट से लगा दिया था।

पहले नगाड़े बजे, फिर शहनाई और फिर पटाखे की जोर की आवाज सुनाई पड़ी। बहुत-सी औरतें एक तरफ 'उलु ध्वनि' कर रहीं थीं। किसी शुभ अवसर पर गृहांगनाओं का पहला कर्तव्य होता है कि वे 'उलु ध्वनि' करें। दोनों ओठों के अन्दर जीभ रखकर 'उलू ध्वनि' का उच्चारण सुरीले स्वर से किया जाता है तीन दफे, विशेष अवसर पर छः दफे। पूर्व-बंग में हिन्दुओं में कोई भी शुभ-कार्य इसके बिना नहीं किया जाता। पश्चिम-बंग में भी यह प्रथा बहुत प्रचलित है।

किसान लोग राजू और बहूरानी को बजरे से उतार कर ले गये, फिर स्थानीय काली बाड़ी में आकर बाकायदा पूजा और बलिदान हुआ।

किसान लोग राजू और उसके सब आदमियों के खाने के लिये दो मन दूध, एक मन दही, दस सेर गाय का घी, बढ़िया चावल एक मन, सोना मूँग और चाँदपाशा की मसूर की दाल, तेल, मसाला, हरे सूखे दो-सौ नारियल, बढ़िया पान एक हजार, रानी माँ के लिये कच्ची सुपारी और हरी हरीतकी या हर्रं लाये थे, सब्जियों में ज्यादातर कद्दू, तरोई, लौकी और केला के फूल (जिसको मोचा कहते हैं) लाये थे।

आमिष खाद्य का भी काफी मात्रा में प्रबन्ध किया गया था।

पाँच बकरे, पाँच खस्सी (जिनको वहाँ निम या रामखस्सी कहते हैं) बड़ी-बड़ी रोहू मछली, डेढ गज़ लम्बी पाँच, 'जेयन्त माछ' (जीती-जागती) हाँड़ी में भरी हुई मछली, जो महीने भर रखी जा सकती थी। मागुर, सिंगी और खालिसा माछ यह सब आया था डाली में सज-कर। बंगदेश में एक पुरानी कहावत है 'एक देशेर बुली आर एक देशेर गाली।' इसका अर्थ है, एक देश की सामान्य बोलचाल की शब्दावली दूसरे देश की बोली में अश्लील गाली बन जाती है।

एक उदाहरण दिया जाता है। हिन्दी-भाषाभाषी केश को बाल कहते हैं, सिर के बाल, मूँछ के बाल या नाक के बाल। बंगदेश में बंगभाषा में केश को 'चूल' कहते हैं। जैसे 'माथार चूल' अर्थात् सिर के बाल। वहाँ बाल शब्द का अर्थ दूसरा होता है। किसी बंगाली से यह शब्द कभी न कहना चाहिये। इसको वे गाली समझते हैं। कारण गुप्तेन्द्रिय के केशों को वे बाल कहते है।

भाषा के शब्दों को ठीक तरह से उच्चारण करना भी सबके लिये कठिन साध्य है, आसान नहीं है। अंग्रेज की तरह अंग्रेजी बोलना और बंगाली की तरह बंगला बोलना बड़ा कठिन काम है। बहुत दिन का अभ्यास होना चाहिये, तभी वैसा संभव होता है।

इलाहाबाद में बहुत से बंगाली डॉक्टर अब भी हैं। उन्हीं में से एक सज्जन ने अपने पेशे की शुरूआत की एक कहानी सुनायी जिससे थोड़ा-सा मालूम होगा कि उच्चारण प्रकरण कितना जटिल और आया ससाध्य है।

कोई तीस बरस पूर्व वह डॉक्टर कलकत्ते से नये-नये एम० बी० बी० यस० होकर इलाहाबाद आये और एक मुहल्ले में रहकर प्रैक्टिस शुरू की। उस मुहल्ले में ग्वाले लोग रहते थे। दूध, दही बेच कर वे लोग सम्पन्न थे। एक अहीर के युवक लड़के ने नयी शादी की थी और उसकी दुलहिन भी एक सुन्दरी और हृष्ट-पुष्ट युवती थी। एक बार उसको जोर का बुखार आया। कई

किसान लोग राजू और बहूरानी को बजरे से उतार कर ले गये, फिर स्थानीय काली बाड़ी में आकर बाकायदा पूजा और बलिदान हुआ।

किसान लोग राजू और उसके सब आदमियों के खाने के लिये दो मन दूध, एक मन दही, दस सेर गाय का घी, बढ़िया चावल एक मन, सोना मूँग और चाँदपाशा की मसूर की दाल, तेल, मसाला, हरे सूखे दो-सौ नारियल, बढ़िया पान एक हजार, रानी माँ के लिये कच्ची सुपारी और हरी हरीतकी या हर्रे लाये थे, सब्जियों में ज्यादातर कद्दू, तरोई, लौकी और केला के फूल (जिसको मोचा कहते हैं) लाये थे।

आमिष खाद्य का भी काफी मात्रा में प्रबन्ध किया गया था।

पाँच बकरे, पाँच खस्सी (जिनको वहाँ निम या रामखस्सी कहते हैं) बड़ी-बड़ी रोहू मछली, डेढ गज़ लम्बी पाँच, 'जेयन्त माछ' (जीती-जागती) हाँड़ी में भरी हुई मछली, जो महीने भर रखी जा सकती थी। मागुर, सिंगी और खालिसा माछ यह सब आया था डाली में सज-कर। बंगदेश में एक पुरानी कहावत है 'एक देशेर बुली आर एक देशेर गाली।' इसका अर्थ है, एक देश की सामान्य बोलचाल की शब्दावली दूसरे देश की बोली में अश्लील गाली बन जाती है।

एक उदाहरण दिया जाता है। हिन्दी-भाषाभाषी केश को बाल कहते हैं, सिर के बाल, मूंछ के बाल या नाक के बाल। बंगदेश में बंगभाषा में केश को 'चूल' कहते हैं। जैसे 'माथार चूल' अर्थात् सिर के बाल। वहाँ बाल शब्द का अर्थ दूसरा होता है। किसी बंगाली से यह शब्द कभी न कहना चाहिये। इसको वे गाली समझते हैं। कारण गुप्तेन्द्रिय के केशों को वे बाल कहते है।

भाषा के शब्दों को ठीक तरह से उच्चारण करना भी सबके लिये कठिन साध्य है, आसान नहीं है। अंग्रेज की तरह अंग्रेजी बोलना और बंगाली की तरह बंगला बोलना बड़ा कठिन काम है। बहुत दिन का अभ्यास होना चाहिये, तभी वैसा संभव होता है।

इलाहाबाद में बहुत से बंगाली डॉक्टर अब भी हैं। उन्हीं में से एक सज्जन ने अपने पेशे की शुरूआत की एक कहानी सुनायी जिससे थोड़ा-सा मालूम होगा कि उच्चारण प्रकरण कितना जटिल और आया ससाध्य है।

कोई तीस बरस पूर्व वह डॉक्टर कलकत्ते से नये-नये एम० बी० बी० यस० होकर इलाहाबाद आये और एक मुहल्ले में रहकर प्रेक्टिस शुरू की। उस मुहल्ले में ग्वाले लोग रहते थे। दूध, दही बेच कर वे लोग सम्पन्न थे। एक अहीर के युवक लड़के ने नयी शादी की थी और उसकी दुलहिन भी एक सुन्दरी और हृष्ट-पुष्ट युवती थी। एक बार उसको जोर का बुखार आया। कई

दिन तक जब न उतरा तो कई अहीर प्रधानों ने परामर्श कर बंगाली डॉक्टर को बुलाया।

बंगाली डॉक्टर साहब नये-नये आये थे। हिन्दी बोलना आसान है, वह भी बोलना सीख गये थे पर शब्दों का उच्चारण ठीक नहीं होता था। डॉक्टर ने आकर मरीज को देखा। बड़े जोर का बुखार था। उन्होंने उससे कहा, "बोखार चढ़ा, जोबन देखलाओ जल्दी"—बुखार हुआ है, जुबान दिखलाओ, यह था उनका अभिप्राय। अहीरों ने डाक्टर के "जोबन देखलाओ" कहने का बहुत बुरा माना और उनको वे उत्तम-मध्यम प्रहार देने ही वाले थे कि मुहल्ले के सज्जनों ने आकर सब बात समझाकर बीच-बचाव किया।

तीन दिन राजू दल-बल सहित चरबलेश्वर की कचेहरी में रहा।

रोज सुबह-शाम दरबार होता था। प्रजा लोगों की फरियाद की सुनाई होती थी। तरह-तरह के झगड़े, मुसलमान रैयतों में जायदाद के हिस्से-बाँट के और औरतों के तलाक के और हिन्दुओं के सूदखोरी के ज्यादा होते थे।

रानी माँ के पास जाते थे सताये हुये प्रजाजन जिनकी जमीन की बेदखली हुई थी या डिग्री जारी की गयी थी। वस्त्रहीन और अन्नहीन भी उनके पास जाते थे। रानी माँ सब का यथासाध्य उपकार करती थीं।

कभी-कभी तो रानी माँ आशातीत उपकार कर देती थीं दरिद्र प्रजाजनों का। अपने पास से रुपया देती थीं, और अपने वस्त्र देती थीं उनकी बहू-बेटियों को।

अचानक पारेरहाट राज महल से खबर आयी कि राजू को रानी माँ और सबको लेकर उसी दिन पारेरहाट लौट जाना है। वहाँ मेला हो रहा था और कलकत्ते की पन्ना बाई का कीर्तन भी चल रहा था।

राजू सबको लेकर दस बजे चला। बात ऐसी थी कि छोटी नदी से आधे घण्टे में बड़ी नदी में पहुँच जायेंगे, और जब उस नदी में ज्वार आयेगा तब उसी ज्वार के प्रवाह में, पाल तानकर, बजरा तीव्र गति से ढाई घण्टे में पारेरहाट पहुँच जायगा।

दूलिते छे तरी, फूलितेछे जल

दिन के ग्यारह बजे थे, खूब धूप छिटकी थी, हवा भी दक्षिण दिशा की चल रही थी। बजरे को जाना था उत्तर की तरफ। हवा सुविधा की थी। पाल तान दिया गया और माँझ दरिया में नाव तीर के वेग से चलने लगी।

इसी बीच हवा ने जोर पकड़ा और एक बड़े जोर का हवा का झोंका आया, और पाल का खम्भा बीच दरिया में टूट कर दो टुकड़े हो गया। अब

इतनी बड़ी विशाल नौका भी एक सूखे पत्ते की तरह पानी की प्रचंड लहरों में ऊपर-नीचे धक्का खाने लगी। मांझी और मल्लाह अल्लाह का नाम लेकर चिल्लाने लगे। कहने लगे अब पानी के प्रचण्ड प्रवाह में बजरा नहीं ठीक रह सकता, टूट कर डूब जायगा।

हवा के एक झकोरे के बाद दूसरा आया, फिर तीसरा। पाल की रस्सियाँ जो बटे हुये नारियलों के छिलके की थीं, कुल्हाड़ी से काट डाली गयीं और पाल पानी की लहरों में बह गया।

बजरे के अन्दर रानी माँ रोते-रोते भगवान से प्रार्थना कर रही थीं, बहूरानी बेहोश होकर एक तरफ पड़ी थीं, राजू विमूढ़ भाव से बजरे का सामान उठाकर बाहर नदी में फेंक रहा था—कुर्सियाँ, कालीन, दरियाँ यहाँ तक चाँदी का असा-सोंटा, थालियाँ, कटोरे और सब।

हवा जोर पकड़ रही थी। लहरों की फुंफकार बिकराल रूप धारण कर रही थी। इतना बड़ा जहाज जैसा बजरा विशाल नदी वक्ष पर एक पत्ते की तरह पानी के हिलकोरों में कभी तो पानी की अतल गम्भीरता में चला जाता और कभी ऊँची-ऊँची लहरों के पहाड़ ऐसे शिखरों पर आ जाता। क्या होगा भगवान !

गनीमत थी कि आकाश स्वच्छ था, कहीं बादल का नामोनिशान न था, पर हवा के थपेड़े ऐसे मालूम पड़ते थे कि बजरे को चकनाचूर कर डालेंगें।

हमलोग ऐसे तो भगवान को मानते नहीं, विपत्ति, रोग, शोक, दरिद्रता में जब मानव आकंठ निमज्जित हो जाता है, तभी उससे त्राण पाने के लिये भगवान से प्रार्थना करता है।

तब भगवान की विद्यमानता का विश्वास मन में पैदा हो जाता है।

कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ ने कहा है :—

विपदे मोरे रक्षा करो, ऐ नहे मोर प्रार्थना,
विपदे आमि ना जेनो करि भय,
दु:ख-तापे व्यथित चिते
नाइ बा दिले सान्त्वना,
दु:खे जेनो करिते पारि जय।
दुखेर राते निखिल धरा
येदिन करे वंचना,
तोमारे जेनो ना करि संशय।

हे भगवान, तुम विपत्ति में मेरी रक्षा करो मेरी यह प्रार्थना नहीं है। प्रार्थना यह है कि मैं विपत्ति में भय न करूँ, दु:ख के ताप से व्यथित मेरे

चित्त को तुम सान्त्वना दो यह मैं नहीं माँगता, मैं चाहता हूँ कि दुःख पर विजय पा सकूँ। दुःख की रात्रि में सारा जगत जिस दिन मुझसे प्रवञ्चना करे, उस दिन तुम्हारे प्रति मैं सन्देह न करूँ।

एक परिवार के सब डूब कर मर जायँ यह विधाता को अभिप्रेत नहीं था। बड़े-बड़े हवा के थपेड़े बजरे को विशाल नदी के दूसरे किनारे के पास ले गये, जहाँ से तीर की भूमि प्रायः सौ गज दूरी पर थी।

तभी अरशाद अली नामक एक मुसलमान नौकर ने बजरे को एक रस्से से बाँधा और दूसरा छोर अपनी कमर में बाँध कर वह दरिया में कूद पड़ा। तैरता हुआ वह नदी के किनारे पहुँचा और एक बड़े खजूर के पेड़ के साथ उसने रस्से का छोर कस कर बाँध दिया। तब बजरे के आठ मल्लाह और दो नौकर, दस आदमी मिल कर रस्से को खींचते-खींचते बजरे को किनारे ले आये और तब तख्ता डाल दिया गया और रानी माँ, राजू, बहूरानी तथा बजरे के सब आदमी बाहर निकल कर एक ककड़ी के खेत में खड़े हो गये, जहाँ आस-पास के गाँव वालों ने बजरे को जलमग्न न होकर सकुशल पार जाकर लगा देखा था। हम लोगों की अभ्यर्थना के लिये खेत में शीतल पाटी बिछाई गयी और डाब, पके पपीते, अनन्नास और लाल-लाल बड़े- बड़े 'अग्नि सागर' केले लाकर जमा किये गये।

गाँव के सब मर्द और औरतें राज परिवार के जल-समाधि से रक्षा पाने से आनन्दित होकर संकीर्तन गाने लगे, मृदंग और मजीरों की मधुर ध्वनि के साथ। अपूर्व उल्लास से शंख बजाये गये। रानी माँ ने सबको आशीर्वाद दिया और मिठाई खाने के लिये दो-सौ रुपये दिये। उस दिन रात को सब लोग वहीं गाँव के एक स्कूल-गृह में रहे, वहीं भोजन भी बना। रात को राजू के दल के सब आदमी, दरिया शान्त हो जाने के बाद, उसी स्कूल-गृह में पहुँच गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल नदी शान्त थी, हवा समाप्त हो गयी थी, अपार जल-राशि चाँदी की तरह चमक रही थी, छोटी-छोटी लहरियाँ उसकी गोद में खेल रही थीं...यह देख कर कोई समझ सकता था कि इसी नदी ने कल कितनी भयंकर मूर्ति धारण की थी। नदी-मातृक पूर्वबंग में ऐसी घटनाओं का अनुभव करीब-करीब सभी को होता रहता था।

सब लोग शाम को घर पहुँचे थे, तब नाचघर में कलकत्ते की मशहूर गायिका पन्ना बाई गा रही थीं—

आमार मरन समय तोमरा सबे थेको,
सबे थेको,

कृष्ण नामेर दुटि अक्षर
आमार अंगे लिखो।
हाय, देखो जेनो भूलो ना गो……

कृष्ण-विरह के दुःख से राधारानी प्राण त्यागने को प्रस्तुत हैं, व्रज में सखियों से कहती हैं, "हमारे मरने के समय तुम लोग सब मेरे पास रहना और मेरे शव के अंग-अंग में कृष्ण नाम के दो अक्षर अवश्य लिख देना ! हाय ! कहीं भूल न जाना यह बात।"

फिर कहती हैं,

मरिले बाँधिये रेखो तमालेरि डाले

अर्थात् "मरने के बाद मेरे शव को तमाल वृक्ष की डाल में बाँध कर रख देना।"

पूर्व-बंग में दो देवताओं का असीम प्रभाव विस्तृत हुआ था—जगत की शक्ति काली माई का और कृष्ण-राधिका के संयुक्त रूप का। हिन्दू मात्र इन दो देवताओं को किसी न किसी रूप में पूजा कर अपने को कृत-कृत्य मानते थे।

घर-घर काली माई की पूजा होती थी। कहीं दश प्रहरण-धारिणी दुर्गा, कहीं जगत्धात्री, कहीं वासन्ती देवी के रूप में और राधा, कृष्ण को लेकर जन्माष्टमी, झूलन, दोलयात्रा आदि में देव-देवी के रूप में। पुराने युग को छोड़ कर बंगदेश में राधा-कृष्ण की भक्ति तथा वैष्णव संप्रदाय के प्रभाव विस्तार में कभी कमी नहीं पायी गयी। इसी के प्रभाव से देशबन्धु चित्तरंजन दास ब्राह्म धर्म छोड़कर परम वैष्णव के रूप में परिवर्तित हुये थे, और कहा जाता है कि उन्होंने अपनी छोटी लड़की कमला की शादी शालिग्राम शिला को सामने रख कर सम्पन्न की थी।

जननी का प्रयाण

दस वर्ष और व्यतीत हो गये। राजमहल के पास की नदी में जल-प्रवाह असीम गति से बह रहा था जिसका अन्त नहीं था। मानव जीवन तो परिवर्तन-शील है ही। अब राजू के दो लड़के थे देवेन्द्र और रवीन्द्र।

खोका और रबू बड़े सुन्दर, बड़े चंचल थे और छोटा बच्चा तो बड़ा ही चिलबिल्ला था, दोनों ही राजमहल में सबकी आंखों के तारे थे। एक ही वृक्ष के दो गुलाब, नयनाभिराम और अपने परिवार के एक भावी रूप के कमनीय प्रतीक।

खोका जब दो साल का था तब रानी माँ का स्वर्गवास हो गया। वे जगन्नाथ

पुरी गयी थीं अपने पौत्र को गुरूजी को दिखाने के लिये। गुरूजी ने खोका को आशीर्वाद दिया और नाम रखा देवेन्द्र नारायण।

पुरी से लौटने के बाद रानी माँ अस्वस्थ रहने लगीं। उनके गले से रोज खून गिरता था। राजवैद्य, फैमिली डॉक्टर आदि जब हार गये और व्याधि बढ़ती ही गयी, तो रानी माँ को कलकत्ते लाया गया। सर नील रतन सरकार ने एक महीना इलाज किया, थोड़ा फ़ायदा हुआ तो रानी माँ पारेरहाट लौट आयीं। एक दिन दोपहर के भोजन के बाद फिर गले से खून गिरा और माँ अपने पुत्र और पुत्रवधू के कन्धों पर दोनों हाथ रख कर चल बसीं। मातृ-स्नेह की परिपूर्ण महिमा-मण्डित, अपने सब जनों की माँ की प्रतिमूर्ति, उनकी नश्वर देह आँखों से ओझल हो गयी।

आगे पीछे सभी को जाना है। पर स्नेहमयी और मंगल-भावनापूर्ण जननी का अवसान सहज में भूलना असंभव है।

पूर्व-बंग में श्राद्ध बड़ी धूमधाम से किया जाता था और श्राद्ध करने की कई पद्धतियाँ थी। बड़े आदमी दान-सागर श्राद्ध करते थे। राजू ने वैसा ही श्राद्ध किया था। हजारों ब्राह्मणों को खिलाया, घोड़ा-दान, पालकी-दान, नौका-दान, और वस्त्र-दान, सब किया गया। चाँदी का षोड़श-दान हुआ था। हाथी-दान करने का मन था, पर वहाँ हाथी कहाँ सहज में मिलता, गोदान आदि कृत्य हुए थे। जिले के कलेक्टर आदि प्रमुख व्यक्ति सब उपस्थित थे।

रामायणगान सात दिन हुआ था। जिले भर में राजू की मातृ-स्मृति-पूजा की सराहना ध्वनित प्रतिध्वनित होकर कई महीने तक कायम रही थी।

जिले के नेतृस्थानीय बहुत व्यक्ति आये थे राजू को समझाने और उनके बाल्यकाल के अविभावक यादव बाबू उनके पास तीन महीने रहे थे। सबने समझाया था कि अपनी गृहस्थी की नाव के कर्णधार के रूप में अब काम करना पड़ेगा। असीम धैर्य और साहस के साथ विलासिता, कुसंग, क्रोध और आलस्य त्यागना पड़ेगा। पितृपुरुष और परिवार का यश अक्षुण्ण रखने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहना पड़ेगा।

तभी आये थे, बरीसाल जिले के बहु प्रशंसित चारण कवि मुकुन्ददास समण्डली। उनका समादर बंगदेश तथा बिहार के घर-घर में होता था। ऐसे तो वह भारत-प्रसिद्ध भी हो गये थे। देश-मातृका की वंदना के गाने वे रचना करके गाते थे। स्वदेशी आन्दोलन के प्रवर्तन के समय उनका अविर्भाव हुआ था और तब से मुकुन्ददास आमरण देश-भक्ति के गाने गाते रहे और प्रचुर यश प्राप्त करते रहे। बंगाल और बिहार प्रान्त में ऐसा कोई धनी व्यक्ति नहीं था जिसने उनके गीत नहीं सुने और उन्हें पारितोषिक न दिया हो। मुकुन्ददास अपनी स्वदेश-पूजा

के संगीत-प्रचार के लिये चार दफे जेल गये थे। अश्विनी दत्त, सुरेन्द्रनाथ, विपिन पाल, अम्बिका मजूमदार और देश-प्रिय जे० एम० सेनगुप्त के पिता यात्रा मोहन सेन-गुप्त, ये सभी लोग मुकुन्ददास से बड़ा स्नेह करते थे और उनका उत्साह बढ़ाते थे।

मुकुन्ददास ने पारेरहाट राजमहल के नाचघर में गाया था—

हासिते खेलिते, आसिनि ए जगते,
करिते होवे मोदेर मायेरि साधना

हमलोग दुनिया में हँसने-खेलने नहीं आये। हमलोगों को तो मातृ-पूजा-व्रत की साधना करना है।

मुकुन्ददास के अतिरिक्त थे हेम-कवि। कथा-वाचक के रूप में कलकत्ते में उन्होंने बड़ी ख्याति पायी थी। कलकत्ता हाईकोर्ट के जज सर आशुतोष चौधरी उनके बड़े प्रशंसक थे। रेशमी गेरुआ वस्त्र धारण कर और सिर पर पगड़ी बाँधकर अंग्रेजी, बँगला और संस्कृत में उनके व्याख्यान बड़े मधुर और प्राणस्पर्शी होते थे। उनके रचे दो कविता-ग्रन्थ थे। उनके बहुत से गाने ग्रामोफोन में रिकार्ड किये गये थे। आधुनिक काल के छायावादी तरुण बंग कवियों में उन्होंने ख्याति पायी थी, पर दुःख की बात है कि इस तरुण कवि की अकाल मृत्यु हुई।

उनकी कविता का एक अंश—

सकल दुआर होईते फिरिया
तोमार दुआरे ऐसेछि,
सकलेर काछे लांछित होये
तोमारेइ भालोबेसेछि'

सब के दरवाजे खटखटाये, पर न खुले, और तुम्हारे गृह-द्वार के पास आया हूँ। सब के पास लांछित होकर मैंने तुम्हें प्यार किया है।

प्रिया के मरने के बाद हेम-कवि ने लिखा था—

शुधु से रेखे गेछे
चरण रेखा गो,
मलिन स्मृतिकणा,
वासना माखा गो।
चंचल, चपल, आलोक राशि माझे
निमेषे छेये गेछे सोहाग सुख साजे,
आर तो आसिलो ना, आर तो हासिलोना,
आर तो दिलोना से फिरे देखा गो।

वह अपने चरण-चिह्न मेरे लिये छोड़ गयी। उसकी स्मृति-कण मलिन हो रहे हैं, पर वासना से मुक्त नहीं हो पाते। परम सोहाग से, गम्भीर प्रेम से उसको मैंने चंचला चपला की आलोकशिखा के रूप में देखा था। वह तो फिर नहीं आयी, वह तो फिर नहीं हँसी, वह तो फिर दिखाई नहीं दी।

मनसा पूजा की कथा के लेखक विजय गुप्त ने भी बरीसाल जिले के गोईला गाँव में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम पाद में जन्म-ग्रहण किया था। पूर्वी बंगदेश में यह पूजा अभी तक प्रचलित है। उनकी पुस्तक का नाम था 'मनसा-मंगल'। स्वर्गीय रानी माँ ने मनसा-पूजा अपने महल में प्रवर्तित की थी। प्रतिदिन लगातार एक वर्ष, 'मनसा-मंगल' का गाना भी करवाया गया था।

कवि रजनी सेन के मातृ-संगीत की प्रथम पंक्ति अब राजू के अन्तर में अहरह झंकृत् हो रही थी—

स्नेह-विह्वल, करुणा छल-छल
शियरे जागे कार आँखि रे

स्नेह से विह्वल और करुणा से छलछलाती किसकी आँखें सिरहाने जाग रही हैं?

●

पन्द्रह वर्ष अतीत हो चुके थे। राजू अब छत्तीस वर्ष का युवक था। घर में उसकी पत्नी पद्मारानी और दो पुत्र, बहु-संख्यक दास-दासी, बाहर दीवान, अमलावर्ग, अहिलकार, कारिन्दे, और धन-जन-पूर्ण, रमणीय उद्यान-वेष्टित वासभवन, सब मिलाकर उसको एक आदर्श गृही होने का सौभाग्य मिला था।

शान्ति निकेतन में राजू कुछ दिन रहा था और देखा था कि ब्राह्म मुहूर्त में सब विद्यार्थी शय्या त्याग करते थे और फिर प्रार्थना-क्षेत्र में समवेत होते थे।

राजू चार बजे उठकर प्रातःकृत्य समाप्त कर देवालय में जाता और वहाँ देव-देवी का वन्दन कर घर आकर गीता का एक अध्याय और दुर्गा सप्तशती का पाठ करता था। फिर जलपान कर राजमहल में पालित हिरन, राज-हंस, मोर, बन्दर, गिनिपिग, तोते और कबूतरों की ठीक तरह से परवरिस होती है कि नहीं सो देखता, और फिर नाचघर में या खुली हवा में बैठकर दीवान को बुलाकर प्रजाजनों की फरियाद सुनता और यथायोग्य व्यवस्था करता।

बारह बजे तालाब में जाकर तैर कर नहाता और कभी-कभी दोनों बच्चों को तैरना सिखाता। अन्दर महल में तालाब में तैरना बड़ी अच्छी तरह से सीख लिया था पद्मारानी ने। वे भी लड़कों को तैरना सिखलाती थीं। धीरे-धीरे चारों आदमी अच्छे तैराक बन गये थे।

भोजन के समय अपने रिश्तेदार और बन्धु-मंडली मिलाकर तीस-चालीस आदमी राजू के साथ खाना खाने बैठते थे। पटे पर सामने थाली रख कर सब खाते थे।

बाहर से आने वाले अंग्रेज अफसर, सरकारी मुलाजिम और माननीय अतिथियों को संगमरमर की विराट् मेज पर चाँदी के बरतनों में खाना दिया जाता था, राजमहल के बाहरी तरफ के खाने के कमरे में। जरूरत के वक्त राजू को भी उसमें शामिल होना पड़ता था, क्योंकि राजू अब राजा था।

खाना खाने के बाद राजू दो घन्टे विश्राम करता और संवाद-पत्र, मासिक पत्र और बड़े-बड़े लेखकों की पुस्तकों का अध्ययन करता था। चार बजे से छः बजे तक रियासत का काम देखता था।

उसने इस बीच मिडल स्कूल को हाई स्कूल में परिणत किया, अस्पताल बनवाया, महल के पास तार घर खुलवाया और बहुत से नये-नये पक्के रास्ते उसने रियासत में बनवाये।

खेलने को टेनिस और बैडमिण्टन था और घर में बिलियर्ड और ताश। बहूरानी टेबुल टेनिस खेलती थीं।

ताश का खेल सबसे अच्छा होता था पद्मारानी का। बड़े-बड़े अंग्रेज अफसरों की औरतें उनसे खेल में हार जाती थीं और उनके खेल की बड़ी सराहना करती थीं। गृह-कार्य में निपुण, अच्छी तैराक और दयावती रमणी रूप में उनकी बड़ी प्रशंसा होती थी।

महीने में दो दफे बजरे पर चढ़ कर शिकार खेलने राजू जाता था। कभी-कभी रानी भी साथ जाती थीं।

गंभीर अन्धकार में टिमटिमाता प्रदीप

७

शिकार के लिये जाड़े में सुन्दरवन कमिश्नर की तरफ से बरीसाल और खुलना जिले के जमींदार, राजा लोग, विशेष कर तरुण युवक निमन्त्रित किये जाते थे। सात दिन लगते थे इस शिकार पार्टी में, पर सात दिन की जगह, पन्द्रह दिन में भी यह कृत्य मुश्किल से समाप्त होता था।

कलकत्ते से लाहा बाबू लोग और बहुत से राज घरानों के लड़के और उनकी पत्नियाँ दो जहाज किराये पर लेकर (चार्टर्ड स्टीमर) चले आते और कमिश्नर की पार्टी में शामिल होते थे। उसमें राजू और पद्मारानी को जाना पड़ता था। पर बच्चे होने के बाद से पद्मारानी यदा-कदा ही जा पाती थीं। कभी-कभी गवर्नर भी अलग से अपने स्टीमर 'रोहतास' में आ जाते थे। एक दफा गवर्नर-जनरल की पत्नी लेडी विलिंगडन आयी थीं। तब रौनक और भी बढ़ गयी थी।

रॉयल बंगाल टाइगर तो साल में एक या दो मिल पाते थे। पर बहुत से घड़ियाल, मगर, हिरन, चीते और एक आध बाइसन या बनैले भैंसे अवश्य मिल जाते थे। शिकार पार्टी के सहायक लोग ही ज्यादा शिकार करते थे और साहब लोग और कुछ पिट्ठू राजकुमार उसका फायदा उठाते थे। बाघ या घड़ियाल का शिकार कर उसके पास खड़े होकर फोटो खिचवाना प्रेमिका के साथ और फिर कलकत्ते जाकर बाघ की या घड़ियाल की खाल चर्मकार को देकर सूटकेस या सोफे का कवर बनवाते थे। जमींदार, राजा लोग सब चीजें अपने लिये नहीं रख पाते थे। प्रायः साहब लोगों को उपहार के रूप में, कोई पदवी पाने के लिए या कोई उद्देश्य-साधन के लिए या अपनी प्रेमिका की तुष्टि

साधन के लिए, सब कुछ सहर्ष देना पड़ता था। कभी-कभी तो यह चमड़ा अच्छा बनाने के लिये अमेरिका या इंग्लैंड भेजना पड़ता था।

शिकार सप्ताह में रात को जहाज में नाच-गान होता, चाय, काफी और ह्विस्की-सोडापान होता था। नयी नवेली अँगरेज औरतों से भारतीयों का परिचय कराया जाता था। प्रेम का पहला पाठ पढ़ाया जाता था।

बहुत से प्रेमी-प्रेमिकाओं के मन की अभिलाषा पूर्ण न होती थी तो सम्बन्ध टूट जाता था। बहुत से मन-मुटाव और छोटे-मोटे झगड़े होते थे। कमिश्नर की पत्नी और वयस्क औरतें दोनों में सुलह कराने की कोशिश करती दिखाई पड़ती थीं, पर असल में वे भी अल्हड़ युवक-युवतियों का या प्रेमी-प्रेमिका के झगड़े और मिलन को बड़े चाव से देखती थीं।

एक बार एक अमेरिकन चालीस वर्षीया मिस नैन्सी शिकार पार्टी में आयी थीं। बड़ी गोरी, बड़ी मोटी-ताजी थीं वह और स्कर्ट एवं कसी चोली में अपने अंग-प्रत्यंगों का खूब प्रदर्शन करती थीं। यह खबर भी मिल गयी थी कि वह बहुत धनी महिला थीं। नाचना, थिरकना उसे खूब आता था। आधुनिक अमेरिकन कविता विशेषतः प्रेम विषयक कविताओं की आलोचना में भी वह पारंगत थीं। उसका लेकचर रात को डिनर के बाद होता और देश-विदेश के भ्रमण की कहानियाँ भी वह कहती थीं। सब मंत्र-मुग्ध होकर सुनते थे।

इसके बाद थोड़ा विश्राम करती थीं और फिर रोज एक नये भारतीय युवक के साथ नाचती, या यों कहिये कि उसे नाच सिखाती थीं और नाच के बाद एक कमरे में उस युवक के सामने बेहोश होकर बिस्तर पर लेट जाती थीं और युवक को पास बैठना पड़ता था। एक या दो घण्टे के बाद वह होश में आती थीं और युवक से जबरदस्ती अपनी काम-वासना चरितार्थ कराती थीं। एक दफे, दो दफे, तीन दफे उस युवक को रात में उसकी कामाग्नि का इंधन जुटाना पड़ता था। अंग्रेज या विदेशी युवकों को वह नहीं पसन्द करती थीं। उसको भारतीय युवक विशेष रूप से प्रिय थे। वे भी पतंगों की तरह उसके काम के दीपक में जल-भुन जाते थे।

कुछ अच्छी औरतें ताश या शतरंज खेलती थीं, चाय, काफी पीती थीं, पर कभी ड्रिंक नहीं करती थीं। तीन-चार वयस्क महिलायें तो शरबत और फल लेती थीं आहार के रूप में।

नियम था सुबह नौ बजे नहा-धोकर नाश्ता करना। फिर जहाज से एक पार्टी छोटी नावों में चढ़कर मछली मारने या घड़ियाल और जल-जंतुओं के शिकार के लिये निकल पड़ती थी, और दूसरी पार्टी जहाज से उतर कर किनारे जाकर जंगल का अभियान करती, बाघ, चीता या हिरन

के शिकार के लिये। दो बजे सब लौट आते थे और खाना खाते थे। गाना भी होता था। कभी-कभी सात दिन का प्रोग्राम पन्द्रह दिन तक चलता था। गवर्नर या चीफ़ जस्टिस आ जाते तो ऐसा ही करना पड़ता था।

एक दिन कोई शिकार न मिला और कमिश्नर साहब की तबीयत कुछ खराब थी। सब कोई स्टीमर में थे। शाम को पन्द्रह युवक-युवतियों की टोली दो छोटी डोंगियों में बैठ कर खुद खेते हुये मोरेलगंज नामक क़स्बे में लाहा बाबू की कचहरी पहुँचे लाहा स्टेट के मैनेजर के आमंत्रण पर। इसमें राजू और कलकत्ते के एक सबर्बन अस्पताल की लेडी सुपरिण्टेण्डेण्ट डॉक्टर कुमारी प्रभा घोष, एम० बी० बी० एस०, एफ० आर० सी० एस०, जो टेनिस खेलने और जन-कल्याणकार्य के लिये समादृत थीं, शामिल थीं।

खूब खिलाया था हरिपदबाबू ने। वे ही मैनेजर थे। वे आगे पारेरहाट राज में ला क्लर्क थे। उनकी फिर बड़ी तरक्की हुई थी जब कलकत्ते के लाहा बाबू एक बड़ी स्टेट में मैनेजर बनाये गये थे। वे राजू को लड़कपन में अपनी गोद में बैठाकर खिलाते थे। पूज्य रानी माँ अपने एक मात्र लड़के राजू को उन्हीं के साथ कलकत्ते या दूरवर्ती स्थानों को भेजती थीं। हरिपदबाबू ने राजू को और उनके कुछ साथियों को खाने के लिये निमत्रंण पर बुलाया था।

हरिपदबाबू के दिये हुये डिनर में मछली ही थी दस किस्म की। मछली से बना हुआ पोलाव, मछली का सिर सोना-मूँग की दाल में, मेटकी मछली के काँटे से बनी हुई चने की दाल, दही से बनी हुई मछली आदि-आदि और हिरन का गोश्त, कई तरह से बना हुआ और बहुत तरह के भोज्य पदार्थ थे। मिष्टान्न थे रसगुल्ला और छेने की खीर।

खाना आठ बजे आरम्भ किया गया था और करीब चार घंटे में समाप्त हुआ था। बहुत खा लिया था तरुण शिकारीदल ने। वैसा वजनी खाना खाने के बाद नींद नहीं आवेगी, अब क्या किया जाय, यही भावना थी पन्द्रह तरुण-तरुणियों के मन में।

सन्तोष अथवा काकमारी के राजकुमार ने कहा था, नाच-गाना किया जाय। तरुण बैरिस्टर सुनील ने कहा था, ताश खेला जाय। कलसकाठी के जमींदार रामेश्वर ने कहा था, जब ह्विस्की-सोडा यहाँ पर्याप्त नहीं है तो 'धेनो मद' (ताड़ी) ही चखा जाना चाहिये आज के दिन। यही राय, राय बहादुर नगेन वसु और राय साहब मदन दत्त ने दिया था।

इस पन्द्रह आदमी की पार्टी में दस मर्द और पाँच औरतें थीं। औरतों में दो अपने पतियों के साथ, एक अपने सगे भाई के साथ और दो अकेले आयी थीं। इनके नाम थे डॉक्टर कुमारी प्रभा घोष और मिस फूल रेणु। इस पार्टी के अगुवा थे तरुणों में राजू, और तरुणियों में प्रभा। सब की उम्र बीस से लेकर पैंतालिस तक की थी।

यह अक्सर दीख पड़ता है कि आदमी के पास अगर जरुरत से ज्यादा रुपया हो जाय और रहने-खाने का अभाव न हो तो मद्यपान और स्त्री-संग की आसक्ति आप-से आप आ जाती है। बहुत से साथी आसानी से मिल जाते हैं; जिनका एक ही काम रहता है खाओ, पियो, मौज करो। इसी कारण भारतीय युवक समाज विशेष कर धनी तरुणवर्ग अतंःसार शून्य या खोखले होते जा रहे हैं। दृढ़ता, सत्साहस, कर्तव्य-परायणता और कठिन कायिक परिश्रम को त्याग कर भारतीय अमीर घराने के लड़के पथभ्रष्ट होकर अधः पतन की चरम सीमा पर पहुँच चुके हैं जहाँ से लौटना मुश्किल है।

●

पूर्णिमा की रात्रि थी। चाँदनी ने चारों तरफ अपनी रजतशुभ्र मायाजाल फैला रखा था और वह जादू से भरा प्रतीत होता था। तरुण-तरुणियों का हास-परिहास, चंचलता और तरल वाद-प्रतिवाद राजू को लड़कपन से ही अच्छा नहीं लगता था। कभी-कभी वह राजसी ठाठ से विरक्त हो जाता था और कठिन से कठिन कायिक परिश्रम करने की उसकी इच्छा होती थी।

तब राजू ने डॉ० प्रभा से पूछा कि पूनम की यह चाँदनी रात कैसे बितायी जाय, तब प्रभा ने फूल रेणु को गाने के लिये कहा था।

फूल रेणु ने कहा था ज्यादह खा लिया है, गाना संभव नहीं, पर दीदी प्रभा के आदेश से एक गाना गाकर अवश्य सुनाऊँगी।

उसने गाया था :—

एखनि उठिबे चाँद,
आधो आलो, आधो छाया ते
काछे एसे प्रिय
हातखानि राखो हाते...

चन्द्रमा अभी उदय होगा आधे आलोक, और आधे अंधकार के बीच। हे प्रिय, इस समय तुम अपना हाथ मेरे हाथ में रखो।

एक गाना गाकर फूल रेणु ने समाप्त किया था। उसका सुरीला कण्ठ और गाने का ढंग मोहक था।

माटी की महक

जिस बाग में हमलोग बैठे थे उसी के पास कुछ जमीन पड़ी थी साग-सब्जी का बाग (किचिन गार्डेन) बनाने के लिए, और यह भी राजू को मालूम था कि माली बीमार होकर अपनी कोठरी में पड़ा है।

राजू ने कहा कि जब कल सुबह सात बजे ज्वार का पानी भर जाने के बाद ही लौटना है और रात को नींद भी नहीं आ रही है, तो उससे अच्छा होगा कि रात भर परिश्रम कर जमीन गोड़ कर सब्जी का खेत बना डाला जाय।

सब विलासी बाबू लोग थे और महिला-वर्ग फूल ऐसी सजी थीं, ऐसा काम करने को वे कब सहर्ष राजी हो सकते थे? पर प्रभा तुरन्त तैयार हो गयीं और हाथ की घड़ी और हैण्डबेग मेज पर रख दिया और फावड़ा लेकर कूद पड़ीं सर्वप्रथम। इतनी मशहूर डॉक्टर और फारेन डिग्री-प्राप्त तथा महिला डॉक्टरों में अग्रगण्य प्रभा, रात असार गप-शप में न बिता कर और काम और वासना-उत्तेजक नाच और गानों में भाग न लेकर जल्द श्रमदान में जुट गयी थीं। सब आश्चर्यचकित थे।

इसके बाद तो राजू और उसके साथ आठ मित्रों और फूल रेणु तथा वन्दना ने अगुआ होकर श्रमदान यज्ञ में आहुति देना आरम्भ कर दिया था।

एक वयस्क महिला किरण शशि ने श्रमदान में हाथ नहीं बटाया था। सब लोग धड़ाधड़ फावड़ों से मिट्टी के बड़े ढेले फोड़ते हुए खेत बना रहे थे। अमीरों के बेटा-बेटियों का स्वेच्छापूर्वक ज्योत्सनामयी रजनी में इस तरह के श्रमदान का यह दृश्य अभूतपूर्व था। ऊपर चाँद हँस रहा था, दाहिनी तरफ ज्वार के पानी से दोनों किनारों को प्लावित कर नदिया अपनी वेग से बही चली जा रही थी और फूल रेणु गुनगुनाती गा रही थी :—

नाइ बा घुमाले प्रिय, रजनी एखनो बाकी।
प्रदीप निमिया जाय,
शुधू जेगे थाक् तव आँखि···
एखनो दुआर पाशे, हेनार सुरभि आसे,
पिया ! पिया ! बोले डाके
साथीहारा कोन पाखी,
रजनी एखनो बाकी।

हे प्रिय अभी रात बाकी है, अभी मत सो जाओ। दिया का तेल समाप्त हो जाने से बुझ रहा है, केवल तुम्हारी आँखें जागती रहें।

अभी रातरानी फूलों का सुवास मेरे दरवाजे के पास से आ रहा है। अपने साथी से बिछुड़ी कौन चिड़िया 'पिया, पिया,' पुकार रही है ? अभी, प्रिय, मत सोना, अभी रात बाकी है।

रात शेष हो चुकी थी; चाँदनी ढल गयी थी, निष्प्रभ हो गयी थी और करीब दो बीघे जमीन को बिलकुल गोड़कर सब्जी लगाने लायक बना दिया गया था। सब का श्रम सार्थक हो गया था।

ज्वार का पानी नदी में भर गया था। दोनों बोटों में फिर पन्द्रह आदमी बैठ कर पाँच मील रास्ता तै कर स्टीमर में लौट आये थे और उनके मनों के तारों में कवि की वाणी झंकृत हो रही थी :—

धूल धरा की नभ पर छायी,
नभ की सांस धरा पर आयी,
जिसे माटी की महक न भायी।
उसे नहीं जीने का हक़ है।

...सभी हरिपदबाबू द्वारा अतिथियों की संवर्धना की प्रशंसा कर रहे थे और साथ ही साथ समवेत श्रमदान के महत्त्व का अनुभव कर रहे थे।

राजू ने एक राजकुमार होते हुये, एक रियासत का अकेला मालिक होते हुये, ह्विस्की-सोडा और असार गप-शप में और सुन्दरियों की संगति पाने के प्रयास में न बिता कर फावड़ा लेकर जमीन खोदने में रात बितायी थी; इस दृश्य ने प्रभा को बहुत प्रभावित किया था और उसको बार-बार उस कविता की पंक्तियाँ याद आ रही थीं :—

जो न छाती में कसक छिपाये,
उसे नहीं जीने का हक़ है।

हम लोगों को आज इत्र की महक से माटी की प्यारी-प्यारी सोंधी-सोंधी महक अच्छी लगी थी। यूरोप-अमेरिका से प्रत्यागत थे कई आमंत्रित शिकारी अभिजात, पर आज उनकी समझ में थोड़ी देर के लिए आया कि 'डिलाइट पेरिस' इत्र से सुवासित भारत के तरुण-तरुणियाँ भी माटी की महक से घिरे हुए अपने भारतीय भाई-बहनों से प्रेम करना सीख सकते हैं। जब तक हम समाज को सुन्दर और स्वस्थ नहीं बना सकते, तब तक विदेश से प्राप्त हमारी शिक्षा और अर्जित ज्ञान की सार्थकता नहीं हो सकती।

...सुन्दरबन शिकार पार्टी की जंगल में अवस्थिति का आज दसवाँ दिन था।

कमिश्नर और उनकी पत्नी को एक शेर और एक चीता, राजू को एक घड़ियाल, प्रभा को एक बड़ा हिरन, राय बहादुर को एक बाइसन और सबको बहुत से हड़िल और बहुत से बतखों के शिकार का श्रेय मिला था। सबको थोड़ा बहुत शिकार खेलने का मौका मिला था और शिकार भी सबको मिले थे। सब खुश थे। चीफ जस्टिस तीन दिन बिता कर और स्थानीय अधिवासियों से पाँच व्याघ्रचर्म और पाँच हिरन की खालें खरीद कर कलकत्ते लौट गये थे।

एक राजकुमार दुःखी थे कि किसी लड़की से नाजायज प्रेम न कर सके और अब लौटना पड़ रहा था, फिर कब मौका मिलेगा। नदी के विशाल वक्ष में, ज्योत्सनामयी रजनी में, शीतल पवन के झँकोरे में वे किसी लावण्यमयी को अपने अंक में न बैठा सके।

वे राजू से कहते, तुम्हारी शादी ग्यारह बरस की उम्र में हुई थी, तुमको रोमाञ्च की अनुभूति नहीं मिली, यह तुम्हारा दुर्भाग्य है। हमने तीस बरस की उम्र में विवाह किया था पचीस बरस की कालीपुर की राजकुमारी शीला से। फिर यूरोप अमेरिका का भ्रमण किया था। वहाँ तो हर साफ सुथरे भारतीय प्रिंस ही समझे जाते हैं और औरतें, किशोरी, कुमारी, युवती, प्रौढ़ा और सजी-बजी वृद्धायें भी छापा मारती हैं उन पर, नकली प्रेमजाल में उनको फाँसा जाता है।

राजकुमार कहते कि यूरोप की एक-एक ट्रिप में उनका एक-एक लाख रुपया खर्चा होता था। राजू को बहुत प्यार करते थे। उनकी पत्नी शीला राजू को ठाकुरपो याने देवर कह कर बुलाती थीं और वैसा ही स्नेह था उसके लिये।

विचारी शीला रानी की कोई सन्तान न थी। वे तरसतीं, तड़पतीं, एक बच्चे की प्राप्ति के लिये, उसको गोद में खिलाने के लिये।

राजकुमार दिन-रात अपना समय शराब पीने में और औरतों के साहचर्य में बिताते थे। वे अपने अंग्रेज और भारतीय दोस्तों में कहते, हमने अगणित औरतों का भोग किया है, और गर्व से फूले न समाते।

प्रभा ने एक दिन यह बात सुनकर कहा था, 'He is worse than a deliberate murderer. He has broken so many hearts—he should be shot from head to foot'—वह खूनी से भी बदतर है, हजारों हृदयों को टुकड़े-टुकड़े कर दिया है। उसको सिर से पैर तक गोलियाँ मारनी चाहिये।

शीलारानी अपना दुखड़ा राजू को सुनाती जब राजू कलकत्ते आता था। अपार धन, बहुत सी जायदाद सब पानी की तरह बहाया जा रहा था। राजकुमार का कर्ज बढ़ता जा रहा था। कलकत्ते की कई कोठियाँ बिक गयी थीं।

प्रभा एक गरीब माता-पिता की लड़की थी। राजू जब फिरोजपुर गवर्नमेण्ट स्कूल में और ढाके में सीनियर केम्ब्रिज में पढ़ता था, तब प्रभा के माता-पिता भी वहीं पास में कार्यवश रहते थे। लड़की पढ़ने में तेज थी, आई० एस० सी० तक उसे छात्रवृत्ति मिली थी और फिर उसने कलकत्ता मेडिकल कॉलेज से एम० बी० किया था और उसे स्वर्णपदक मिला था, फिर वह सरकारी खर्चे से इंग्लैण्ड जाकर एफ० आर० सी० एस० हो आयी थी। कलकत्ते में एक सुबर्बन अस्पताल में लेडी सुपरिंटेण्डेण्ट के पद पर उसकी नियुक्ति हो गयी थी। उसके और नौ भाई-बहिन थे। पिता छोटी सी एक नौकरी, कलकत्ते के एक फार्म में करते थे। उससे गुजारा नहीं होता था। वे पारेरहाट राज के एक पट्टीदार की हैसियत से कुछ जमीन के मालिक थे और राज परिवार में काफी जान-पहिचान थी। प्रभा के पिता 'राज अभिषेक' में और कार्तिक पूजा के मेले में पारेरहाट हर साल आते थे। अच्छा शतरंज खेलते थे और राजू के साथ कई-कई दिन, घंटों तक खेल होता था।

प्रभा राजू को बहुत समादर के भाव से देखती थी। उसका कोई पतन, और सब राजकुमारों की तरह, नहीं हुआ था, इस वास्ते वह और भी उसकी श्रद्धा का पात्र था।

अब प्रभा तीस बरस की हो गयी थी। एक दिन उसके पिता ने राजू से अनुरोध किया की वह प्रभा को शादी करने के लिये राजी करा दे, क्योंकि वे समझते थे की राजू की बात प्रभा कभी न टालेगी।

प्रभा ने जीवन में सफलता पाने के लिये बड़ी तकलीफ उठायी थी। घर में बासन माँजती, रसोई बनाती और भाई-बहिनों को पढ़ाती और अपनी पढ़ाई का खर्चा ट्यूशन और छात्र-वृत्ति से चलाती थी।

जब अट्ठाइस बरस की उम्र में नौकरी मिली, तब उसको कुछ राहत मिली थी। पर वह अच्छी तरह जानती थी—

जीवन अविरत संग्राम
यहाँ कहा विराम !

राजू ने प्रभा के पिता से कहा कि वह जब कलकत्ते जायगा, तब प्रभा से बात करेगा और समझ कर आयेगा कि वह विवाह-बंधन में पड़ेगी कि नहीं।

लड़के-लड़कियाँ बड़े हो जाने पर, तीस की अवस्था पार हो जाने के बाद शादी करना नहीं चाहते, या यों कहना चाहिये कि उन्हें विवाह के भय का रोग हो जाता है और चालीस बरस के बाद तो कोई ऐसा दायित्व या जिम्मेदारी लेना कदापि नहीं चाहते।

राजू ने अपने जीवन में अविवाहित पुरुष और स्त्रियों के बहुत दुर्गुण और गोपन प्रेमलीलायें देखी थीं और सुना था उसका चौगुना।

पूर्वबंग कामरूप कामाख्या के पास में अवस्थित था। इस वास्ते उत्तर और मध्य भारत के लोग उसे जादू का देश कहते थे। राय बरेली और उन्नाव जिले में बहुत दिन पहले एक कहावत थी कि बंगाल में जाने से वहाँ की औरतें उसे भेड़ बनाकर रख लेती हैं और फिर आदमी कभी अपने देश नहीं लौट सकता।

बात यह थी कि वहाँ का जलवायु था नातिशीतोष्ण, न ठण्डा, न गरम, न लू-लपट, न पाला, सो वहाँ जो लोग जाते थे वे वहीं रम जाते थे और नहीं लौटते थे। आने-जाने के साधन भी कष्टकर और खतरे से खाली नहीं थे। न रेल, न बस, न हवाई जहाज। बैलगाड़ी, घोड़ा और पदरथ अर्थात् अपने पैर रूपी रथ से चलना ही यात्रा के साधन थे।

पन्द्रह दिन बिताने के बाद सुन्दरबन कमिश्नर की शिकार पार्टी का अभियान समाप्त हुआ था और सब स्टीमर में चढ़कर खुलना पहुँच कर वहाँ से अपने-अपने घर लौटे थे। विदा होते समय राय बहादुर ने राजू को अपने यहाँ आने का निमंत्रण दिया था।

राय बहादुर और राय साहब पटसन के कारबारी और कण्ट्रैक्टर थे। एक का मुकाम था नारायणगंज और दूसरे का झालोकाठी बन्दर में। पूर्वबंग में बाजारों को बन्दर कहते हैं, क्योंकि ये सब बड़े-बड़े दरियाओं के किनारे बसे हुए थे।

दो महीने में एक दफे राजू जरूर कलकत्ते जाता था। लैंडहोलडर्स एसोसियेशन की मीटिंग, साहित्यिक सभाओं के जलसे, अपनी रियासत के हाई कोर्ट में मुकदमों और बहुत से कामों से उसका कलकत्ते जाना जरूरी हो जाता था।

कलकत्ते में उसके बहुत से दोस्त थे, उसमें प्रधान थे मुर्शिदाबाद के प्रिंस अकबर, काकमारी के राजकुमार, मोतीलाल दास, डॉक्टर प्रभा और छुटकी दीदी वासन्ती राय। साहित्यिक देवकुमार राय चौधरी को राजू बड़े भाई जैसा मानता था।

राजू जब एक बार कलकत्ते आया था, तब साथ में पद्मारानी, दोनों बच्चे, रसोइया, एक नौकर और प्राइवेट सेक्रेटरी केष्टो बाबू थे। वे सब महत् आश्रम में ठहरे थे। पद्मारानी वहाँ ठहरना अच्छा समझती थीं, पर राजू जब ढाके से अकेला आता तो 'ग्राण्ड' या 'ग्रेट ईस्टर्न' होटल में ठहरता।

●

एक दिन 'चेंगुया' होटल में प्रिन्स अकबर ने चाय पीने के लिये राजू को बुला भेजा। 'चेंगुया' होटल मछली और गोश्त के लिये तो प्रसिद्ध था ही, उसकी चाय भी सबसे अच्छी होती थी।

एक चीनी आदमी एक तरह की बड़ी कीमती चाय अपने चीन देश से लाता था, उसका नाम 'जेसमीन टी'। यह देखने में सफेद सूखे चमेली के फूलों जैसी होती थी और पीने में उसका स्वाद और खुशबू और फिर थोड़ा-सा गुलाबी नशे का प्रभाव, सब मिलाकर वह बड़ा मधुर पेय बनता था और एक बार पीने से फिर उसको भुलाया नहीं जा सकता था।

राजू के एक दोस्त का कहना था कि मौलाना अबुल कलाम आजाद ऐसी ही चाय पीते थे और वे इस तरह की कीमती चाय तिब्बत से पार्सल में मँगवाते थे। जब वह चाय का पार्सल आता तब वे प्रधान मंत्री नेहरूजी को अपने घर चाय पीने को आमंत्रित करते थे।

ठीक समय राजू 'चेंगुया' होटल में पहुँचा और देखा कि वहाँ प्रिंस अकबर उनकी एक अमेरिकन गर्ल फ्रेण्ड एलिस, काकमारी के राजकुमार और उनकी पत्नी शीला रानी, कलकत्ता कारपोरेशन के कौंसिलर दत्त साहब, गोयनका परिवार के महेश गोयनका और उनकी पत्नी और डॉक्टर प्रभा उपस्थित थे। और दो आदमी अभी नहीं आये थे—मूकैलास राजवंश के तरुण बैरिस्टर समर घोषाल और उनकी पत्नी वन्दना।

डॉक्टर प्रभा ने राजू से पूछा कि पद्मारानी को क्यों नहीं लाये, तो उसने कहा कि वह बच्चों को लेकर, बालीगंज में जो नया मन्दिर बना है उसको देखने गयी हैं और वहाँ उन्हें एक सहेली से भी मिलना है। कुछ देर में मिस्टर और मिसेज़ घोषाल भी आ गये।

चाय का दौर समाप्त हो गया तो प्रिन्स ने कहा :

'हेल्लो राजू, तुमने तो अब हमलोगों से मिलना-जुलना भी कम कर दिया है। तुम्हारे दो बच्चे हैं, पर उम्र में तुम हमलोगों से छोटे हो, अभी इतना सीरियस होना ठीक नहीं है। अभी तो eat, drink and be merry,

खाओ, पियो और मौज करो का समय है। सुना है, तुम बरीसाल और फरीदपुर जिले से कौन्सिल के निर्वाचन में खड़े हो रहे हो मगर तुम तो इण्डिपेण्डेण्ट खड़े हो रहे हो, बिना पार्टी कैण्डिडेट हुए कुछ फ़ायदा नहीं होता। पर यह बात जाने दो, हमने तुमलोगों को बुलाया है कि हमलोग एक स्टीमर पार्टी देना चाहते हैं सर प्रभास चन्द्र मित्र और सर बी० पी० सिंह राय को। उसमें एक सौ आदमियों को निमंत्रित किया जायगा। यह स्टीमर चाँदपाल घाट से रवाना होकर डायमण्ड हार्बर जायगा। कलकत्ते के कुछ प्रौढ़ और कुछ युवक अभिजात वर्ग और उनकी पत्नियाँ निमंत्रित की जा रही हैं। तुम्हारी क्या राय है ? यह पार्टी सात दिन जारी रहेगी।'

राजू ने उत्तर में कहा कि उसे जल्द लौटना है अपने रियासत के काम के लिये। कौन्सिल के लिये उसका 'मेनिफेस्टो' निकल गया है, क्योंकि सर बी० पी० सिंह राय चाहते हैं कि वह खड़ा हो जाय, पर अभी उसने कोई निर्णय नहीं किया है।

यह बात सुनकर उपस्थित बंधुओं ने कहा कि अगर राजू न रहेगा तो स्टीमर पार्टी सफल नहीं हो सकती। राजू की उम्र कम है, पर सांसारिक अभिज्ञता उसको सबसे ज्यादा है। पिता, माता, बहिन, एक-एक कर सब चल बसे और रह गये दूर के नाते रिश्तेदार जो उसको सताते थे और रियासत को तहस-नहस कर रहे थे। पर राजू ने सब सँभाल लिया है और फिर पारेर-हाट को सब तरह से सुन्दर बनाया है। स्कूल, हासपिटल, डाक और तारघर और नया महल और रास्ते, सब नये सिरे से उसने बनवाया।

तब प्रिन्स और सब सदस्यों ने राजू से बार-बार अनुरोध किया कि वह दस दिन और रह जाय और डॉक्टर प्रभा और शीलारानी से कहा कि वे जाकर पद्मारानी से मिलें और उन्हें स्टीमर पार्टी में शामिल होने के लिये आमंत्रित करें। राजू को बहुत कहने-सुनने के बाद निमंत्रण स्वीकार करना पड़ा था।

राजू चिन्ताग्रस्त दीख पड़ता था। ऐसा मालूम पड़ता था कि वह कई बड़े-बड़े विषयों को लेकर चिन्तित है और समाधान निकालने में व्यस्त है, और इसी कारण उसके अन्दर अभिजात वर्ग-सुलभ विलास-व्यसन करने की प्रवृति का ह्रास हो रहा था।

ढाका और फरासडांगा की कीमती धोतियों और मलमल के कुरते, जिनमें बाहों में सच्ची जरी का काम रहता, राजू ने पहनना छोड़ दिया था। गोश्त और मछली हफ्ते में दो दिन लेता था। नाच, गान, बालडान्स आदि में शामिल होना बहुत कम कर दिया था, और वह धीरे-धीरे इन सब से मुक्त होना चाहता था।

स्टीमर पार्टी

गंगा के वक्ष पर लहरों को रौंदता हुआ स्टीमर पार्टी का जहाज चला जा रहा था सौ अतिथियों को लेकर—चांदपाल घाट से डायमंड हार्बर।

तीन 'सर', बारह राजा और राजकुमार, दो दर्जन राय बहादुर, उनतीस राय साहब और बाकी मिस्टर, सेठ, बाबू, चौधरी, राय चौधरी और श्रीयुक्त लोग पार्टी के सदस्य थे। तीन मंत्री भी थे। तब उपमंत्री का दर्जा नहीं बना था। ग्यारह रानियाँ थीं। राजू की रानी नहीं आयी थीं।

वे तीन साल पार्टी में सामिल हुई थीं, पर इस साल से उन्होंने क्रीड़ा-विलास का परित्याग कर दिया था। ब्रिज खेलने में पद्मारानी बेजोड़ मानी जाती थीं और विदेश से प्रत्यागत मेमों को पराजित कर खूब ख्याति पायी थी पर वे अब स्टीमर पार्टियों के मोह से मुक्त हो गयी थीं।

डॉ० प्रभा के साथ पाँच लड़कियाँ आयी थीं यूनिवर्सिटी की। वे नाच और गाने में दक्ष थीं। बैरिस्टर मितर की लड़की लिली गजब की नाचने वाली थी। फॉक्स ट्रॉट डांस से लेकर कथाकली, मणिपुरी स्टाइल तक उसके नखाग्र में था।

सुबह सात बजे जहाज चल दिया था। ब्रेकफास्ट जहाज में ही सबने किया था।

दूसरा आइटम था गाना। किटी, ममी, डली, रीना और रीता इन पाँच लड़कियों ने मीरा और तुलसी के भजन, विद्यापति और जयदेव की पदावली और रवीन्द्र-संगीत बड़े सुन्दर ढंग से गाये थे।

फिर कुछ देर वाद्य-वादन हुआ था वीणा, सितार और बेला का। दिन का एक बज रहा था तब यह कार्यक्रम समाप्त हुआ। सब कोई सीधे खाने के कमरे में दाखिल हुये।

इन लोगों में पाँच मारवाड़ी भाई भी थे। वे निरामिषभोजी थे और फूल गोभी, बीट और टमाटर और मसूर की दाल तक नहीं खाते थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी प्रोफेसर ललिता प्रसाद शुक्ल गोभी, टमाटर, मसूर दाल खाते थे, पर मांसाहारी नहीं थे। चार प्रौढ़ा विधवा महिलायें निरामिषभोजी थीं। हिन्दू विधवायें आमिषभोजी होना बड़ा पाप समझती थीं, अतः इन सब लोगों का खाना ब्राह्मण रसोइया ने बनाया था। और सब का मुसलमान खानसामों ने।

दो प्रौढ़ विधवा महिलायें थीं स्वर्गीय सर मदन मोहन पोद्दार और स्वर्गीय

राय बहादुर आनन्दीराम गोयनका की स्त्रियाँ और दो बंगाली थीं राजा बहादुर स्वर्गीय महेन्द्र मलिक और स्वर्गीय बाबू सात कौड़ी दा की पत्नियाँ।

ये लोग सबसे ज्यादा चन्दा देती थीं, तीन-तीन हजार। कलकत्ते के पुराने बड़े धनी व्यक्तियों की पत्नियाँ बीस बरस से इस स्टीमर पार्टी में शामिल होती आ रही थीं और इनके बिना यह आमोद-प्रमोद का सम्मेलन फीका मालूम पड़ता था।

सबने खूब छक-छक कर खाया और फिर अपने कमरे में चले गये।

दुपहर को विश्राम का समय था, कोई-कोई सो गया था। कोई-कोई गप-शप कर रहे थे।

राजू अपने कमरे में रवीन्द्र नाथ की 'संचयिता' पढ़ रहा था। बिस्तर पर लेटे-लेटे वह पढ़ रहा था रवीन्द्र-रचित सत्येन्द्र दत्त की अकाल मृत्यु पर रचित कविता 'सत्येन्द्र स्मरणे'। कवि सत्येन्द्र की मृत्यु के समय शायद चालीस वर्ष के थे। रवीन्द्र नाथ ने शोकातुर होकर अपने असीम दुःख को एक अपूर्व कविता के रूप में प्रकाशित किया था। ऐसी कविता रवीन्द्र नाथ और नहीं लिख सके। कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं—

> वर्षार नवीन मेघ एलो धरणीर पूर्वद्वारे,
> बाजाइल वज्रभेरी। हे कवि, दिबे ना साड़ा तारे
> तोमार नवीन छन्दे ? आजिकार काजरी गाथाय
> झुलनेर दोला लागे डाले डाले पाताय पाताय;
> वर्षे वर्षे ए दोलाय दित ताल तोमार ये-वाणी
> विद्युत्-नाचन गाने, से आजि ललाटे कर हानि
> विधवार वेशे केन निःशब्दे लुटाय धूलि-परे।
> आश्विने उत्सव-साजे शरत् सुन्दर शुभ्र करे
> शेफालिर साजि निये देखा दिबे तोमार अंगने,
> प्रति वर्षे दितो से-ये शुक्लराते ज्योत्स्नार चन्दने
> माले तब वरणेर टीका; कवि, आज होते से कि
> बारे बारे आसि तव शून्यकक्षे, तोमारे ना देखि
> उद्देशे झराये यावे शिशिर-सिंचित पुष्पगुलि
> नीरव संगीत तव द्वारे।

× × ×

कोकिलेर कुहुरवे, शिखीर केकाय
दियेछ संगीत तव; काननेर पल्लवे कुसुमे
रेखे गेछो आनन्देर हिल्लोल तोमार।.........

× × ×

.........................सखा आज होते, हाय,
जानि मने, क्षणे-क्षणे चमकि उठिवे मोर हिया
तुमि आसो नाइ बोले, अकस्मात् रहिया रहिया
करुण स्मृतिर छाया म्लान करि दिवे समातले
आलाप आलोक हास्य प्रच्छन्न गभीर अश्रुजले।

कवि सत्येन्द्र की अकाल मृत्यु हुई थी आसाढ़ महीने में।

"पृथ्वी के पूर्वी द्वार पर वर्षा के नये मेघ आये हैं और वज्रनिनाद करके भेरी बजा रहे हैं। हे कवि, तुम क्या नये छन्द गाकर उनको प्रत्युत्तर न दोगे? आज कजरारे मेघों के इस गान में डाल-डाल पर और पत्ते-पत्ते पर झूले के झोंके लग रहे हैं। तुम्हारी जिस वाणी ने अपने विद्युत् नृत्य और गान से इन झकोरों के साथ प्रति वर्ष ताल दी थी वही वाणी आज विधवा के वेश में हाथ से माथा पीट-पीट कर धूल में क्यों लोट रही है?

"आश्विन में उत्सव का रूप धर कर शुभ्र किरणों वाली सुन्दर शरत् ऋतु शेफाली फूलों की डाली लेकर तुम्हारे आँगन में आकर उपस्थित होगी; वह प्रति वर्ष पूर्णिमा की रात्रि में ज्योत्स्ना के चन्दन से तुम्हारे भाल पर वरण का टीका करती थी; हे कवि, आज से वह क्या बार-बार आकर तुम्हारे शून्य कक्ष में तुम्हें न देख पाकर तुम्हारे उद्देश्य से शिशिर-सिंचित पुष्पों के नीरव संगीत को तुम्हारे द्वार पर झरा कर लौट जाया करेगी?

"तुमने कोकिल की कुहू-कुहू में, मयूरों की केका ध्वनि में अपना संगीत भर दिया है। तुम अपने आनन्द का हिल्लोल कानन के पल्लवों और पुष्पों में छोड़ गये हो।

"हे सखा, मैं जानता हूँ कि हाय, आज से क्षण-क्षण में मेरा हृदय चौंक उठा करेगा कि तुम नहीं आये हो; सभास्थलों में अकस्मात् रह-रह कर तुम्हारी करुण स्मृति की छाया छिपे हुए गभीर अश्रुजल से समस्त आलाप, आलोक और हास-परिहास को म्लान कर देगी।"

रवीन्द्र नाथ की कविता का यथायथ अनुवाद करना असंभव है और मेरे लिए तो और भी कठिन मालूम पड़ता है। इसी कविता में रवीन्द्र नाथ ने कहा है, "तुम हम से बहुत छोटे थे, पर आज तुम अग्रज हो गये। तुम्हारा नन्दन वन

के फूलों की सुरभि से सुवासित पत्र मिला है। इसका जवाब हम अपने साथ लाएँगे।"

अंत में वे कहते हैं, "हम जानते हैं कि तुम स्वर्गधाम में दुःख-मोह-मुक्त आनन्दमय देवोपम जीवन व्यतीत कर रहे हो, किन्तु मैं तुम्हें मर्त्यलोक के उदार, स्नेह और करुणा से पूर्ण मानव रूप में ही देखना चाहूँगा न कि देवमूर्त्ति के रूप में।"

एक चित्र बहुत प्रभावित करता था राजू को। वह था पूर्वी पाकिस्तान और अविभक्त बंग देश के 'कबीर', लालन फकीर का।

विशाल पद्मा नदी के तट पर अवस्थित शिलाईदह कोठी। कवीन्द्र रवीन्द्र, उनकी सहधर्मिणी मृणालिनी और बच्चे और उनके अग्रज, भारत के प्रथम आई० सी० एस० सत्येन्द्रनाथ ठाकुर की पत्नी ज्ञानदानन्दिनी देवी यहाँ पधारे हैं। कलकत्ते से और कई मित्र लोग आये हैं। ज्ञानदानन्दिनी देवी के प्राण-प्रतिम देवर थे रवीन्द्र नाथ ठाकुर। ज्येष्ठ भ्रातृजाया रवीन्द्र की परमपूजनीया तो थीं ही, पर उनके किशोरावस्था से लेकर पूर्ण युवावस्था तक और शायद ही कोई उनसे इतना अन्तरंग और घनिष्ठ व्यक्ति रहा हो। कवि के जीवन में सफलता प्राप्त करने में ज्ञानदानन्दिनी का बड़ा हाथ रहा है।

कोठी के घाट में कवीन्द्र का बजरा बँधा है। उनके कर्मचारीवर्ग उसको फूल-पत्ती से सजा रहे हैं। बजरा की बैठक के कंडीलों में मोमबत्तियाँ रखी जा रही हैं, शाम को जलाने के लिये।

आज रवीन्द्र नाथ के परमप्रिय बाल कवि लालन फकीर आ रहे हैं। और शाम को उनका गाना होगा। विशेष कर ज्ञानदानन्दिनी का यह पहला मौका होगा जब वह लालन फकीर का गाना सुनेंगी।

लालन फकीर १७७४ साल में जन्मग्रहण किया था और ११६ वर्ष की उम्र में १८९० साल में उनका स्वर्गवास हुआ था। उन्होंने कायस्थ परिवार में जन्मग्रहण किया था। विद्या-अर्जन नहीं कर सके पर उन्होंने अपने मनन और चिन्तन से एक निराला साधन मार्ग बनाया और संगीत के रूप में अपने इष्टदेवता की आराधना की।

हिन्दू स्त्री से विवाह किया पर कोई सन्तान न हुआ और कुछ दिन बाद स्त्री की मृत्यु हो गई। बंगदेश में गंगास्नान करने के लिये एक पर्व होता है जिसको कहते हैं 'अर्धोदय योग', जैसा प्रयाग में माघ मेला होता है। बहरमपुर के पास गंगाजी में अर्धोदय स्नान के उपलक्ष्य में एक बड़ा मेला लगा था। उसी मेले में योगदान करने के लिये लालन फकीर घर से चल पड़े। तब तो देश में रेल नहीं थी, पैदल ही चलना पड़ा था। वहाँ से जब लौट रहे थे तो बुखार हुआ

और उनको चेचक की बीमारी हो गई। संगी-साथियों ने सेवा की पर उनकी बीमारी अच्छी न हुई और प्राणसंशय उपस्थित हुआ। साथियों ने समझा कि उनकी मृत्यु हो गई। उन लोगों ने उनके मुँह में गंगाजल दिया और मृतक समझकर वहीं छोड़कर चले गये। पर विधि के विधान ने एक विचित्र रूप धारण किया। कुछ देर बाद उनकी बेहोशी दूर हो गई और वह उठकर बैठ गये। पुनः जान का संचार हुआ पर निर्बलता से वह वहाँ पड़े रहे। उठना-बैठना, चलना, फिरना उनके लिये संभव न था। पास ही में एक निःसन्तान जुलाहा दम्पति रहते थे। वे उनको अपने घर ले गये और सेवा-शुश्रूषा कर उनको अच्छा किया। उन्होंने बाद में यशोहर जिले के विख्यात फकीर सिराज सांई से दीक्षा ली और उसी जिले में उड़िया ग्राम जाकर अपना अखाड़ा स्थापित किया। वहीं स्थायी रूप से रहने लगे और सहस्र संगीत रचना किया। 'बाउल' के रूप में जीवन संगिनी उन्होंने एक मुसलमान रमणी को ग्रहण किया। लालन फकीर का जीवन जैसा घटना-बहुल और वैचित्रपूर्ण था, वैसा ही अमिट प्रभाव उन्होंने संगीत-संस्कृति को समृद्ध करने में नियोजित किया था। दार्शनिकता और अध्यात्मिकता से ओत-प्रोत उनकी संगीतावली का संग्रह कवीन्द्र रवीन्द्र और क्षितिमोहन सेन आदि ने किया था, और ऐसा भी बहु साहित्यिकों का मत है कि उनकी प्रतिभा का सार्थक उतराधिकार रवीन्द्र नाथ में मिलता है।

चिर आधुनिक

'लालन फकीर ने शाम को ठाकुर बाबू के बजरे में 'एकतारा' बजाकर अपना गाना सुनाया और रवीन्द्र नाथ और सब लोग मंत्रमुग्धवत् सुनते रहे। कवीन्द्र ने इस विषय में लिखा है, "शिलाईदह में अवस्थान करने के समय बाउल और साधक कवि का गाना सुना। बाउल संगीत में एक अकृत्रिम विशिष्टता है, जो चिरकाल तक आधुनिक बनी रहेगी।........हमने अपने रचित अनेक संगीतों में बाउल संगीत का सुर और भाव का अनुसरण किया है।"

ठाकुर बाबू लोगों ने अपनी शिलाईदह जमींदारी से लालन फकीर को अखाड़ा बनाने के लिये और खेती कर उसी की आय से उसका व्यय-निर्वाह करने के लिये कई एकड़ जमीन दी थी।

ब्राह्म धर्म प्रवर्तक राजा राममोहन राय भी लालन फकीर के समसामयिक थे और एक ही साल जन्म ग्रहण किया था।

बंग देश के बाउल सम्प्रदाय के राज्य के एकछत्र राजा थे लालन फकीर। कितने सहस्र संगीत और कितने सहस्र शिष्यों का एक अपना संघ की उन्होंने रचना की थी।

ऋग्वेद में वर्णित व्रात्य लोग इनके पूर्वपुरुष या आदिपुरुष थे। वैदिक युग में प्रचलित आचार-पद्धति का व्यतिक्रम और विरोध इन्हीं लोगों ने किया था और 'मरमियावाद' की प्रतिष्ठा की थी। नाथ-पंथ वाले इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत थे। 'गोरक्षविजय' और 'मीनचेतन' ग्रन्थों में वर्णित 'कायासाध' को भित्तिमूल बनाकर बाउलों ने अपना साधनमार्ग बनाया था। नाथयोगी लोग त्यागमार्गी थे, और सूफी लोग प्रेममार्गी। पर बाउलों पर दोनों मत का प्रभाव पड़ा। बाउलों नें वस्तु उपलब्ध कर भाव को ग्रहण किया और भाव से महाशून्यता को अपना कर ज्तोतिर्मय आत्मा को पहचाना। उपनिषद् में लिखा है 'आत्मानम् विद्धि', आत्मा या परमपुरुष को पहचानो तभी मुक्ति होगी। बाउल लोग इसी परमपुरुष को 'मनेर मानुष' कहा है। लालन फकीर उसी 'मनेर मानुष' को आराध्य देवता मानकर अपनी अपूर्व संगीतावली की रचना की है।

कबीर और लालन के रचित संगीतों में एक ही भावधारा प्रवहमान है, और इसका निचोड़ यही है कि अपने को परमपुरुष को उत्सर्गित कर के ही शान्ति मिल सकती है।

लालन के गाने की कुछ कलियाँ :—

मन मांझि तोर बैठा ने रे
आमि आर बाइते पारलाम ना······

हे मनरूपी नाव के मांझी, तुम हमारे हाथ से अपना दांड़ (पतवार) ले लो, हम अब नहीं खे सकते।

आमार मनेर मानुष जे रे,
आमि कोथाय पाबो तारे ?

हमारे मन का जो मानुष है (मन का मीत) उसको हम कहाँ पायेंगे ?

आमि कि सन्धाने, जाई सेखाने,
मनेर मानुष जेखाने
अंधकारे जलछे बाती,
दिवारात्रि नाइ सेखाने।

मैं अपने मन के मीत को पाने के लिए, निरन्तर पाने के लिए चल रहा हूँ और जहाँ अँधेरे में ज्योति दिखाई पड़ती है और जहाँ दिवारात्रि नहीं होते, वहीं मेरे मीत के पास जाना है।

अप्राप्य को पाने की यह साधना इन लोगों का व्रत या ध्येय था और निरन्तर अग्रसर होने में यह लोग तल्लीन रहते थे।

आउल, बाउल, निरंजनी, वैष्णव आदि नाम से ये लोग प्रख्यात हैं।

इस चित्र का उद्भव राजू के मन: चक्षु के सामने उस समय हुआ जब उसने एक व्यक्ति से एकतारा पर लालन फ़कीर रचित एक गान सुना।

दिन के ढाई बजे थे। स्टीमर बीस मील घंटे की गति से चल रहा था। दुपहर में नदी या समुद्र में भी गरमी मालूम पड़ती थी एक अजीब तरह की, बिजली के पंखे से दूर जाते ही पसीना देह को भिगो देता था।

तभी डॉ० प्रभा और मोतीलाल दास राजू के कमरे में आ बैठे।

प्रभा राजू से बहुत समादर के साथ बरताव करती थीं। जब राजू को देखतीं, तभी उसके आराम के लिये व्यस्त हो जाती थीं। वे यह भी जानती थीं कि राजू एक रियासत का मालिक है, विवाहित है, दो लड़कों का पिता है, चरित्रवान् है और तब भी वे उसकी तरफ आकृष्ट होती जाती थीं।

राजू ने उससे कई दफे कहा था कि अब उनकी काफी उम्र हो गयी है अब उनको विवाह कर लेना चाहिये, बहुत अच्छे लड़के मिलेंगे। इतनी लिखी-पढ़ी और गवर्नमेण्ट की बड़ी नौकरी करने वाली लड़की, विलायत से ट्रेनिंग भी ले आयी है।

उन्होंने कहा था शादी वे आज भी कर सकती हैं, पर उनके पसन्द का मनोवांछित चरित्रवान् और परोपकारी पुरुष कहाँ मिलेगा।

उन्होंने और भी कहा था कि अगर आज विवाह कर लें, तो पिता, माता, चार भाई और दो छोटी बहिनों का क्या होगा ? पिता की सबसे बड़ी सन्तान वे थीं। पिता को बहुत थोड़ी पेन्शन मिलती थी, और प्रति मास प्रभा अपनी कमाई की आय से घर का व्यय निर्वाह करती थीं।

साथ ही यह भी प्रभा ने कहा कि पिताजी एक विपत्नीक सिविल सार्जन से उनकी शादी करना चाहते हैं पर उसमें वे राजी नहीं हैं।

प्रभा सब सभा, सोसाइटी, मीटिंगों में जाती थीं, पर कभी किसी ने उनको बुरा नहीं कहा। बहुत से अभिजातवर्ग और साहू-सेठ उनको फाँसना चाहते थे, पर विफल रहे।

मोतीलाल दास गृहस्थ था, विवाहित था, पाँच बच्चों का पिता था, नौकरी में अच्छा सम्मान था, पर परस्त्री की संगत और उससे लगाव उसको पागल बना देता था।

प्रभा राजू से कह रही थीं कि आज लड़कियों का नाच न होगा। क्योंकि लिली के साथ उसकी एक विधवा मौसी बिनी मासी या विनीता मौसी आयी हैं उसकी देखभाल करने के लिये। बिनी मासी को देखकर मोती बाबू पागल हो गये हैं और वह जब-जब केबिन से निकलती हैं तब मोती बाबू उसके पीछे-पीछे चल देते हैं और उसके लिये स्टीमर के 'स्टोर कीपर' से चालीस रुपये के ताजे और सूखे फल, मेवा, फूल खरीद कर एक 'डाली' उनके पास भेजी है, पर बिनी मासी ने उसे लौटा दिया।

मोती बाबू ने कहा कि एक बार वह बीमार पड़ गये थे, तब विनीता ने बड़ी सेवा की थी और उनके पति रोहिणी बाबू उनके सतीर्थ थे, इस वास्ते यह 'उपहार' उन्होंने भेजा था।

उन्होंने और भी कहा कि वह विधवा है और स्टीमर में उसके खाने लायक वस्तुओं का अभाव है, इस वास्ते उन्होंने एक डाली फल-फूल भेजा था। 'डाली' बंग भाषा में डलिया को कहते हैं। साजि भी डाली का और एक बँगला नाम है।

राजू ने मोती का हाथ पकड़ा और उसको घसीट कर वह लिली के केबिन के पास ले गया, प्रभा और कई महिलाओं के सामने मोती को विनीता देवी से माफी माँगनी पड़ी थी। मोती बाबू को विनीता को बड़ी दीदी कह कर सम्बोधन करना पड़ा था।

इसके बाद स्टीमर पार्टी का कार्यक्रम गाना, नाचना, कविता सुनाना, खिलवाड़, शूटिंग, ताश, शतरंज, रेडियो का गाना, सब यथा-रीति सम्पन्न होने लगा था।

सोडा-ह्विस्की पीनेवालों को दी जाती थी, पर राजू और उसके दोस्त ज्ञानेन्द्र की सयंमित जीवन-यात्रा प्रणाली ने सबको सतर्क और त्यागी बना दिया था। उनका उद्देश्य था चारुकलाओं (fine arts) की चर्चा करो, देश की सेवा करो, सीखो पर शराबखोरी और परस्त्री पर आसक्ति त्याग दो।

साहित्यचर्चा भी होती थी। सब सोचते थे कि रवीन्द्र नाथ के बाद सत्येन्द्र नाथ दत्त और फिर काजी नजरुल इस्लाम यही दोनों कवि बंग-भाषा के काव्य-रूपी तरणी के कर्णधार रहेंगे। ऐसे तो कविशेखर कालिदास राय और कुमुद-रंजन मल्लिक भी अच्छे कवि थे।

'परशुराम' बेजोड़ हास्य रसात्मक कहानीकार भारत-विश्रुत हो गये थे, और उपन्यासकार और कहानीकार के रूप में तारा शंकर वन्द्योपाध्याय और 'बनफूल', पर सत्येन्द्र दत्त, रवीन्द नाथ के जीवन काल ही में चल बसे थे और

नजरुल का स्वास्थ गिरता जा रहा था, तब वे अपाहिज नहीं हुये थे। फिर बंग साहित्य साम्राज्य का कौन नेतृत्व करेगा, यह प्रश्न अधूरा रह गया था।

चारुकला और देश के आर्थिक विकास के बारे में एक सान्ध्यगोष्ठी में सर प्रभास और सर विजय सिंह राय के दो भाषण अंगरेजी में भी हुये थे।

एक दिन राजू ने सबको अपनी तीरन्दाजी और ताश का खेल दिखाया था, सब को अच्छा लगा था। जहाज के निकट उड़ती चिड़ियों को तीर मार कर गिरा दिया था राजू ने।

पाँच दिन बीत गये थे स्टीमर पार्टी के तब एक घटना घटी।

छठे दिन रात को चार बजे स्टीमर की 'स्पाइरल स्टीमर केस' के नीचे राय बहादुर मदन लाल और लेडी डॉक्टर नलिनी आलिंगनबद्ध अवस्था में सोते हुये पकड़े गये थे। उन्हें राजू, ज्ञानेन्द्र, भूपेन्द्र, मुक्तागाछा के कुमार रथीन्द्र और प्रभा के साथ बिनी मासी ने पकड़ा था। लेडी डॉक्टर नलिनी के गले में हीरा की कण्ठी मिली थी, जिसके लाकेट में राय बहादुर की तस्वीर थी।

विनीता मासी के कमरे में सब ने दाखिल होकर राय बहादुर और नलिनी का तिरस्कार किया था और स्टीमर पार्टी का चन्दा दो हजार रुपया राय बहादुर से लिया गया था दंड के रूप में।

नलिनी और राय बहादुर दोनों पचास बरस के करीब के थे, पर भयंकर कामातुर थे और दोनों ने कहा था, We have been begging each other for long, now we have done this with mutual consent. हम लोगों ने राजी होकर यह काम किया है, बरसों की चाह के बाद।

कवि गोष्ठी

एक दिन कलकत्ते से सर ए० चौधरी के साथ बरीसाल के हेम-कवि आये थे स्पेशल लॉञ्च स्टीमर से और उन्होंने महाराज परीक्षित का उपाख्यान और अपना रचित भक्तिसंगीत सुनाकर सबको मंत्रमुग्ध कर दिया था। तब यह भी देखा गया था कि राय बहादुर मदन लाल और नलिनी रोते-रोते बेहोश हो गये थे। यह सबको विचित्र लगा था।

पद्मारानी हेम-कवि का प्रवचन सुनने के लिये मोटर से डायमण्ड हार्बर आयी थीं कलकत्ते से।

वे बरीसाल के चारण कवि मुकुन्ददास को स्टीमर में स्वदेशी संगीत गाने के लिये अपने साथ ले आयी थीं।

आखिरी दिन मुकुन्ददास का गाना हुआ। उन्होंने निम्नलिखित संगीत गाया तो राजकुमार, राजा, सर, राय बहादुर, सेठ, डॉक्टर और श्रीयुक्त बाबू लोगों के नेत्र अश्रुप्लावित हो गये थे।

के बोले तोमारे काँगालिनी मागो,
के बोले तोमारे काँगालिनी,
तुमि जे भारतरानी।
तोमार महिमा, विभव गरिमा,
की कबो मा नाहि जानि।
नाइ बा परिले हेमहार गले,
मणि-मुकुतार माला,
नाइ बा शोभिलो चरणे तोमार,
सोनार वरणडाला।
जीर्ण कुटीरे, छिन्न बसने,
तबु तुमि राजरानी
ओगो तुमि जे मा राजरानी।
परेर जा किछु असन भूषण
दूर होये जाक आज,
पराबो मोदेर जा आछे ताई दिये,
नाहि ताते कोनो लाज।
आमरा घुचाबो मा तोर दुःख,
मुछाबो नयनवारि,
त्रिंश कोटि प्राण, तोमार लागिया,
बलि दिते मागो पारि॥

'हे माता, कौन मूर्ख कहता है कि तुम कंगालिनी हो, तुम तो भारतरानी हो! तुम्हारी महिमा, वैभव, तुम्हारी गौरव-गरिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। तुम्हारे गले में रत्नजटित स्वर्णहार न हो, तुम्हारे चरण-वन्दन के लिये स्वर्ण-थाली में फूल-युक्त आयोजन न हो, तुम्हारा वस्त्र छिन्न हो और तुम जीर्ण कुटिया में वास करती हो, तब भी तुम हम लोगों की राजरानी माँ हो। पराया विदेशी वस्त्र-भूषण सब आज त्याग देना है, हमारे देश में जो वस्तु मिलती है उसी से माँ को सजाया जायगा, इसमें कोई लाज की बात नहीं है। आज यह प्रण है, हे माँ, हमलोग तुम्हारे सब दुःख को दूर कर देंगे और तुम्हारे नयनों से अश्रु पोंछ देंगे, माँ तुम्हारी सेवा के लिये हम तीस करोड़ भारतवासी प्राणों की बलि देने के लिये सदैव प्रस्तुत हैं।'

ऐसे भक्ति-भाव से यह गीत मुकुन्ददास ने चलते हुये जहाज की महफिल में गाया था कि बैरिस्टरों और साहब लोगों के हाथों से हवाना चुरुट गिर पड़े थे और बहुत सी औरतों की आँखें सजल थीं। चरित्रहीन और लम्पट अभिजात युवक और युवतियाँ भी सोच रहे थे कि देश-सेवा कार्य सबसे महान् है। इससे बढ़कर मानव का कोई कर्तव्य और नहीं है।

फिर शाम को आखिरी आइटम था, सब का एक-एक गाना या कविता सुनाना। बैरिस्टर घोषाल ने अँगरेजी गाना पहले गाया 'My love is like a red, red rose', मेरा प्यार लाल गुलाब की तरह लाल है। और एक अँगरेजी गाने की नकल कर Tra ra la la किया था।

सर प्रभास ने द्विजेन्द्र लाल राय की एक कविता के अँगरेज़ी अनुवाद The Moon Smiles and Smiles; the Moon-lit Night—की आवृत्ति की थी। सर सिंह राय ने Shakespeare से एक उक्ति पढ़ी थी।

राजू ने गाया था एक हिन्दी गाना, 'जागो स्वामी, जागो अन्तर्यामी, जागो हे भगवान्' और रवीन्द्र नाथ का संगीत 'जीवन यखन शुकाये जाय करुणा धाराय एसो।'

सबसे अच्छा गाना था राजू और लिली का। उनको स्पेशल प्राईज भी मिले थे।

सात दिन समाप्त हो गये। आज रात दस बजे स्टीमर कलकत्ते के लिये रवाना हो जायगा और सुबह चाँदपाल घाट से, सब लोग जहाज से अपने-अपने घर लौट जायेंगे, ऐसा प्रबन्ध किया गया था।

●

राजू और पद्मारानी स्टीमर पार्टी से कलकत्ते लौटकर अपने दोनों बच्चों से मिले, जो एक रिश्तेदार शिव बदन मिश्र के चार्ज में रख गये थे। पद्मारानी तो केवल दो दिन बच्चों को छोड़कर अलग रही थीं।

दूसरे दिन बरीसाल के विख्यात कवि-जमींदार देव कुमार राय चौधरी का पत्र लेकर उनका एक नौकर आया। पत्र में राजू को चार बजे सुकिया स्ट्रीट में देव कुमार बाबू के पास जाने को लिख भेजा गया था।

राजू के साहित्यिक गुरु और ज्येष्ठ भ्राता-तुल्य थे देव कुमार बाबू। वह ठीक समय पर वहाँ पहुँचा था।

देव कुमार बाबू ने कहा कि उस दिन बंगभाषा के सबसे ज्यादह जनप्रिय नाट्यकार द्विजेन्द्र लाल राय के घर जाना है क्योंकि उनका लड़का दिलीप कुमार

राय विलायत से लौटा है। पर उसके आने के पहले ही पिता का स्वर्गवास हो गया।

देव कुमार बाबू द्विजेन्द्र लाल के दिली दोस्त थे। दोनों अभिन्नहृदय मित्र थे। दिलीप कुमार बड़े सुन्दर और संगीत प्रिय राजू को लगे थे। उनके लड़कपन का नाम था मंटू।

फिर कुछ दिन बाद राजू को मालूम हुआ कि दिलीप संसाराश्रम छोड़ कर पाण्डिचेरी चले गये।

इन्हीं दिनों देव कुमार बाबू ने राजू को कई साहित्यिकों से परिचित कराया था।

वर्दवान के महाराजाधिराज विजय चन्द महताब से राजू जब मिला तो उन्होंने बँगला भाषा में रचित अपनी एक भ्रमण-कहानी 'आमार यूरोप-भ्रमण' उसको उपहार में दी थी।

देश-दर्शन
नये क्षितिज, नये धरातल

८

राजू को देश-भ्रमण का शौक था और वह उसके लिये सहजसाध्य भी था, पर कर्त्तव्य को वह सब के ऊपर स्थान देता था। कर्त्तव्य उसका था अपने परिवार, जायदाद, और उसके संयुक्त सब जनों के हित के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहना। उसके कुछ दोस्त कुमार्गी थे और उसे अपनी पंगत में शामिल करने के लिये प्रयत्नशील थे, पर उन्हें सफलता नहीं मिली। उसका व्यसन था, जाने-माने साहित्यिकों की रचनायें पढ़ना और देश-भ्रमण करना और सब प्रदेश वालों के साथ भाईचारे का सम्बन्ध रखना।

बरसात में पुरी जाता तो कोणार्क के स्थापत्य का वैभव और भुवनेश्वर के मन्दिर और पुरी के समुद्रतीर उसे मोह लेते। मुग्ध दृष्टि से सब देखता, अकेले बैठ कर।

कलकत्ते में उसको अच्छा लगता शिवपुर का बोटानिकल गार्डेन, ईडेन गार्डेन, पारसनाथ का मन्दिर, रवीन्द्र नाथ का पैतृक भवन, अवनीन्द्र नाथ ठाकुर का मकान, जगदीश बसु का विज्ञान भवन, और हवड़ा का नया चाँदी ऐसा चमकता पुल। कलकत्ते का तेरह मंजिला 'न्यू सेक्रेटरियेट' भी हवड़ा के पुल के आगे कुछ नहीं जँचता।

कई दिन से उसकी ढाका जाने की तैयारी हो रही थी। पद्मारानी बच्चों को लेकर राजमहल में रहेंगी और राजू पन्द्रह दिन में लौट आवेंगे, ढाका और नारायणगंज सफर के बाद।

खोका और रबु दोनों बड़े सुशील और परिश्रमी लड़के थे। उनको पढ़ाने के लिये अविभावक-शिक्षक रखे गये थे श्री भूपेन्द्र नाथ गुप्त को। वह पारेरहाट राज हाई स्कूल के हेडमास्टर थे।

बड़ा लड़का खोका शान्त, गंभीर व उच्च विचारों का था। किसी से मिलना-जुलना पसन्द नहीं था, अपनी पढ़ाई में लगा रहता और छोटा लड़का रबु मिलनसार था और महल के बाहर सबसे जाकर मेलभाव करता था।...... उसी ने पहले-पहल राजमहल से निकल कर जन साधारण के लड़कों के साथ सामान्य स्तर पर मित्रता स्थापित की। हिन्दू-मुसलमान सब लड़के उसको अपना दलपति बनाते थे।

राजू ने एक थियेटर पार्टी बनायी थी जिसका नाम था पारेरहाट राजलक्ष्मी नाट्य संघ। रानी राजलक्ष्मी उसकी माँ का नाम था, उन्हीं की स्मृति में बनाया था यह थियेटर। इसमें अभिनेता शिक्षित युवकवर्ग और कतिपय पेशेदार थे। बी० ए०, एम० ए० पास लड़कों को और पेशेदार एक्टरों को कलकत्ते और ढाका से लाना पड़ता था सेकेण्ड क्लास का भाड़ा और दैनिक भत्ता देकर। कई दफे राजू ने भी अभिनय किया था। 'हरिराज' नाटक में हरिराज का पार्ट अदा कर उसने बहुत प्रशंसा पायी थी। थियेटर के परदे और गृह-सज्जा एक अच्छे कलाकार क्षेत्र नाथ गांगुली से बनवाये थे, जो ढाका के प्रख्यात शिल्पी माने जाते थे। पोशाकें बनकर कलकत्ते से आयी थीं। खोका और रबु छोटी-छोटी भूमिका में अभिनय करते थे। बाद में उन दोनों को अभिनय कुशलता के लिये कई दफे कमिश्नर और कलेक्टर के पदक मिले थे।

पद्मारानी अब पुराने और आधुनिक आदर्शों के सम्मिलित रूप में एक आदर्श गृहिणी बन चुकी थीं। भारतीयता को प्रेरणा देना और नवीन-प्रवीण का समावेश कर उनकी गुणावली से अपने जीवन को सुशोभित और प्रयोजनीय बनाना, जिससे गृह मंगलमय हो, आनन्दमय हो और समाज का कल्याण हो, यही उनके जीवन का आधार था। वे पहले टेनिस, ताश और पार्टियों में दिलचस्पी लेती थीं, फिर तो उन्होंने चरखा अपनाया और अपने हाथ का कता हुआ सूत परमपूज्य बापू को दो दफा दिया था। सभी के जीवन में उम्र बढ़ने के साथ-साथ मत और अभ्यास का भी परिवर्तन होता रहता है, आप से आप नये विचार पुराने विचारों को लुप्त कर अपना स्थान बना लेते हैं।

बड़ा राज कुमार देवेन्द्र पारेरहाट राज हाईस्कूल से प्रवेशिका पास कर चुका था, और छोटा राज कुमार रवीन्द्र सातवें क्लास में पढ़ रहा था।

तभी राजू के बड़े साले साहब पं० त्रिवेणी सहाय शुक्ल ने सलाह दी कि अब लड़कों को इलाहाबाद में रख कर पढ़ाना उचित होगा, क्योंकि अब कम उम्र में शादी नहीं होगी और उत्तर प्रदेश की लड़कियों और लड़कों के जीवन से परिचित होना आवश्यक है।

राजू की पितामही की शादी हुई थी सात बरस की उम्र में और उनके

माता-पिता ने राजमहल में तीन बरस रहकर गौरी रानी को वहाँ के जीवनमात्र प्रणाली अभ्यास कराया था। राजू और पद्मारानी की शादी भी कम उम्र में हुई थी। पर अब तो ऐसा चलेगा नहीं। अब तो समाज की नयी विधि-व्यवस्था मान कर चलना ही समीचीन होगा।

खोका बाबू ने इलाहाबाद में आकर गवर्नमेण्ट कॉलेज में पढ़ना आरम्भ किया और उसके अभिभावक थे जस्टिस उमाशंकर वाजपेयी महोदय।

छोटे लड़के को लेकर पद्मारानी राजमहल में रहती थीं और राजू राज का काम-काज देखता था।

राजू को अब पद्मारानी अपने जीवन में कम पाती थीं। वे चाहती थीं कि वह महल में रहे और उसका अधिकाधिक सान्निध्य वे प्राप्त कर सकें, पर रियासत का काम और जनहित कार्य राजू को वृहत्तर क्षेत्र में खींच ले जाते और महीने में पन्द्रह दिन उसको महल में अनुपस्थित रहना पड़ता था।

रहन-सहन का व्यतिक्रम और परिवर्तित गति राजू के जीवन में उतार-चढ़ाव लाये थे, पर जीवन-प्रवाह की गति को अवरुद्ध नहीं कर सके थे। एक कवि ने कहा है—

जीवन नदिया बहती जाय
शाम सुबह औ दोपहरी ॥

राजू ने ढाका से तार नहीं भेजा था। सो रियासत से जो नाव जहाजघाट भेजी जाती थी वह नहीं भेजी गयी। उसमें गद्दी तकिया और तोषक के ऊपर सफेद चद्दर बिछी रहती थी। ढाका से बरीसाल, बरीसाल से हुलार हाट जहाज से, फिर जल्द पहुँचने के लिये राजू ने नौकर से किराये पर नाव लेने को कहा था और उसी में बैठकर वह बड़ी नदी से पारेरहाट की तरफ आ रहा था।

नौकर ने बिस्तर बिछा दिया था और डाब, पीने को दिया था। बिस्तर पर लेटे हुये राजू सोच रहा था अभिजात वर्ग का भविष्य कौन-कौन से दुःख और अभिशाप उन लोगों के जीवन में लायेगा। सबसे पहले जमींदारी-उन्मूलन प्रथा (Flowd Commission Report for Zemindari Abolition) पूर्वबंग में चालू होगी यह तो निश्चित ही था। फिर तो अपने पैरों पर ही खड़ा होना है।

इस सफर में राजू नारायणगंज गया था। वहाँ जाने के लिए राय बहादुर ने सुन्दरबन के शिकार से लौटने के बाद बड़ा आग्रह किया था। पटसन संग्रह का इतना बड़ा केन्द्र भारत में क्या, दुनिया में कहीं नहीं था। हजारों पटसन के गोदाम, और उनमें नब्बे प्रतिशत अँग्रेज कर्मचारी और मालिक और बाकी दस

प्रतिशत के मालिक थे मारवाड़ी। "यूरोपियन क्लब" नारायणगंज का सबसे बड़ा अँग्रेज-परिचालित क्लब माना जाता था। स्टीमर पटसन से लद-लद कर देश-विदेश को जाते थे और गांव-कसबों में जाती थीं बड़ी-बड़ी किश्तियाँ।

राय बहादुर ने राजू का बड़ा सत्कार किया था खूब खिलाया-पिलाया। एक पार्टी दी, जिसमें बड़े-बड़े साहब और हाकिम-हुक्काम आये थे।

लखपति राय बहादुर की रखेल थी सरोजिनी। बहुत अच्छा गाती थी। उसको लेकर तीन फ़ौजदारी के मुकदमे चल रहे थे और उससे सम्बन्धित था एक अंग्रेज मिस्टर वेन, जो शराब पीकर इण्डियन ब्यूटी के पास गया था।

राजू को वहाँ अच्छा न लगा। नारायणगंज का वातावरण उसे व्यावसायिक प्रतीत हुआ, जहाँ अर्थ प्राचुर्य से सहज प्राप्य सुरा और नारी के पीछे यहाँ के प्रधानगण पागल थे।

वहाँ से राजू ढाका चला गया और बारी मुहल्ले में ठहरा। पहले वह डाकबँगले में एक दिन ठहर गया था। पर उसके बड़े भाई-सदृश और पूर्वबंग के ख्यातनामा कवि परिमल कुमार घोष आकर उसको अपने पास बारी में अपने निवासस्थान पर ले गये थे।

परिमल बाबू 'प्रवासी' मासिक पत्र में कविता लिखते थे। अंग्रेजी साहित्य में एम० ए० और कॉलेज में अध्यापक थे। उनकी शादी हुई थी बरीसाल जिले में, और वे जब ससुराल आये थे तभी राजू से परिचय हुआ था और वह परिचय बढ़ता ही गया था।

ढाका शहर में दो देवस्थान प्रसिद्ध थे, एक ढाकेश्वरी काली देवी का मन्दिर और दूसरा बूढ़े शिव का मन्दिर। ढाका शहर जिस छोटी सी नदी के किनारे बसा था उसका नाम था बूढ़ी गंगा। ढाका की इमरती, पराठा सरभाजा और केला राजू को बहुत पसन्द आते थे। उसने तो ढाका में रह कर यह सब खाया था और वहाँ के सब दर्शनीय स्थानों से वह परिचित था।

परिमल बाबू उसको तरुणों की एक साहित्यिक गोष्ठी में ले गए थे। शायद उसका नाम था साहित्य-चक्र और तभी उसने विख्यात बँगला लेखक और कवि बुद्धदेव बसु को देखा था। ढाका शहर में बंगदेश के सब शहरों से सस्ता अनाज और मिठाई मिलती थी। शास्त्रीय संगीतप्रचार और आलोचना का भी वह बड़ा केन्द्र था। वहाँ की बनी हुई धोती, साड़ी और शंख की चूड़ियाँ तो भारत-विख्यात थीं। और एक समय ढाके की बनी मसलिन विश्व के सम्राट-सम्राज्ञियाँ धारण कर अपने को गौरवान्वित मानते थे।

बलधा जमींदार का बाग राजू को सबसे अच्छा लगा था। रूप बाबू और
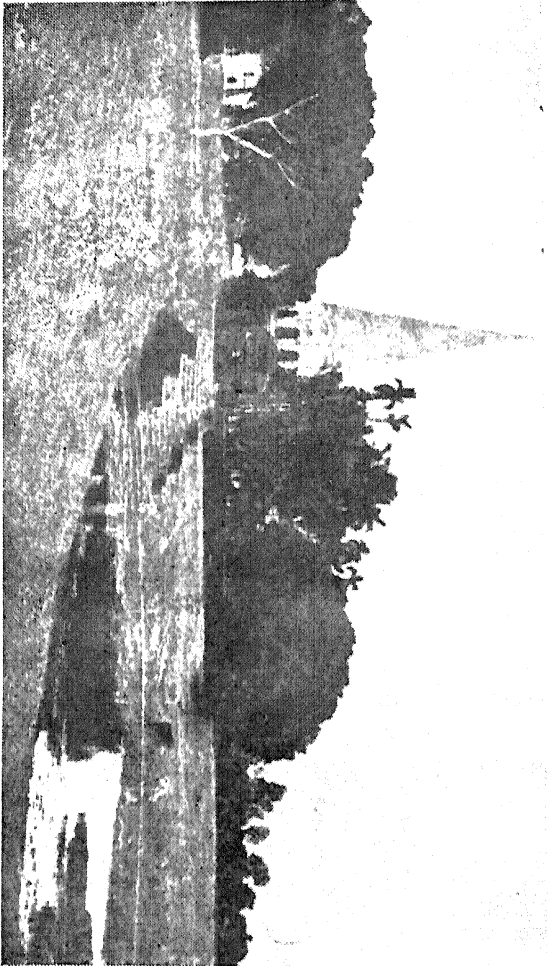
अतीत की स्मृति का प्रतीक ढाका का काली मंदिर

रघुबाबू का मकान, ढाका के नवाब का मकान और पुराना टूटा-फूटा किला, ये सब वह पहले ही देख चुका था।

उसका मन था चटगाँव जाने का। वहाँ उसका एक दोस्त था शचीन्दनाथ धर। स्कूल के साथी चाकमा के युवराज ने भी उसको अपने यहाँ विशेष रूप से आमंत्रित किया था। पर पारेरहाट जल्द लौटना था। विशेष जरूरी काम करना था, इसलिये वह ढाका से लौट पड़ा।

महामना का सान्निध्य

पारेरहाट नाव में जाने के समय उसे खबर मिली कि राय साहब ललित बाला जो दूसरी नाव में आ रहे थे, राजू से मिलना चाहते हैं। राजू ने तुरन्त राय साहब को अपनी नाव में बुलाया। वे आकर बोले कि नाजिरपुर में अखिल बंग नमः शूद्र सम्मेलन हो रहा है उसका उद्बोधन महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय करेंगे। राय साहब ने राजू को वहाँ जाने का सादर निमंत्रण दिया।

बंगदेश के अन्त्यज जातियों में नमः शूद्रों की संख्या पूर्वबंग में सबसे ज्यादा थी। वे लोग अस्पृश्य समझे जाते थे और इन्हीं लोगों का प्रतिनिधित्व करते थे राय साहब ललित बाला, एम० एल० सी०। वे नामांकित सदस्य थे।

महामना का नाम सुनकर राजू को बड़ा हर्ष हुआ। उसने लड़कपन में एक दफा मालवीय जी का भाषण इलाहाबाद में पुरुषोत्तम दास पार्क में सुना था और सुनी थी उनकी भारतव्यापी ख्याति। उन्हें रजतप्रवाहरूपी वाणी का वक्ता कहा जाता था। राजू ने सहर्ष निमंत्रण स्वीकार किया।

राजू को बड़ा हर्ष हो रहा था कि कट्टर सनातनी हिन्दुओं के अविसंवादी परमपूज्य नेता मालवीयजी हिन्दू समाज के निम्नस्तर के अस्पृश्यों की सभा का उद्बोधन करेंगे और उन्हें मंत्र की दीक्षा भी देंगे।

वह सोचने लगा निराला के शब्दों में पथ निर्देश की बात—

खोजता कहाँ, अरे नादान,
तुझी में है हीरे की खान !
धूलि में तुम मुझे भर दो।
धूलि-धूसर जो हुये जो
उन्हीं के वर वरण कर दो
जाति जीवन को निरामय
वह सदाशयता प्रखर दो।

राजू को अभ्यर्थना समिति के प्रधानों में श्रेष्ठ आसन दिया गया था। पर

उसने कहा था इसकी जरूरत नहीं है, सेवक की हैसियत से वह मालवीयजी के दर्शन करने जायगा ।

राय साहब उसके साथ पारेरहाट राजमहल तक आये थे और फिर बार-बार अनुरोध कर चले गये थे । उनके मन में था कि राजू कुलीन ब्राह्मण राजपुत्र है । वह क्यों नीच जातियों के सम्मेलन में जायगा ?

ढाका से सद्य-प्रत्यागत राजू को, कवि बुद्धदेव बसु की रचित कविता याद आ रही थी—

तबु मोर ए क्षणिक यौवन बेलाय
यतो फूल फूटियाछे, यतो पाखी गाहियाछे गान,
यतो वर्षा नामियाछे रजनीर उतला प्रहरे
शुधुतारि लागि, मोर हृदयेर प्रेम ओ प्रणाम
एक दिन रजनीरे भालोबेसे, दिये गेनु दान...

मेरे क्षुद्र क्षणिक यौवन-रुपी कुंज में जितने फूल प्रस्फुटित हुए हैं, जितनी चिड़ियों ने मधुर संगीत गाया है, गंभीर रात्रि के उतावले प्रहरों में जितनी वर्षा हुई है उन सब के लिये ही एक दिन-रात्रि से प्यार करके अपने हृदय का प्रेम और प्रणाम दान करके जा रहा हूँ ।

राजू को फजलुल हक साहब अपने गाँव चाखार में कॉलेज-प्रतिष्ठा करने के समय ले गये थे और पद्मारानी साथ गयी थीं । उस उपलक्ष में बंगदेश के लाट सर स्टेनली जेक्सन और उनकी पत्नी भी आयी थीं ।

●

मानव अपने जीवन को सहस्र चितारूपी चिता में और सांसारिक दैन्य-दुःख में रह कर भी आनन्दमय बना सकता है अगर वह औरों का शोक-दुःख अपना समझे और अपने कर्तव्य में दृढ़ रहे । राजू ने अपने जीवन को ऐसे ही एक सांचे में ढाल लिया था । उसके हर पदक्षेप ऐसे दृढ़ और सबल होते कि उसको पदच्युत करना या निश्चित रास्ते से दूसरे रास्ते पर ले जाना असंभव था ।

राजमहल के लोगों ने राजू को अस्पृश्यों की सभा में जाने को मना किया था, पर वह अटल रहा । दीवान ने बजरा सजा कर और साथ में आदमी देकर उसे नाजिरपुर भेजा था ।

महामना की पवित्र आकृति और मधुर वाणी ने उसे मुग्ध कर दिया था और उसने पूज्य मालवीयजी को अपने यहाँ आने का निमंत्रण दिया था। उन्होंने उसके मस्तक पर हाथ रख कर कहा था—

"तुम्हारे पूर्वज राजा देवी गुलाम ने सुन्दरबन में राज बसाया था । वे युक्त प्रदेश (उत्तर प्रदेश) के गौरव थे । तुम उनके गौरव को यथावत् रखना ।"

राजू उनकी पदरज अपने मस्तक पर रख कर लौट आया।

इधर रियासत के काम से जब छुट्टी मिलती, तब वह पूर्वबंग के शहरों और बड़े-बड़े बन्दरों को देखने निकल पड़ता था। मैमनसिंह जिले में बहुत से जमीन्दार, राजा उसके दोस्त थे। इस दफा उसने इरादा किया था कि अवसर मिलते ही वह मैमनसिंह, सुसंग पहाड़, शेरपुर आदि स्थानों में जायगा और अपने बंधुओं से मिलेगा।

रुचिकर सम्पर्क में

अब राजू का लिखने और पढ़ने का शौक क्रमशः बढ़ रहा था। उसका परिचय 'प्रवासी' और 'माडर्न रिव्यू' के सम्पादक स्वर्गीय रामानन्द चट्टोपाध्याय से हुआ था, और उन्होंने पुत्रवत् स्नेह उसको किया था। उन्होंने उससे कहा था, "लिखना कम, पढ़ना ज्यादा; जो लिखना, ठोस लिखना। कविता और छोटी कहानियाँ लिखने का रास्ता छोड़कर निबंध लिखो। क्या अच्छा हो, अगर तुम हिन्दी साहित्य या हिन्दी सन्त कवियों के विषय में विशद्रूप से लिखना आरम्भ करो।"

राजू ने इसके पूर्व 'मालंच' और 'प्रवर्तक' मासिक पत्रों में कविता और प्रबन्ध लिखे थे, पर 'प्रवासी' जैसे बंगभाषा के श्रेष्ठ मासिक में लिखने का साहस उसे नहीं हुआ था, जिस पत्र के नियमित लेखक थे विश्वकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर, जिसके संपादक थे भारत-विख्यात रामानन्द चट्टोपाध्याय। कहा जाता है कि उपन्यासकार-सम्राट् शरत् चन्द्र चट्टोपाध्याय की रचना भी 'प्रवासी' सम्पादक कभी-कभी लौटा देते थे। उस पत्र में लिखना जैसा कठिन काम था, वैसा ही गौरवपूर्ण था और विशेष कर राजू के लिये। रामानन्द बाबू के आदेश के अनुसार राजू ने प्रबन्ध लिखना आरम्भ किया था, और फिर तो राजू के बहुत से लेख 'प्रवासी' में प्रकाशित हुये थे। देश-विभाजन के पहले वह बराबर 'प्रवासी' में लिखता था।

उसके लेख विशेष कर हिन्दी साहित्य और हिन्दी के सन्त कवियों के बारे में, बहुत ही समादृत हुये थे और तत्कालीन शिक्षित बंगाली वर्ग में सन्त कवियों और हिन्दी साहित्य का बड़ा प्रचार हुआ था।

कितने गौरव की बात थी कि उसी पत्र में रवीन्द्र नाथ लिखते थे और राजू भी लिखता था। रामानन्द बाबू उसको अपार स्नेह करते थे और उसके लेख सहर्ष प्रकाशित करते थे।

रवीन्द्र नाथ, सत्येन्द्र नाथ दत्त और काजी नज़रुल इस्लाम उसके परम प्रिय कवि थे। ऐसे तो माइकेल मधुसूदन, हेमचन्द्र और नवीन सेन की कविता

वह पढ़ता था। नवीन चन्द्र सेन रचित 'पलाशीर युद्ध' उसको कण्ठस्थ था।

रवीन्द्र नाथ, कवि सत्येन्द्र नाथ दत्त को पुत्राधिक स्नेह करते थे। अपने साथ उनको देश-भ्रमण के समय ले जाते थे। सत्येन्द्र को 'छन्द-सरस्वती' कहा जाता था और वे बहु-भाषाविद् थे। अंग्रेज़ी, फारसी और संस्कृत भाषा में उनका अगाध पाण्डित्य था। बंग भाषा में कई छन्दों में कविता रचना कर उन्होंने अपार ख्याति पायी थी। एक दफा रवीन्द्र नाथ अपने साथ सत्येन्द्र नाथ दत्त को दिल्ली ले गये। जब रेलगाड़ी यमुना के पुल को अतिक्रम कर रही थी तब सत्येन्द्र नाथ ने अपनी विख्यात कविता 'दिल्लीनामा' रची थी, उस कविता का कुछ अंश यह है—

अतुल विराट, विपुल दिल्ली,
शत सम्राट् प्रेयसी ओई,
गजमोती गुड़ा तब पद धूला,
मोहिनी, रूपसी महिमामयी।
तुम चिर-रानी, चिर-राजधानी
चिर-यौवना, उर्वशी जे,
इन्द्रेर तुमि मर्त्य-विलास
इन्द्रप्रस्थ तुमि जे निजे।
मयूर आसन चोरे निये गेलो,
कोहिनूर गेलो सागर पारे
किछु ना कहिले, मौनी रहिले,
गरवी एइ तो साजे तोमारे।

"दिल्ली, तुम अतुल्य, विराट और विपुल हो, शत-शत सम्राटों की प्रेयसी तुम्हीं हो। तुम मोहिनी हो, रुपसी हो, महिमामयी हो और तुम्हारी रज गजमोतियों का चूर्ण है।

"दिल्ली, तुम चिर रानी हो और चिरकाल की राजधानी हो। तुम उर्वशी सदृश चिर-यौवना हो। तुम इन्द्र का मर्त्यधाम का विलास-केन्द्र हो और स्वयं इन्द्रप्रस्थ कहलाती हो।

"दिल्ली का मयूर सिंहासन दस्यु हरण कर ले गया और अमूल्य कोहिनूर हीरा समुद्र के उस पार चला गया, पर तुम मौन रही और कुछ न बोली। हे गर्विणी दिल्ली, यही तुम्हारी शान है।"

ऐसी ही कविता रचना करते थे सत्येन्द्र दत्त। रवीन्द्र नाथ के जीवनकाल में कवि की ख्याति सबसे ज्यादह पायी थी सत्येन्द्र नाथ दत्त ने। सर जगदीश

चन्द्र बसु जब जड़ में चेतना को प्रमाणित कर पाश्चात्य देशों से अपार ख्याति लेकर देश लौटे, तब कलकत्ते के अधिवासियों ने, जो अभिनन्दन-पत्र उनको दिया था उसकी रचना की थी सत्येन्द्र नाथ ने और वह था कविता के रूप में।

वह कविता भी अपूर्व थी। उसमें जगदीश चन्द्र को जड़जगत् में प्राण-लीला के महान् दर्शक सत्य-पथ-यात्री कह कर नमस्कार किया गया था।

बंगाली कवियों में विश्व-बन्धु बापू के नाम पर सत्येन्द्र नाथ दत्त की तरह और किसी ने कविता नहीं लिखी। उस कविता का शीर्षक था गान्धी जी। सत्येन्द्र बापू के अनन्य भक्त थे। बंगालियों में शायद ही और कोई सर पी० सी० राय और कवि सत्येन्द्र नाथ की तरह चरखा चलाना और तकली कातना जानता था।

'गाँधीजी' कविता का एक अंश :—

दिने दीप जालि, ओरे ओ खेयाली
की लिखिस हिजिबिजि ?
शहरेर पथे; रोल ओठे, सोन
'गांधीजी', 'गांधीजी'।
वातायने देख, किसेर किरण !
नव ज्योतिष्क जागे,
जन-समुद्रे ढेउ ओठे
कोन चन्द्रेर अनुरागे ?

"हे कवि, दिन में दिया जलाकर तुम क्या लिखने में मग्न हो ? तुमको क्या सुनाई नहीं पड़ता कि शहर के रास्तों में 'गाँधीजी' 'गाँधीजी' का घोष हो रहा है ?

"तुम देखते नहीं कि तुम्हारे वातायन में नवोदित तारे की किरणें प्रवेश कर रही हैं और चन्द्रमा के उदय से जिस तरह समुद्र-वक्ष तरंगों से उद्वेलित हो उठता है उसी तरह इस जनरूपी समुद्र में किस चन्द्रमा के उदय से लहरों का उद्भव हुआ है और जन-समुद्र उद्वेलित हो उठा है।"

पद्मारानी ने चरखा चलाने का अभ्यास किया था और दिन में दो घंटे नियमित रूप से इसी में मग्न रहती थीं। बारीक और कीमती साड़ियाँ पहिनना छोड़कर खद्दर की साड़ी पहिनती थीं और जहाँ तक बन पड़े अपने हाथ काम करना पसन्द करती थीं।। पहले नहलाना, बाल सँवारना और जूड़े में फूल गूँथना और गजरा पहिनाना सब नौकरानियाँ करती थीं। अब यह सब अपने हाथ पद्मारानी करती थीं। जड़ाऊ और साधारण गहने पहनना उन्होंने त्याग दिया था,

केवल शंख की चूड़ियाँ, जो बंगाल में सधवा स्त्री के सुहाग का चिह्न माना जाता था, वे पहनती थीं।

पद्मारानी अपने दोनों लड़कों को राजपुत्रोचित आरामतलब न बनाकर कष्टसहिष्णु और परिश्रमी बनाने की कोशिश करती रहती थीं।

देश में बापू का सन्देश व्याप्त हो रहा था। जमींदार और राजा लोग कुछ दिनों में छू-मंतर हो जायेंगे। सबसे पहिले पूर्वबंग में राजगी का उन्मूलन होगा।

सुहरावर्दी पार्टी प्रत्यक्षरूप से और फज़लुल हक़ पार्टी अप्रत्यक्षरूप से हिन्दुओं के विरुद्ध जहर उगल रही थीं। दोनों को भड़काने में प्रायः सब शिक्षित मुसलमान जोर लगा रहे थे।

देश में स्वाधीनता आवेगी किस रूप में, देश का क्या विभाजन होगा ? हिन्दू मुसलिम दोनों भाइयों में क्या बँटवारा होगा ? देश के कोने-कोने में इन विषयों की आलोचना जारी थी।

अभिजात वर्ग के लोग अब भी आलस्य और विलासी जीवन-प्रवाह में बहे चले जा रहे थे। वही राग, वही रंग, कभी न सोचते थे कि उनके लिए भविष्य के गर्भ में क्या निहित है और परिणाम कितना भयंकर है।

राजू जब कलकत्ते जाता तो 'प्रवासी' संपादक रामानन्द चट्टोपाध्याय के पास जरूर जाता था। वे उसको पुत्रतुल्य स्नेह करते और हिन्दी साहित्य के बारे में लेख भेजने को कहते थे। राजू 'भारतवर्ष' संपादक जलधर सेन से भी कई दफा मिला था। उनको सब कोई जलधर दा कह कर सम्बोधन करते थे।

कालीघाट में कालीमाई की पूजा पद्मारानी ने मानी थीं। वह पूजा धूम-धाम से हुई थी। दो बकरे का बलिदान और सौ ब्राह्मणों को भोजन कराया गया था। राजू बकरे का बलिदान, पारेरहाट राजमहल की देवी-पूजा में, बन्द करा दिया था। उसके बदले पाँच रुपये की सन्देशमिठाई देवीजी को चढ़ायी जाती थी और उपस्थित लोगों में बाँट दी जाती थी।

एक दिन शिबपुर बोटानिकल गार्डेन में पद्मारानी कलकत्ते की अपनी सात सहेलियों को लेकर, बच्चों के सहित गयी थीं 'पिकनिक' के लिए। उस दिन पारेरहाट राज के दीवान बिपिन बिहारी सेन की तीसरी लड़की झरना ने नज-रुल इस्लाम रचित गीत गाकर सबको मुग्ध कर दिया था। काली देवी की भक्तिमूलक यह संगीत बड़ा जनप्रिय था। उसने गाया था :—

कालो मेयेर पायेर तलाय,
देखे जा आलोर नाचन,
यार रूप देखे देय बुक पेते शिव,
यार हाते मरन-बाँचन।

सिन्धुते माँर बिन्दु खानि,
ठिकरे पड़े रूपेर मानिक,
विश्वे माँयेर रूप धरेना,
माँ श्रामार ताइ दिक्-वसन ।

"हे मानव, जा तू काली लड़की के पैरों के नीचे, जो श्रालोक-नृत्य होता है, उसे एक बार देख श्रा, जिसकी श्रपार रूपराशि को देखकर वे शिव जिनके हाथ में मृत्यु श्रौर जीवन दोनों ही हैं, (उसके चरण रखने के लिये) अपना वक्षस्थल प्रसारित कर देते हैं, उसे देख श्रा ।

"श्रपार समुद्र में माँ के श्रपूर्वरूप की झलक का एक विन्दु है श्रौर हमारी माँ की रूपराशि श्रखिल विश्व में नहीं समाती, इस कारण माँ दिग्वसना है ।"

प्रभा ने नजरुल इस्लाम का दूसरा गीत गाया था :—

महाकालेर कोले एसे
गौरी होलो महाकाली,
श्मशान चितार भस्म मेखे
म्लान होलो मार रूपेर डाली ।
तबु मायेर रूप की हाराय ?
से ये छड़िये श्राछे चन्द्र-ताराय
तार श्रारति ह'य ताराय ताराय,
चन्द्र, सूर्य प्रदीप जालि ।

"महाकाल की गोद में बैठने से गौरी महाकाली हो गयी हैं, उनका पति (महाकाल या शिव) श्मशान का चिता-भस्म अपने देह में लगाता है । उसी भस्म के शरीर में लगा लेने से माँ की रूपराशि मलिन हो गयी है ।

"तब भी माँ का रूप खो नहीं गया । उनका रूप तो चन्द्रमा श्रौर तारों में बिखरा पड़ा है श्रौर चन्द्र-सूर्य रूपी प्रदीप जलाकर प्रत्येक नक्षत्र में उनकी श्रारती निरन्तर हो रही है ।"

नवाबी खँडहर

कलकत्ते से लौटने का दिन श्रा गया था । पारेरहाट लौटने की तैयारियाँ हो रही थीं ।

मुर्शिदाबाद के प्रिन्स श्रकबर राजू के जिगरी दोस्त थे । उनकी बहन श्रौर मौसी ने एक दिन श्रकस्मात श्राकर पद्मारानी से कहा कि उनको एक दफ़ा अपने वतन ले जाकर ही वे उन्हें कलकत्ता से पारेरहाट लौटने देंगी । पद्मारानी को सहमत होना पड़ा था । दो बड़ी मोटरों में सब श्रादमी पहले बहरमपुर गये थे ।

वहाँ से खागड़ा, जहाँ के फूल के बने हुये बर्तन भारत भर में प्रसिद्ध हैं और फिर मुर्शिदाबाद।

एक समय मुर्शिदाबाद को 'लण्डन ऑफ दि ईस्ट' कहा जाता था। अब तो नवाब का महल 'हज़ारद्वारी' जिसमें एक हजार दरवाजे हैं, और दो एक इमारत छोड़ कर और कुछ नहीं है।

वहाँ के आम सबको बहुत अच्छे लगे थे, बहुत किस्म के थे। एक तरह के थे सफेद रुई के बक्स में रखे हुये, जैसे आगे चमन के अंगूर प्लाइवूड के छोटे-छोटे बक्सों या डिब्बों में भरकर भारत आते थे।

खूब आव-भगत और अभ्यर्थना इन लोगों ने की थी। पद्मारानी का नाश्ता, चाय और खाना ब्राह्मण रसोइयों ने बनाया था।

प्रिन्स की तीन बेगमें थीं, जिनमें दो चाचा की बेटियाँ थीं। तीसरी शादी हुई थी काबुल के शाही ख़ानदान में। राजू ने प्रिन्स से पूछा था कि क्यों उसने तीसरी शादी की, तो उसने कहा था कि ये दोनों चचेरी बहिनें हैं, घर की मुर्गी दाल बराबर, सो तीसरी शादी करनी पड़ी। असल बात यह थी कि प्रिन्स का गुजारा कोर्ट ऑफ वार्ड्स से बहुत कम मिलता था। तीसरी बीवी अगाध ऐश्वर्य और धन लेकर उसके घर आयी थीं। और उसी के पैसे से प्रिन्स ने तीन बेगमों को लेकर विश्व-भ्रमण किया था और अपने जीवन की बहुत सी आवश्यकतायें पूरी की थीं।

फिर कलकत्ता, और वहाँ से अपने पुरखों के पारेरहाट राजमहल में प्रत्यावर्तन।

●

शैल-सुन्दरी का प्रांगण

एक बार राजू ढाका होकर चटगाँव गया था। वहाँ वह नन्दनकानन मुहल्ले में अपने दोस्त शचीन्द्रनाथ के घर में ठहरा था।

वहाँ से समुद्र और जहाज लगने के डॉक, साफ दीखते थे। अपार जलराशि जिसका अन्त या दूसरा किनारा नहीं दिखाई पड़ता था। चटगाँव को बंगभाषा में कहा गया है 'शैलसुन्दरी,' समुद्र के किनारे पहाड़ पर बसा हुआ, यह शहर एक राजमुकुट ऐसा दूर से दीखता है।

चटगाँव में राजू कुछ दिन रहा, वहीं चाकमा के युवराज उससे मिलने आये थे और उसको राँगामाटी ले गये थे।

पार्वत्य चटगाँव दूसरा जिला है। इसको अंग्रेजी में Chittagong Hill Tracts कहते हैं और जिले के शहर का नाम राँगामाटी है। इस जिले के अधिवासी मुख्यतः बौद्ध धर्मावलम्बी, आदिम जाति के लोग हैं।

इन लोगों का रहन-सहन बहुत-कुछ बर्मा के अधिवासियों की तरह है। राँगामाटी लाल मिट्टी का देश है। 'राँगा' बंगभाषा में लाल रंग को कहते हैं। किसी-किसी स्थान पर यह शब्द सौन्दर्य के अर्थ में व्यवहार किया जाता है। जैसे सुन्दर मौसी या गोरे चिट्टे चाचा को 'राँगा मासी' और 'राँगा खूड़ो,' आदरणीय संबोधन माने जाते हैं।

राँगामाटी में छोटे-छोटे पहाड़ हैं। देखने में सुन्दर स्थान है, पर उपज कम है, लोग दरिद्र हैं।

कई छोटे-छोटे सामन्त थे जिनको 'भंग' कहते थे। उनमें सबसे बड़े थे चाकमा के राजा भुवनमोहन राय। उनका नाम पहले कुछ और था, पर जब राजा का खिताब मिला था तब नाम भी परिवर्तित हुआ था। और बंगालियों के जैसा नाम रखा गया था, ऐसा प्रवाद है। उन्हीं के पुत्र थे युवराज नलिनाक्ष राय, राजू के सहपाठी।

चाकमा राज थी बड़ी छोटी-सी रियासत, पर शान-शौकत बहुत थी। चाकमा जाति का मुखिया राजा था।

नलिनाक्ष की शादी राजा होने के नाते प्रसिद्ध धर्म-प्रचारक स्वर्गीय केशव चन्द्र सेन की एक नातिन से हुई थी। केशव बाबू की दो लड़कियों में से एक कूच बिहार के महाराजा के साथ और दूसरी उड़ीसा में मयूरभंज के महाराजा से ब्याही गयी थीं। यह बहुत दिन आगे की बात है, जब शायद राजू पैदा भी नहीं हुआ होगा।

युवराज पर बड़ा क़र्ज़ हो गया था और राजू ने सलाह दी थी कि कोर्ट ऑफ़ वार्ड्स के हाथ रियासत का प्रबन्ध सौंप दिया जाय।

एक छोटा-सा पैलेस, एक हाथी और चटगाँव में एक वासस्थान और एक मोटर गाड़ी और थोड़े से जवाहिरात थे। राज का मुनाफा बारह हजार और कुछ धान के खेत, यही कुल था जिससे चाकमा राज बना था। चाकमा से राजू बोगरा गया। बोगरा या बगुड़ा अब पूर्वी पाकिस्तान में है। वहाँ मोहम्मद अली की ननिहाल है, और वहीं रहकर उन्होंने वकालत पास कर वकालत करना शुरू किया था, तब सुहरावर्दी मंत्रिमंडल में मंत्री बनाये गये थे और पाकिस्तान बनते ही वहाँ चले गये थे। वहाँ से राजू काकमारी गया था। उस क़सबे का और एक नाम है सन्तोष।

वहाँ एक छोटे पर बड़े मशहूर जमींदार थे—बेंगल काउन्सिल के प्रेसिडेण्ट महाराजा सर मन्मथनाथ राय चौधरी। वे ढाका से जमींदारवर्ग के प्रतिनिधि रूप में चुनकर बेंगल काउन्सिल में आते थे और राजू जमींदार वर्ग (Landholders' constituency) के एक वोटर की हैसियत से उनको वोट देता था। वह पारेरहाट कई दफ़ा आकर राजू को एक छोटे लॉञ्च स्टीमर में लेकर वोट दिलाने ले जाते थे। पर काकमारी के राजकुमार बहुत बड़े जमींदार थे, महाराजा सर मन्मथनाथ से कई गुना बड़े। राजू को उन्होंने अपने पास कई दिन रखा था।

वहाँ काकमारी और सन्तोष के जमींदारों में तरह-तरह के झगड़े थे। उनमें एक था, स्कूल और कॉलेज खोलने में कौन अग्रणी हो। सब आदमी उसी की वाह-वाह या प्रशंसा करते थे, जो अपना सर्वस्व और जेवर बेंचकर भी स्कूल को कालेज में परिणत कर दे।

सबसे ज्यादा नाम पैदा किया था सन्तोष काकमारी की स्वर्गीया जाह्नवी राय चौधरानी ने। राय चौधरानी काकमारी के राजकुमार की पितामही थीं। उनका पराक्रम एक सिंहिनी के समान था। उनके राज में सब लोग उनको बड़ी, तेजस्वी, बुद्धिमती और न्यायपरायण महिला के रूप में सम्मान करते थे।

पुराने चाल की औरत। बाल विधवा। अपना नाम लिख लेती थीं इतनी ही थी उनकी विद्या। किन्तु असीम साहसी इस महिला ने अपनी जमींदारी में बड़े-बड़े अंग्रेज कलेक्टरों और कमिश्नरों को कई दफ़ा उनके अत्याचारों का दमन करने के लिये क़ैद कर लिया था और मारपीट कर फिर उनके मकानों में सही-सलामत पहुँचा दिया था। जाह्नवी राय चौधरानी इस कारण सर्वसाधारण में 'जान-मारा चौधरानी' कह कर अभिहित की जाती थीं।

और एक बार राजू को चटगाँव जाना पड़ा था। तब वह पद्मा और बच्चों को साथ ले गया था। काम के बाद चन्द्रनाथ और आदिनाथ दोनों तीर्थस्थानों का दर्शन करने सब लोग गये थे। चन्द्रनाथ एक द्वीप ऐसा लगता था। चारों तरफ गंभीर जलराशि के मध्य में एक टीले के ऊपर मन्दिर बना था। वहाँ से सब लोग काक्स बाजार (चटगाँव का एक सब-डिवीजन) गये थे। वहाँ सब बौद्ध धर्मावलम्बी हैं। इन लोगों को बंगाली लोग 'मग' कहते थे। यह शायद (Maung) शब्द का अपभ्रंश है।

ये मग लोग आराकान से बहुत वर्षों पूर्व बंगदेश में आकर, बस गये थे।

बरीसाल जिले के भोला सब-डिवीजन में बहुत से मग लोग वास करते थे और पटूआखाली सब-डिवीजन में भी बहुत से मग रहते थे। ये लोग सुपारी के बगीचे ठेके पर लेते थे और सुपारी तोड़कर, सूखा कर, बर्मा और कलकत्ता

चालान करते थे। देखने में यह लोग बर्मी ऐसे लगते थे। इस संप्रदाय के बहुत से लोगों ने खृस्तान धर्म ग्रहण कर लिया था। यह लोग जहाँ बसते थे, वहाँ बौद्ध मन्दिर और चर्च बना लेते थे। बहुत लोग कहते हैं कि इस जाति में पुर्तगीज, डच् और बर्मी जाति का संमिश्रण हुआ है। ये लोग नदी, समुद्र और तालाब के किनारे ही अपना वासस्थल बनाते थे। बिना वृहत् जलाशय के ये लोग नहीं रह सकते और नाव चलाने में दुनिया में शायद ही कोई इनसे ज्यादा दक्ष निकले।

पूर्व-बंग में मछली पकड़ने वाले केवट मछली बेच कर अपनी आजीविका निर्वाह करते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों इनमें होते हैं।

मछली पकड़ने वाले को मेछोनी और कैवर्त कहते थे। इन शब्दों का प्रयोग हिन्दू मछुए के लिये किया जाता था। मुसलमान मछुए को नाइया, शिकारी या सरदार माछुआ आदि कह कर संबोधित करते थे।

नाई या नाऊ को नापित कहा जाता था। वे अपनी पदवी शील लिखते थे यथा, रजनी शील, मधु शील। कलकत्ते में शील बनियों की भी उपाधि है। पर अब नाऊ तो अपने को दास लिखते हैं।

धोबी को बंगदेश में धोपा कहते हैं। इससे वे लोग अपनी पदवी धूपी लिखते थे, पर अब लिखते हैं रजक दास। सोनार को स्वर्णकार और लोहार को कर्मकार कहते थे, पर साधारणतः यह कर्मकार शब्द सोनार और लोहार दोनों के लिये प्रयोग किया जाता है। ढोल बजाने वाले को ढुली कहते थे। पर अब वे लोग अपने को नट्ट अभिहित करते हैं।

बरीसाल जिले में एक गाँव था जिसका नाम था माछ-रंग। वहाँ के नट्ट लोग ढोल, पखावज, नगाड़ा, मृदंग, तबला और बाँसुरी के सर्वश्रेष्ठ वादक माने जाते थे और पूर्व-बंग के सब धनी घरानों में वे प्रति वर्ष नियमित समय पर बाजा बजाने जाते थे। उनकी सर्वश्रेष्ठ पार्टी उस जमाने में प्रति दिन के लिए ढाई सौ से पाँच सौ रुपये तक पारिश्रमिक लेते थे। शाल-दुशाला, स्वर्ण और रौप्य पदकों से उनकी देह ढकी रहती थी।

ढोल बजाने का ढंग तरह-तरह का था। कभी ढोल की आवाज गर्जन की तरह प्रतीत होती, कभी कबूतर की गुटुर-गूँ जैसी, कभी मोर का शोर, कभी बाघ-सिंह की दहाड़ और कभी हाथी की चिंघाड़ जैसी मालूम पड़ती थी। एक बाँसुरी वाले ने राजू के महल में एक गीत को वंशीध्वनि में रूपान्तरित किया था। गीत था—

काला, तोर तरे कदम तलाय बोसे थाकि,
आमार चूल बांधा होयना, आभार जल भरा

होयना, आमार गा घसा होयना,
क्षये क्षये गेलो मोर काजल परा दुटि आँखि ।

"राधिका कहती हैं कि मैं जब जमुना में जल भरने जाती हूँ तब कदम के पेड़ के नीचे काले (श्री कृष्ण) के लिये प्रतीक्षा करती हूँ। तब हमारा जल भरना नहीं होता, सिर के बाल धोकर संवारना नहीं होता। घिसकर देह की सफाई नहीं होती और हमारी कजरारी आँखें रोते-रोते अन्धी हो जाती हैं, पर निर्दयी काला तब भी नहीं आता।"

यह गीत सुनकर महफिल के सब लोगों ने उसको बहुत-सा पुरस्कार दुशाला और नकद रुपया दिया था। पद्मारानी ने दिया था एक सोने का मेडल।

पूर्व-बंग के करीब सब प्रसिद्ध स्थान राजू और पद्मारानी ने देख लिये थे। पश्चिम बंग के मुख्य स्थान, कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, बर्दवान और शान्ति-निकेतन तो बहुत दफे देखे थे। किन्तु अभी तो राजू और पद्मारानी का भारत-भ्रमण बाकी था। दूर की यात्रा करने की तीव्र इच्छा होती, पर घर में अकेला राजू, पद्मारानी और छोटे दो बच्चे थे। बच्चे जब तक बड़े न हो जाँय, तब तक यह कैसे हो सकता था और मानव तो इस संसार का एक यात्री ही तो है। जन्म से मृत्यु तक की राह इस यात्री के सामने विस्तृत है और वह बुलाती है, चलो मुसाफिर।

प्रलय के बादल और नोआखाली की रक्तसंध्या

१

पारेरहाट राजमहल के पास की विशाल नदी कचा में बहुत पानी आया और बह गया। ज्वार की लहर की विलुप्ति भाटे के पानी में होती रहती थी। बारह बरस बीत जाते हैं। जीवन में बहुत से उत्थान और पतन राजू और पद्मारानी ने देखे।

दोनों लड़के देवेन्द्र और रवीन्द्र इलाहाबाद में पारेरहाट हाउस में रहकर पढ़ते थे।

राजू का अवकाश बंगभाषा के सर्वश्रेष्ठ मासिकपत्र 'प्रवासी' और 'भारतवर्ष' में हिन्दी साहित्य और सन्त कवियों के बारे में प्रबन्ध लिखने में बीतता था।

राजू के दोस्त प्रिन्स अकबर अपनी तीसरी बीवी को लेकर दमिश्क चले गये और वहाँ के स्थायी बाशिन्दे बन गये।

सर प्रभास चन्द्र मितर का स्वर्गवास हो गया और यह हुआ जब उनको गवर्नर बनाने की बात चली थी।

सर बी० पी० सिंह राय अब भी मन्त्री थे और बरीसाल के दौरे में पारेरहाट गये थे और वहाँ से मठबारिया के खास महल (Nazul land) दफ्तर भी गये थे।

मोती लाल दास पाँच बच्चों के पिता थे और नौकरी से उन्हें असमय रिटायर होना पड़ा था। उन्हें लकवा मार गया था, चरित्रहीनता की चरम परिणति जैसी होती है।

काकमारी के राजकुमार बहुत-सा धन और जायदाद रखकर चल बसे थे। उनके कई बच्चे और विधवा शीला रानी कलकत्ते की कोठी में रहते थे। मरने के सात बरस आगे से उन दोनों पति-पत्नी में बातचीत भी बन्द हो गयी थी।

चाकमा युवराज नलिनाक्ष की मृत्यु हो गयी थी अचानक, और उनकी जायदाद कोर्ट ऑफ वार्डस में चली गयी थी।

नारायणगंज के राय बहादुर के सात लड़कियों के बाद अष्टम सन्तान एक लड़का अरुण कुमार हुआ था। बड़ा पैसा था राय बहादुर के और लड़का बड़ा लाड़ला था। उन्होंने चार लड़कियों की शादी में सब को एक-एक लाख रुपया दिया था।

तीन लड़कियाँ पढ़ती थीं, बड़ी दोनों कॉलेज में और छोटी हाई स्कूल में। लड़के को वकील बनाने की बड़ी कोशिश की और फिर विलायत जाकर बैरिस्टर बनाने की। विलायत तो गया, पर बैरिस्टर न बन कर उसने एक मेम से शादी की और उसके इस बीच एक बच्चा हो गया था। घर लौट कर अपना कारबार देखना आरम्भ किया और साहबों के क्लब का मेम्बर बना। फिर मेमों के नाच में और सोडा-ह्विस्की पार्टी में रुपया बहाना शुरू किया। पचास लाख की जायदाद पाँच साल में बरबाद हो गयी और दिवाला निकल गया।

राय बहादुर अपनी रखैल के घर में थे जब उनकी मृत्यु हुई थी। डॉ० प्रभा ने अपने भाई को एक नौकरी दिला दी थी चीफ मिनिस्टर मौलवी फजलुल हक के अनुग्रह से। राजू ने भी उसमें अपना जोर लगाया था।

प्रभा की शादी विजय नामक एक डॉक्टर के साथ हो गयी थी। वह सुन्दर लड़का था और उम्र में प्रभा से दो साल छोटा था—यह असवर्ण विवाह था। पर दोनों सुखी थे। प्रभा के एक लड़की हुई थी। ये लोग कलकत्ते के पास एक उपनगर में अपना स्थायी वासस्थल बना कर रहते थे।

राय साहब संन्यास लेकर ऋषिकेश चले गये थे, वहाँ एक साधु बाबा ने एक आश्रम खोला था, जहाँ संसार त्यागने वाले व्यक्ति एक हजार एक रुपया चन्दा देकर आमरण रह सकते थे और उसके खाने और रहने का प्रबन्ध आश्रम से होता था।

राजू के सब दोस्त इस तरह एक-एक कर के खिसक गये थे। कई तो ऐसे गये थे कि उनका नामोनिशान तक नहीं दिखाई पड़ता था।

राजू के जीवन में बहुत विपदाओं ने आकर घेरा था, पर वह उनसे घबड़ाता था और साहस के साथ उनसे निपटता और समस्याओं का हल किया करता था।

व्यसन उसका रह गया था लिखना और बड़े-बड़े ग्रन्थकारों के ग्रन्थों को खरीदना और पढ़ना।

'प्रवासी' मासिक पत्र के गुरुदेव रवीन्द्र नाथ नियमित लेखक थे। पहले पृष्ठ में प्रथम लेख उन्हीं का रहता था जब तक वे जीवित थे। उसी पत्र में राजू के लेख निकलते थे।

हक़ साहब का स्वरूप

पूर्वबंग में सबसे पुराने मुसलिम नेतागण थे बरीसाल के अब्दुल रसूल बैरिस्टर, मोताहर हुसैन बैरिस्टर, मौलवी फजलुल हक, उनके वालिद वाजिद अली, मैमनसिंह में करटिया के विख्यात जमीदार खानपनी साहब लोग, टँगाइल के ग़ज़नवी जमींदार लोग, धनबाड़ी के नवाब अली चौधरी, फरीदपुर के कबिर साहबानों का परिवार जिसके एक सदस्य श्री हुमायुन कबिर हैं, मोहन मियाँ का परिवार और अली मज्जुमन, रंगपुर के लियाकत हुसैन, ढाका के शहीदुल्लाह, प्रभृति।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व हिन्दू-मुसलमान भाई-भाई के रूप में मिलते-जुलते थे। सब सामाजिक शुभकार्यों में और पर्वों में उभय जाति के लोग समवेत होते थे और प्रसाद या पवित्र भोज्य द्रव्य ग्रहण करते थे।

पूर्व-बंग में सबसे बड़े मुसलिम जमींदार थे ढाका के नवाब और सबसे बड़े प्रभावशाली नेता थे मौलवी ए० के० फजलुल हक। इनके पिता मियाँ मुहम्मद वाजिद अली बरीसाल के नामी वकील थे और बाद में सरकारी वकील बनाये गये थे। वे बरीसाल जिले में चाखार ग्राम के निवासी थे। इनका पारेरहाट राज परिवार से सम्बन्ध था और वे उस रियासत के प्लीडर-रिटेनर थे। फजलुल हक कलकत्ते के हाईकोर्ट में वकालत करते थे। सर आशुतोष मुखर्जी के जूनियर के रूप में उन्होंने इस पेशे को अपनाया था। एक बार अपने गाँव में एक कॉलेज की प्रतिष्ठा के समय वे राजू को ले गये थे, पद्मारानी भी साथ थीं। इस अवसर पर बंगाल के गवर्नर सर स्टैनली जैक्सन और उनकी पत्नी भी आयी थीं।

हक़ साहब कांग्रेस के प्रादेशिक सेक्रेटरी के रूप में जनप्रिय हुए, फिर बंगदेश के मंत्री और मुख्य मंत्री बने। पर उन्होंने अपना रूप बदला, मुस्लिम लीगी बन कर। फिर कृषक-श्रमिक पार्टी के नेता बने। पहले हिन्दू-प्रेमी थे, फिर बने बंगदेश के हिन्दुओं के सबसे बड़े शत्रु। बंगदेश में हिन्दुओं को उन्होंने अल्प-संख्यकों में परिणत किया था झूठी मर्दुमशुमारी करा कर। पर राजू और पद्मा-रानी से बड़ा स्नेह करते थे। देश-विभाजन के बाद वह सम्बन्ध छिन्न हो गया।

जब राजू के दो पुत्र हुये थे, तब हक़ साहब ने एक-एक मोहर देकर उनको आशीर्वाद दिया था और बाजे बजवाये थे। वैसा ही किया था उन्होंने राजू के जन्म, यज्ञोपवीत और विवाह के समय। हिन्दू परिवारों से उनका जो संपर्क था, उसे एक परमात्मीय के रूप में निभाते थे।

क्या वकील के रूप में और क्या मंत्री के रूप में, जब उनको पारेरहाट के पास से जाना पड़ता, तब वे पारेरहाट बाज़ार स्टीमर घाट में उतर कर बड़ी रानी माँ, बहूरानी, राजू, यहाँ तक कि राजू के दोनों लड़को से बिना भेंट किये कभी न जाते थे। बहुत दिन बाद जब वे पाकिस्तान के गृहमंत्री थे, तब उनको एक बार ढाका से कलकत्ता और कलकत्ता से रेल से इलाहाबाद होकर दिल्ली जाना पड़ा था। वे इलाहाबाद में जहूर अहमद बैरिस्टर के बँगले में ठहरे थे और वहाँ से पारेरहाट हाउस आकर बड़े लड़के देवेन्द्र से मिले थे और चाय पी थी।

वे संस्कृत भी अच्छी जानते थे और दुर्गा सप्तसती और गीता के कई अध्याय उन्हें कण्ठस्थ थे। बंगाली मुसलमानों में उनके बराबर अंग्रेजी, फ़ारसी और उर्दू भाषा में पारदर्शिता और अधिकार और किसी ने नहीं पाया था। उनके दो रूप थे। जब कोई गरीब ब्राह्मण या निःसहाय हिन्दू जाता, तो अपनी जाति के लोगों की तरफ ध्यान न देकर उन लोगों को मदद करते और रुपया भी दान में देते थे। और जब मुसलमान कठ-मुल्लाओं से घिर जाते, तो हिन्दू को क़ाफ़िर कहने में विलम्ब न होता और उनको अपने मातहती में रखना ही उचित समझते थे। और इसी अवगुण ने उनको नेता से पदच्युत किया—एको ही दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणे शशांकः।

●

ध्वंसलीला

द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ गया था।

नाचघर में बैठा राजू अखबार पढ़ रहा था। भूपेन बाबू दौड़ कर आये और बोले कि चटगाँव में बम गिरे हैं और वहाँ शहर से आदमी अपने-अपने गाँव की तरफ भागे जा रहे हैं।

पद्मारानी लड़कों के पास इलाहाबाद चली गयी थीं। अकेला राजू और रियासत के कारिन्दे लोग राजमहल में थे। रियासत की सब बन्दूकें और राइफल-रिवाल्वरों का लाइसेन्स बदलना था। मालगुजारी का रुपया पचीस हजार देना था। राजू कलेक्टर के पास गया और कहा कि शायद रेल-जहाज

चलना बन्द हो जाय, और पद्मारानी और बच्चे इलाहाबाद से जरूरी तार भेज रहे हैं वहाँ जाने के लिये। बड़ी चिन्ता लगी है, क्या किया जाय ?

कलेक्टर उसका पुराना परिचित दोस्त था। उसने दो महीने का समय देने को कहा अगर पाँच हजार रुपया मालगुजारी देकर दरख्वास्त की जाय। वैसा ही किया गया था। 'आर्म्स लाइसेन्स' तभी सब बदल दिये गये।

तीन दिन बाद राजू इलाहाबाद के लिए रवाना हुआ। खुलना स्टीमर घाट में जब वह स्टीमर से उतरा तो खबर मिली कि कलकत्ते में बम गिरा है (Calcutta bombed), और उस दिन ट्रेन कलकत्ते न जाएगी। खुलना में एयरोड्रोम नहीं था और कोई प्लेन भी नहीं जाता था।

अब क्या होगा ? खुलना के सरकारी वकील के लड़के भोला बाबू ने राजू को अपने घर ले जाकर चाय नाश्ता दिया और परामर्श दिया कि राजू बनगाँव तक ट्रेन में चला जाय, वहाँ से रानाघाट, रानाघाट से पार्वतीपुर, पार्वती-पुर से कटिहार, कटिहार से छपरा, छपरा से बनारस और बनारस से इलाहाबाद पहुँच जायगा। कलकत्ता जाने की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी।

कलकत्ते में ऐसी भगदड़ मची थी कि रेल, मोटर, स्टीमर और हवाई जहाज में कहीं रत्ती भर जगह मिलने की आशा कोई निश्चित रूप से नहीं कर सकता था। बहुत आदमी अपनी-अपनी मोटरों, ट्रकों और जीपों से कलकत्ते से चल दिये थे।

राजू रेल से बनगाँव आया और बनगाँव से रानाघाट। रानाघाट में राजू ने देखा कि हजारों आदमी प्लेटफार्म पर पड़े हैं। प्लेटफार्म के बाहर एक तम्बू लगाकर मुर्शिदाबाद के नवाब और उनकी बेगमें ठहरी थीं।

प्लेटफार्म खचाखच भरा था। एक-एक ट्रेन आती और आदमी कूदकर जबरजस्ती उसमें बिना टिकट घुस जाते थे। न पुलिस, न स्टेशन के कर्मचारी, कोई कुछ किसी को न कह सकता था।

राजू को रात चार बजे की गाड़ी में एक पुलिस इन्सपेक्टर ने बैठा दिया और दूसरे दिन ग्यारह बजे तक वह पार्वतीपुर स्टेशन में उतरा। वहाँ का हाल भी रानाघाट ऐसा ही था। कोई पचास हजार आदमी कलकत्ते से भागकर वहाँ जमा हुए थे अपने-अपने घर उत्तर प्रदेश और बिहार जाने के लिये। पंजाबी, मद्रासी और जरी की पगड़ी लगाये हुए बोहरा लोग भी थे। वहाँ राजू को कटिहार जाने की गाड़ी मिली। वह कटिहार पहुँचा था रात को चार बजे।

वहाँ की हालत सब जगह से खराब थी। वहाँ करीब एक लाख आदमी स्टेशन के कंपाउण्ड में और उसके आसपास जमा थे। सबको घर जाना था।

बंगाली भाइयों के इधर जो रिश्तेदार लोग हैं, उनके घर उन्हें जाना था। और सब को निरापद स्थान में पहुँचना था, पैसे का खर्चा, तकलीफ और सब तरह की मुसीबतों को सहन कर, और यह सब सोचने का समय भी नहीं था किसी के पास। आगे बढ़ो, आगे बढ़ो, यही एक मात्र उद्देश्य था।

दूसरे दिन राजू को सुबह आठ बजे एक ट्रेन मिल गयी थी। वहाँ से छपरा, छपरा से बनारस और फिर बनारस से इलाहाबाद वह रात को नौ बजे पहुँचा था। पारेरहाट हाउस में पद्मारानी दोनों लड़कों को लिये खड़ी थीं।

राजू एक साल लगातार इलाहाबाद में रहा था। नवाब यूसुफ़ उसको आगरा जमींदार एसोसियेशन में ले जाते थे, और डॉ० डी० आर० भट्टाचार्य ने आल इण्डिया म्यूज़िक सम्मेलन में बंगदेश से आनेवाले अतिथियों के स्वागत-संवर्धना का भार उसे सौंपा था। डॉ० अमरनाथ झा ने उससे तीन कहानियाँ हिन्दी में लिखवायी थीं, जो 'तरुण' नाम के एक मासिक पत्र में, प्रकाशित हुई थीं। प्रवासी बंग साहित्य सम्मेलन की स्थानीय शाखा में भी उसका सक्रिय योगदान इस समय हुआ था। इसी समय बंगदेश की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका 'प्रवासी' में राजू ने कवयित्री महादेवी वर्मा और उनकी कृतियों के बारे में एक प्रबन्ध लिखा था। नाच-गान और साहित्य में उसकी रुचि थी और ललित कलाओं के प्रचार में उसका उत्साह था।

तभी प्रयाग के मित्र स्वर्गीय गणेशप्रसाद द्विवेदी ने उसे सितार बजाने का अभ्यास कराना आरम्भ किया था।

फिर राजू और पद्मारानी जरूरी काम से पारेरहाट लौट आयीं। अब राजू के मन में तरह-तरह की चिन्ताएँ आने लगीं। वह साफ़ समझ गया था कि यह विलासी जीवन-प्रणाली, ऐश्वर्य, वैभव, राजपाट और महल सब शीघ्र ही लुप्त हो जायेंगे। जमींदारी और सामंती प्रथा लुप्त हो जायेगी। हजारों बरस की गुलामी का अन्त अब थोड़े दिन की बात है। फिर कैसा जीवन होगा? उच्च, नीच, धनी, निर्धन, सब एक श्रेणी में आ जायेंगे।

विश्ववंद्य बापू का सत्याग्रह अन्दोलन जोर पकड़ रहा था और देश में ऐक्य की स्थापना हो रही थी।

सन् १९२१ में सत्येन्द्र दत्त ने लिखा था—

चित्त दिलो सकल वित्त
गांधी दिलेन पुण्य गंध भरे,
नेहरू दिलो नहर केटे
त्यागेर प्लावन उपचे गेलो भेसे।
युगल अली जालले प्रदीप देशात्मबोध देशे।

... चित्तरंजन दास ने अपना सब कुछ देश के लिये निछावर कर दिया और गांधीजी ने त्याग की सुगंध देश में भर दी। त्यागरूपी जलधारा देश को प्लावित कर दे इसके लिए नेहरू ने नहर काटी और युगल अली, मुहम्मद अली और शौकत अली ने देश में देशात्मबोध का प्रदीप जलाया।

पद्मारानी ने अब सोने की क्लिप बालों में लगाना, चाँदी की कंघी से बाल सँवारना, हाथी दाँत की कंघी से माँग में सिन्दूर भरना और कई नौकरानियों से सेवा लेना त्याग दिया था। अब अपना काम जहाँ तक बन पड़ता वे अपने हाथ करती थीं।

रोज चरखा चलाने की आदत पड़ गयी थी। श्रीमती, साभरणा, हसा रानी आज बन गयी थीं साधारण एक ग्राम्या स्त्री। साटन और रेशम की पोशाक, मखमल के कोमल उपाधान और दर्पण का दर्प उनके लिये व्यर्थ हो गये थे। निराभरण, साधारण वस्त्र-परिहिता एक स्त्री, जो सब के साथ मिलकर काम करे, वही असलियत में आदर्श नारी है, यह उनकी समझ में आ गया था।

बापू का 'Quit India', 'भारत छोड़ो', आन्दोलन तेजी से देश के कोने-कोने में फैल रहा था। देश-विभाजन की अफवाह भी देश-भर में फैल गयी थी...कांग्रेसी जिन्ना अब अंग्रेजों के पिट्ठू और देश-विभाजन के घोर समर्थक बन गये थे। देश-विभाजन हुआ तो राजू को बाप-दादे की देहरी, पारेरहाट राजमहल और उसका सब वैभव छोड़ना पड़ेगा। जमींदारी और सामन्ती प्रथा समाप्त हो जायेगी, पर अठारह मकान, बाजार, एग्रीकल्चरल फार्म, सीर, बाग-बगीचे यह सब तो राजू का रहेगा। महल में कई पुश्तों से संग्रहीत बीस कमरों में भरे सब सोने, चाँदी, फूल के बर्तन, ताँबे और पीतल के तरह-तरह के कलश और असबाब, यह सब तो पद्मारानी के पास रह जायगा।

चरनिपत्ताशी मौजे में राजू ने दो सौ एकड़ बढ़िया जमीन रखी थी कृषि-शाला बनाने के लिये। उसका एक अंग्रेज दोस्त मि० मार्फी दो ट्रैक्टर भेज देगा और खुद आकर कृषि-क्षेत्र को प्रारम्भिक रूप देगा। एक ट्रैक्टर तो आ भी गया था। राजू का स्वप्न विफल हो रहा था।

उसके मन में था कि बड़ा लड़का देवेन्द्र, बैरिस्टर होकर इलाहाबाद हाईकोर्ट में वकालत करेगा और छोटा लड़का रवीन्द्र अमेरिका से कृषि-वित हो कर पारेरहाट में रहकर अपने कृषि-क्षेत्र में काम करेगा।

सामन्तों की गोधूलि

जाने दो राजपाट। अगर देश का भला हो, देश की आजादी हासिल हो जाय, और सब देशवासियों को सुख-सुविधा मिले, तो उसके लिए राजगद्दी और जमींदारियाँ सब चली जानी चाहिये, राजू के मन में यह भावना दृढ़ हो रही थी।

उसके जैसे बहुत से राजा-जमींदारों की हालत बुरी थी। कर्ज से तो करीब सब लदे थे। एक लाख आयवाले एक राजा के ऊपर बारह लाख का कर्जा था। राजा से महाराजा खिताब पाने के लिये और बुढ़ापे में एक मेम रखैल रखने के लिये यह कर्ज हुआ था। घर की जवाहरात पाँच लाख में गिरवी थी। जब उनको महाराजा का खिताब मिला तो और मुश्किल में पड़े। अब स्पेशल ट्रेन से दिल्ली जाकर उपाधि लेकर उसी ट्रेन से कलकत्ता लौटना था। महाराजा की पोशाक के लिये भी चालीस हजार रुपये की जरूरत थी। अब क्या होगा ? मालगुजारी का रुपया बाकी पड़ा था।

पर वह राजा था बड़ा धूर्त, बड़ा चालबाज। कलकत्ते में तब वायसराय लार्ड विलिङ्गडन और लेडी विलिङ्गडन आई थीं। उनको राजा साहब ने पचीस हजार रुपया खर्च कर एक 'एट होम' दिया। कलकत्ते के नामी-गिरामी बहुत से लोग उसमें शामिल हुए थे।

बड़े लाट और उनकी पत्नी बहुत खुश हुई थीं। लेडी विलिङ्गडन ने जब उनको 'इण्टरव्यू' दिया, तब उन्होंने राजा से महाराजा होने पर अपनी विपत्ति के बारे में लेडी विलिङ्गडन को समझाया और गवर्नमेण्ट से तीन लाख रुपया कर्जा के रूप में माँगा।

लेडी विलिङ्गडन ने दिल्ली लौट कर यह प्रस्ताव बड़े लाट से अपने विशेष अधिकार से पास करा कर तीन लाख रुपया कर्जा राजा को दिलाया था। तब राजा साहब सजधज कर महाराजा होने दिल्ली गये थे और राजू को साथ ले गये थे। राजू को वे अपने लड़के जैसा प्यार करते थे।

जब कर्ज से आकण्ठ निमज्जित हो गये, तब अकस्मात हार्टफेल होकर उनकी मृत्यु हो गयी और उनकी रियासत उसी दिन कोर्ट आफ वार्ड्स के संरक्षण में चली गयी थी, क्योंकि उसी हफ्ते में महाजन की डिक्री के रुपये वसूल करने में सब बिक जाने की संभावना थी। छोड़ गये थे तीन लड़के और पाँच लड़कियाँ। लड़के सब क़ाबिल और लड़कियाँ सब शादी-शुदा।

और एक छोटे जमींदार थे एक राय साहब, अखिल दत्त। उम्र होगी सत्तर की, पर सेहत बिलकुल युवकों जैसी थी। देहात में अपने मकान में रहते

और दस हजार रुपया जमींदारी से पाते और ठाठ से रहते थे। वे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मेम्बर और आनरेरी मैजिस्ट्रेट भी थे। विद्या के नाम पर काला अक्षर भैंस बराबर था। पर कलेक्टर और सब-डिवीजनल आफिसर को खुश करके अपने सब काम करा लेते थे। वे धीरे-धीरे लेन-देन कर, सुपारी और धान के कारबार में काफी रुपया कमाकर जमींदार बन गये थे।

अब राय साहब से राय बहादुर होना उन्होंने ठाना। ज्यादा चन्दा वे नहीं दे सकते थे और पुरानी चाल के आदमी थे। इस वास्ते साहब लोगों में अपना रोब नहीं फैला सकते थे। पर वे थे बड़े हिकमती और बुद्धिमान।

शिकार और शिकारी

बरीसाल के कलेक्टर के पास खबर आयी कि जनवरी महीने के आखिरी हफ्ते में कलकत्ते से बंगदेश के गवर्नर लार्ड रेनाल्ड्स बरीसाल चार दिन के सफर में आ रहे हैं। दो दिन जिले के शहर में रहेंगे, और दो दिन भोला सब-डिवीज़न में गवर्नमेण्ट स्टेट का निरीक्षण करेंगे।

उस जमाने में लाट साहब का जिले में आना एक विराट पर्व-सा माना जाता था। सरकारी काम हो या न हो, गार्डेन पार्टी और शिकार तो होना ही चाहिये।

गार्डेन पार्टी में दस हजार रुपया लगेगा और यह तो सब राजा, जमींदार और धनी लोग देंगे। उसका प्रबन्ध एक रिसेप्शन कमेटी बना कर उस पर सौंप दिया गया।

लाट साहब के साथ उनकी लेडी, उनकी दो लड़कियाँ पचीस और तीस बरस की, लिडिया और सोफ़िया, चीफ जस्टिस् की वाइफ़, लेडी वुडरफ़ और लण्डन से आये हुए दो अंग्रेज दम्पति आयेंगे इस सफर में।

मिलिटरी सेक्रेटरी ने कलेक्टर को लिखा था कि इस दफ़ा हिज़ एक्सेलेन्सी, रायल बंगाल टाइगर का शिकार नहीं करेंगे, बाईसन का शिकार खेलेंगे। मेम लोग बाइसन शिकार को बड़ा आनन्ददायक समझ कर आ रही थीं।

कलेक्टर बड़े सोच में पड़े की भोला सब-डिवीजन में जंगली भैंसे होते ही नहीं। वहाँ तो चीता, हिरन और घड़ियालो का शिकार खेला जा सकता था। अब क्या होगा ?

कलेक्टर ने सरकारी वकील को बुलाया और उनकी सलाह पूछी। उन्होंने कहा, यह तो असंभव-सी बात है, जो चीज वहाँ होती नहीं उसका वहाँ शिकार कैसे हो सकता है ? अच्छा हो, भोला से राय साहब को बुलाया जाय और उनसे सलाह-मशविरा किया जाय।

छोटा स्टीमर भोला भेजा गया राय साहब को लाने के लिये। वे आये और सरकारी वकील राय बहादुर गणेश बाबू से मिले, तो उन्होंने कहा कि लाट साहब भोला जा रहे हैं और वहाँ जंगली भैंसे का शिकार करेंगे, अब जिस तरह हो इसका प्रबन्ध राय साहब करें और फिर उनको कलेक्टर साहब खुशी से राय साहब से राय बहादुर बना देंगे आगामी जून के 'ऑनर्स लिस्ट' में। राय साहब कुछ देर चिन्तित मालूम पड़े, पर संभल गये और कलेक्टर से मिलने गये।

कलेक्टर ने कहा कि जिस तरह हो किसी गाँव के पास जंगल में भैंसे का शिकार करने का प्रबन्ध किया जाय और इसके लिये वे सब तरह से राय साहब की मदद करेंगे। राय साहब ने पहले अपनी असमर्थता जाहिर की, पर कलेक्टर के बहुत कहने-सुनने के बाद कहा कि इस काम में लगभग सात हजार रुपया खर्चा होगा। जंगल में घेरा बनवाया जायेगा, साहब लोगों के लिये ऊँचे मचान बनाये जायेंगे जिन पर साहब-मेम लोग बैठेंगी और मचानों की सजावट भी करनी होगी। फिर आम रईसों और सरकारी अफसरों के लिये एक कैंप बनाना पड़ेगा। भैंसे को जंगल से खदेड़ने के लिये कोई पचास आदमी रखने पड़ेंगे, जो बाजे-गाजे और प्रज्वलित मशालों से लैस होंगे, इसमें भी पाँच सौ का खर्चा होगा।

तब बात हुई कि यह रुपया कहाँ से मिले और काम हो जाय, यह भी सोच-विचार कर राय साहब कोई रास्ता निकालें।

राय साहब ने तीन दिन की मोहलत माँगी।

तीन दिन बाद राय साहब तीन मग व्यापारियों को लेकर कलेक्टर के पास पहुँचे।

ये मग लोग सुपारी का कारबार करते थे और सूखी मछली का भी। ये वस्तुएँ बर्मा, सिंगापुर और भारत के दक्षिण प्रदेश और कई स्थानों में ये लोग रेलों और जहाजों से भेजते और बहुत पैसा कमाते थे।

पटुयाखाली अन्तर्गत सरकारी खास महल (Government estates) खेपुपाड़ा और कलापाड़ा में कई मग व्यापारी पचास लाख के असामी थे। राय साहब के साथ जो तीन मग व्यापारी आए थे वे खेपुपाड़ा-निवासी और बड़े मालदार थे।

उन तीनों को ठेके का लाइसेन्स बदलना था। 'रिन्यूवल' डीउ था। वे लोग कई नदियों में मछली पकड़ते थे, उसका और सुपारी का लाइसेन्स कराना पड़ता था। राय साहब ने उन लोगों से कहा था कि पन्द्रह हजार रुपया

देने से तीनों का लाइसेन्स 'रिन्यू' करा देगें और नीलाम की बोली न बोली जायगी। वे लोग अन्य कोई चारा न देखकर राजी हो गये थे।

राय साहब और सरकारी वकील ने कलेक्टर से कहा, ये तीनों मग व्यापारी अभ्यर्थना समिति के कोश में पन्द्रह हजार रुपया दान कर रहे हैं। कलेक्टर ने कमिशनर को यह खुशखबरी सुनाई। दोनों बहुत खुश हुए और ए० डी० एम० को आदेश दिया इन तीनों व्यापारियों का मामला विशेष प्रकार का है, इस लिये तीनों को लाइसेन्स दे दिया जाय और वैसा ही हुआ।

राय साहब को नकद छः हजार रुपया मिला ताकि वे जंगल में मचान निर्माण और भैंसों के खदेड़ निकालने के लिये प्रबन्ध कर सकें। पर भोला सब-डिवीजन में जंगली भैंसें कहाँ ? उन्होंने बारह आदमियों से पाँच बड़े-बड़े भैंसे मँगवाये, ऐसे भैंसे जो गृहस्थ लोग पालते हैं, बड़े तगड़े और देखने में विराट आकार के, छोटे-मोटे हाथी जैसे।

एक मामूली गाँव के जंगल में बड़ा-सा बाँस का घेरा बनवाया गया और एक तरफ ऊँचे-ऊँचे मचान बनाये गये बाँस और सुपारी के पेड़ काट कर, और उसे लाल टूल से और बीच में लाल मखमल से मढ़ कर सजाया गया। उन पर सोफा सेट रखे गये ताकि लाट साहब, उनकी मेम और उनके दोस्तों को मचान पर बैठ कर जंगली भैंसों का शिकार करने में कोई दिक्कत का सामना न करना पड़े। गोलाकार वृत्त को फूल-पत्तों और तरह-तरह की झाड़ियों से सजाया गया था।

घेरे के बाहर एक तरफ एक मखमली सामियाने के अन्दर खाने-पीने का सामान, बैठने और विश्राम करने के लिये कोच, नीचे कार्पेट बिछाकर रखे गये थे।

इसी जंगल से कुछ दूरी पर एक नदी थी। वहीं लाट साहब अपने स्टीमर से, जिसका नाम शायद 'रोहतास' था, आ पहुँचे और उनके साथ करीब पचीस अंग्रेज नर-नारी थे। जहाँ स्टीमर लगा वहाँ अभ्यर्थना समिति के सदस्यगण, जिसमें राजू भी था, उपस्थित थे।

स्टीमर से चार डोंगियों में, जिनको 'जॉली बोट्स' कहते हैं, लाट साहब, उनकी पत्नी और सब बन्धुगण चढ़ कर किनारे आये जहाँ पुलिस और अंगरक्षक खड़े थे।

काठ के तख्तों के ऊपर लाल मखमल बिछा था। सब उतरे, पुलिस ने लाट साहब को सलामी दी। चार मोटरगाड़ियों में बैठकर सब घेरे में आकर मचान पर यथायोग्य स्थान पर बैठ गये, दूरबीन और अपनी-अपनी राइफलें लेकर।

दिन का तब पाँच बजने का समय था। जनवरी का महीना। उन लोगों के बैठते ही जंगल से ढोल-नगाड़ा और शंख-घड़ियाल बजाना जोर से शुरू हुआ। साथ ही पटाखे की आवाजें सुनाई पड़ रही थीं। साठ-सत्तर आदमी जोर-जोर से कनस्तर पीटते चले आ रहे थे।

राय साहब पगड़ी बाँधे और चोगा पहने लाट साहब के पास गये और नतमस्तक होकर कहा—हुजूर, अब पन्द्रह मिनिट के अन्दर इस जंगल से जंगली भैंसे खदेड़ कर इधर लाये जा रहे हैं, ये बड़े खूँख्वार और भयानक भैंसे हैं, सब डरते हैं।

कुछ आदमी मशालें जलाये चिल्लाते आ रहे थे।

ये भैंसे थे पालतू, खिला-पिला कर खूब तगड़े बनाये गये थे, पर उनको लाट साहब और उनके दोस्तों के सामने कैसे दौड़ाया जाय घेरे में, यह एक बड़ी जटिल समस्या बन गयी थी।

राय साहब ने इसका समाधान खोज निकाला था। इन पाँचों भैंसों को शराब पिलायी गयी थी और खूब खिलाया गया था और कई दिन बाँध कर रखा गया था। जब शिकार का समय आया तब उनकी दुमों में एक तरह के पत्ते का रस घिसा गया, जिससे बड़ी दर्दनाक खुजलाहट पैदा होती है और उनकी पूँछों में रुई चिपका कर आग लगा दी गई। फिर उनको छोड़ दिया गया। उनके पीछे ढोल-नगाड़े और तुरही लिये दो-सौ आदमी लाठी-सोंटा लिये चिल्लाते हुए उनका पीछा कर रहे थे और पाँचों भैंसे जान छोड़कर सरपट भाग रहे थे।

राय साहब हिज़ एक्सेलेन्सी और सब को समझा रहे थे, हुजूर, भैंसे आ गये, वह आ गये, अब क्या होगा...हाय हाय......

लाट साहब ने दूरबीन लगाकर देखा कि कई भैंसे भागते हुए मचान के सामने आने को हैं। वे बड़े जोर से हँसे और चिल्लाये। रायफलें ठीक से सब ने उठा लीं और जब देखा कि भैंसे बिलकुल मचान के पास से भगे जा रहे हैं, तब पहले लाट साहब, फिर उनकी लेडी और फिर चीफ जस्टिस की मेम ने गोली दागी। तीन फायर किये गये और क्या देखते हैं कि तीन बड़े-बड़े भैंसे घायल होकर धराशायी हो गये हैं और छटपटा रहे हैं, खून की धारा बह निकली है बड़े वेग से।

लाट साहब और सब लोग खुशी के मारे झूम रहे थे। राजू और उसके सहयोगी अभ्यर्थना समिति के सदस्यों को डर लग रहा था कि इस उद्दाम उल्लास में मचान न टूट जाय और दुःखान्त नाटक अभिनीत न हो जाय।

लाट साहिबा ने राजू से कहा, देखो, मेरी दोनों लड़कियों ने शिकार अभी तक नहीं किया, अभी इसका इन्तजाम करो। राय साहब से राजू ने कहा और उन्होंने राजू के कान में कुछ कहा। राजू ने कहा, योर एक्सेलेन्सी, आप कोई चिंता न करें, अभी और दो बाइसन जंगल से खदेड़े जा रहे हैं।

कुछ देर में फिर बाजे-गाजे और पटाखे की आवाज़ हुई और मचान पर सब लोग अपनी-अपनी राइफ़लें लेकर खड़े हो गये। राजू ने कहा कि महामहिम लाट साहब की दोनों लड़कियाँ पहले फ़ायर करेंगी, और अगर वह मिसफ़ायर हुआ तो और साहबान गोली दागेंगे।

जब दोनों भैंसे दौड़ते हुए मचान के सामने आये, तब मिस लिडिया और सोफ़िया ने गोली चलाई। सोफ़िया की गोली से एक भैंसा घायल होकर गिर पड़ा और दूसरी गोली लिडिया ने चलायी, वह बेकार साबित हुई, तब राजू ने गोली मार कर भैंसे को गिरा दिया।

अब खुशी का अन्त न था, सब नीचे उतर कर बड़े-बड़े 'जंगली' भैंसों के पास खड़े होकर फोटो लेने लगे। लाट साहब और मेम लोग बहुत खुश थे। फिर सब टेण्ट में गये और बड़ी देर तक जलपान और नाच-गान में मग्न रहे।

सोफ़िया और लिडिया ने राजू की सहायता से शिकार में सफलता पाई थी इस वास्ते वे बड़ी कृतज्ञ थीं और कहा था कि किसी दिन पारेरहाट राजमहल में आकर राजू का आतिथ्य ग्रहण करेंगी। राजू को उन्होंने अपने हाथ से काफी बना कर पिलायी थी।

फिर दूसरे दिन सब ने अपने-अपने लांच और मोटर बोटों में चढ़कर प्रस्थान किया था।

इसी वर्ष जून महीने की आनर्स-लिस्ट में राय साहब अखिल दत्त को राय बहादुर बना दिया गया।

नोआखाली में बापू

कई बरस बाद। महायुद्ध शेष हो चुका था।

पारेरहाट राज फिर कोर्ट ऑफ वार्ड्स ने ले लिया था। देश के दो टुकड़े हो रहे थे। इतनी पुश्तों की पावन स्मृति-मंडित मकान, जिसको बंगभाषा में वास्तुभिटा, कहते हैं, छोड़ जाना पड़ेगा। अपना वतन पराया हो जायगा। राजू के पुरखों की, पूज्य पितृ-पुरुषों की कीर्ति—देवालय, विद्यालय, आवासस्थल, सुन्दर, सुखद राज-जनपद पारेरहाट को त्याग देना होगा!

राजू किससे सलाह ले, किसका परामर्श ले ! सब तो चले जा रहे हैं, जो इने-गिने रिश्तेदार थे, वे चुपके से चले गये थे। सवर्ण बंगाली हिन्दू भाग रहे थे। कोई किसी से कुछ कहता नहीं था। सब चुपके-चुपके खिसके जा रहे थे।

१६४६ में और उसके बाद ढाका, चटगाँव, फरीदपुर, खुलना और सबसे ज्यादा अत्याचार नोआखाली जिले में हुआ, पर बरीसाल जिले का वातावरण शान्त था। अश्विनी कुमार दत्त और बैरिस्टर अब्दुल रसूल तथा फजलुल हक ने हिन्दू-मुस्लिम मैत्री और भ्रातृत्व का बंधन कायम किया था वह १६५० के प्रारम्भ तक निबाहा गया था।

१६४६ के आखिरी महीने में वज़ीरे आज़म लियाक़त अली खाँ बरीसाल आये। सब धनी आदमी विशेषतः हिन्दू जमींदार लोगों ने उनको एक बड़ी गार्डेन पार्टी दी और अभिनन्दन-पत्र प्रदान किया गया। इस जिले में इतने बड़े-बड़े हिन्दू लोगों को देखकर वे आग-बबूला हो गये और कहा कि यहाँ पर एक श्रेणी के लोग बहुत मजे में है, पैसा और जमीन उनके पास है और एक श्रेणी के दरिद्र किसान खाना-कपड़ा और रहने की जगह के लिये तरस रहे हैं। जैसे अहीर लोग मुनाफे के लिये गाय का दूध ही नहीं उसका हाड़ मांस तक चूस लेते हैं वैसी ही हालत एक श्रेणी के लोगों ने दूसरी श्रेणी के लोगों की है और उन्होंने कहा था कि इस्लाम कभी ऐसा बरताव सहन न करेगा।

तब बरीसाल में जी० फारुकी, आई० सी० एस०, कलेक्टर थे। वह देश-विभाजन के पूर्व इलाहाबाद में ए० डी० एम० थे।

●

राजू ने कलेक्टर साहब को निमंत्रण दिया था। राज स्कूल के वार्षिक पुरस्कार वितरण सभा में सभापति होने के लिये और बेगम फारुकी को पुरस्कार बाँटने के लिये आमंत्रित किया था। उन दोनों ने धन्यवाद के साथ सहर्ष राजू का प्रस्ताव स्वीकार किया था।

बरीसाल जिला तब तक साम्प्रदायिक हुड़दंगों से अछूता था।

गाँधी जी की नोआखाली यात्रा के दिनों में राजू बरीसाल से दो अनुचरों के साथ नोआखाली जिले में श्रीरामपुर गया था। उद्देश्य था विश्वपूज्य बापू की चरण-वन्दना और दर्शन।

वह ढाका गया और विभागीय कमिश्नर नूरन्नबी चौधरी, आई० सी० एस०, से मिला। वे उसके परिचित मित्रों में थे और कमिश्नर नियुक्त होने के पूर्व बरीसाल जिले में कलेक्टर रह चुके थे।

उन्होंने सलाह दी कि वे भी वहाँ जा रहे हैं और बन पड़े तो दोनों साथ ही साथ चलेंगे। उन्होंने यह भी कहा था कि पंडित जवाहरलाल नेहरू महात्माजी से मिलने वहाँ जायेंगे और जीप जाने लायक रास्ता बनवाने के लिये इंजीनियर से कह दिया है। यह भी उनको देखना था कि वह रास्ता कहाँ तक बनकर तैयार हो गया है।

नोआखाली के हत्याकाण्ड के बारे में सब भारतवासी अवगत हैं। वह इतना भयंकर था कि वहाँ जाने में मिलिटरी-फौज को भी झिझक महसूस होती थी।

महात्माजी के तब प्राइवेट सेक्रेटरी थे निर्मल कुमार बोस। वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के एक प्रख्यात अध्यापक थे। उन्होंने 'करो या मरो' (Do or Die Mission) लेकर बँगला और अंग्रेजी भाषा में नोआखाली की उस समय की परिस्थिति के बारे में यथार्थ विवरण लिपिबद्ध किया था।

तब शहीद सुहरावर्दी थे बंगदेश के मुख्य-मंत्री और कहा जाता था कि कलकत्ता और नोआखाली के हत्याकाण्डों में और हिन्दुओं की लूटमार में अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने अपने अनुचरों और साथियों को संकेत किया था। पर महात्माजी के लिये सब प्रकार का उचित प्रबन्ध करने के लिये भी उन्होंने सब सरकारी मुलाजिमों को आदेश दिया था। ये दोनों बातें सही थीं।

राजू दो दिन ढाका में रह कर नोआखाली जाने का प्रबन्ध करने लगा। कई दोस्तों को लेकर वह श्रीरामपुर गया। यह गाँव नोआखाली जिले में था और महात्माजी यहाँ कुछ दिन रहे थे। यह भी कहा जाता था कि यह गाँव जिस जमींदार का था, उसने बापू को पूर्वी पाकिस्तान में रहने के लिये दान किया था।

बंग समाज में रहने से अनुभव होता है कि ये लोग जन्म-भूमि, अपना गृह, अपने परिवार और अपने समाज को बहुत समादर और प्यार करते हैं। इनको छोड़ कर वे रुपया या और किसी लालच से स्थानान्तरित और सम्पर्क-च्युत होना कदापि नहीं चाहते। पूर्व-बंग के लोग अपना वतन छोड़कर कहीं बाहर या विदेश जाना पसन्द नहीं करते। इसी कारण पूर्व-बंग के लोगों ने पश्चिम बंग के लोगों की तरह नौकरी-पेशा नहीं अपनाया। अपना घर और जमीन से वे संतुष्ट थे और यही कारण था कि पूज्य दादा, पिता-माता, भाई-बहिन और स्वजन-परिवृत होकर अपने देश में रहना ही वे परम गौरव की बात समझते थे।

नोआखाली में एकान्नवर्ती हिन्दुओं के बड़े-बड़े परिवार थे। एक-एक परिवार में साठ-सत्तर आदमी एक रसोई में खाना खाते और परिवार के सबसे बड़े

उम्रवाले व्यक्ति को 'कर्ता' बना कर उन्हीं के आदेशानुसार सब काम करते और एक साथ रहते थे।

नोआखाली जिले में झीलों और नदी-नालों की बहुतायत थी। इस वास्ते वहाँ के गरीबों के घर फूँस के और अमीरों के टीन के और कहीं-कहीं ईंटों के बनाये जाते थे।

पूर्व-बंग में, विशेषकर बरीसाल, नोआखाली, फरीदपुर, ढाका आदि जिलों में पानी बहुत बरसता है और झड़ी, तूफान और नदियों में बाढ़ तो मामूली बात ही समझी जाती है। इस कारण घर बनाना भी समस्यापूर्ण था।

नोआखाली में एक विख्यात घराना था राय साहब राजेन्द्रलाल राय चौधरी का जो सरकारी वकील थे। सत्तर आदमी का खाना उनके एक घर में बनता था। इस घर को मुसलमानों ने जला दिया था और एक छोटे से लड़के के सिवाय सबको मार डाला था।

बापू जब इस जले हुये घर के अन्दर गये और एक कमरे में उन्होंने एक युवक की जली हुई लाश को एक कुरसी पर देखा तो उनकी दोनों आँखों से आँसू बह निकले। कतिपय स्थानीय लोग और राजू उनके साथ थे। वे लोग भी रो रहे थे।

नारीधर्षण, हत्या, डाका, चोरी, बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन और कितने अत्याचार हुए थे इससे तो भारतवासी-मात्र अवगत है और वह सब भारत के इतिहास का एक अंग बन गया है।

राजू सात दिन रह कर जब नोआखाली से चला और उसने बापू के पैर छुये, तो बापू ने उसको पूर्वी बंगाल त्यागने को मना किया था और यह भी कहा था कि अगर दिल्ली जाना जरूरी न हुआ तो वह बरीसाल होते हुए कलकत्ते लौट जायेंगे।

महात्माजी खण्डित भारत को नहीं देखना चाहते थे और नोआखाली के श्रीरामपुर गाँव में आश्रम बना कर शेष जीवन बिताने का संकल्प कर रहे थे। पर वह नहीं हो पाया! देश को स्वाधीनता मिली, खून की होली हुई और देश के एक बड़े भाग के त्याग देने का अपार दुःख भारतवासी मात्र को हुआ।

राजू ने अपने को इतना असहाय, इतना बलहीन कभी नहीं पाया था।

महाकाल के रथचक्र का आवर्तन

१०

कई महीने बाद।

नोआखाली से राजू पारेरहाट लौट आया और अपने काम में लग गया, पद्मा-रानी जहाँ तक हो अन्दर महल का काम समाप्त कर राजू को अनेक समस्याएँ सुलझाने में मदद करती थीं।

रियासत फिर कोर्ट ऑफ वार्ड्स से छूट कर राजू के हाथ में आ गई थी। पर जो काम इतने दिन राजू मन लगा कर सहज भाव से करता था, वह अब उसको दु:साध्य मालूम पड़ने लगा।

ज़मींदारी चली जायेगी, राजपाट छूमंतर हो जायेंगे, देश के दो टुकड़े हो जायेंगे, विदेशी शासन समाप्त हो जायेगा, हिन्दू-मुसलमान के भाईचारे का नाता खत्म हो जायेगा, दो सम्पद्रायों के लोग अलग-अलग भागों में बँट कर रहेंगे, समाज में बहुत परिवर्तन साधित होंगे, नया शासन, नयी समाज-व्यवस्था, इन सब विषयों की बहु प्रकार की चिन्तायें राजू के मन और मस्तिष्क को आलोड़ित किये हुए थीं।

इस परिवर्तन में उसका जीवन अस्त-व्यस्त हो जायेगा क्या?

महाकाल का रथ चल रहा है प्रबल वेग से। उसकी गति को कोई नहीं रोक सकता। वह चल रहा है अतीत काल से लेकर वर्तमान काल तक, युग से युगान्तर तक और वर्तमान काल से लेकर आगामी काल या अनागत युग तक प्रचण्ड गति से चलता रहेगा।

इस महाकाल के रथचक्र के नीचे पिष्ट होकर कितने देश, लोक, समाज, और अगणित मानव मन की चिन्तायें और अभिलाषाएँ, कितनी सुख-दु.ख की भावनाएँ, विलुप्त हो गयी हैं। इसका कोई हिसाब आज तक नहीं मिला।

यह निखिल विश्व एक महानाटक है, महाकाल इसका महान् नायक है और विश्व का इतिहास है उसका रंगमंच। सन् १९४६ से लेकर विश्ववन्द्य बापू के स्वर्गारोहण की अवधि तक देश में जो परिवर्तन हुए उन्होंने केवल भारत पर ही नहीं अपितु समग्र विश्व के इतिहास पर अपनी एक अमिट छाप छोड़ी है।

राजू को गीता में श्रीकृष्ण का उपदेश 'कर्मैव कुर्वीश्वरं' अर्थात् कर्म को ही शक्तिमान ईश्वर मानो, याद आया। वह सोचने लगा, कि कर्म करना ही मानव जीवन का एकमात्र उद्देश्य है, मनुष्य को निरलस, कर्मप्रधान, कर्त्तव्य-परायण होना चाहिए।

राजू को कवि नवीन के पदों की याद आयी—

प्रणव काल थाली में, जीवन क्षण, मुक्ता सम,
लुढ़क जाते हैं नित, देख रहे हम अक्षम,
पर उन मुक्ताओं में ग्रथित, स्मरण सूत्र परम,
जिसके बल, भावी का होता गत से संगम,
यों स्मर, अवलम्बन ले काट रहे जीवन हम,
दूभर सा कटता है तुम बिन जीवन, प्रियतम।

राजू आज समझ रहा था जीवन के क्षण मुक्ताओं के समान लुढ़क रहे हैं और हम हैं कितने असमर्थ!

...पूर्वी बंगदेश का अधिकांश भाग समुद्र की रेती में बसा है। पुरातन पूर्वी बंगदेश के साथ ही जो रेतीली ज़मीन बढ़ती गयी थी और जो उर्वर भूमि 'पली-माटी' से बनी थी उसी में बाहर से, भारत के अन्य प्रान्तों से, लोगों ने आकर अपना वास-स्थल बनाया था और अपनी एक नूतन जीवन-यात्रा प्रणाली पुराने समाज की भित्ति पर प्रतिष्ठित की थी। एक कवि के शब्दों में—

बँगला देशे जन्मेछो बोले बँगाली नहो तुमि
संतान होते साधना कोरिले लभिबे बंगभूमि।

'बंगदेश में जन्म-ग्रहण करने से बंगाली नहीं होता। बंगदेश को जन्मभूमि बनाने के लिये साधना करनी पड़ती है।'

राजा आदिशूर ने जो जन-जागरण का सूत्रपात किया था, कन्नौज से आमंत्रित पाँच कान्यकुब्ज पण्डितों की सहायता से, उसकी अग्रगति होती ही गई और एक से एक महान् विभूतियों का उद्भव हुआ। वहाँ के विद्वजनों ने

नालंदा, तक्षशिला और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों के अध्यक्ष पदों को योग्यता के साथ सुशोभित किया।

इसके पश्चात आया मुसलमानों का राजत्व काल। हिन्दू-मुसलमानों की मिली-जुली प्रचेष्टायें समाज और जनजीवन के विकास और कल्याण के लिये प्रयुक्त हुई थीं। दोनों संप्रदायों में अनमेल की उलझनें और असन्तोष नहीं था और दोनों मिलकर रहने ही में कल्याण समझने लगे थे। नवीन ने कहा है—

अरे समुद्र, अर्पण ही अर्पण चिर जीवन का क्रम है,
और ग्रहण में मरण निहित है, प्रतिफल केवल भ्रम है।

पूर्व-बंग की प्रसिद्ध कवयित्री कामिनी राय ने इससे भी स्पष्ट उक्ति की है—

आपनारे लये विव्रत रहिते आसे नाइ केहो अवनी परे,
सकलेर तरे सकले आमरा,
प्रत्येके आमरा परेर तरे।

प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे को सहायता करने के लिये इस पृथ्वी पर आया है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय राजू की छोटी-सी पारिवारिक मंडली के सदस्यों का पुर्नमिलन हुआ था एक विचित्र परिस्थिति में।

एक परिवार के चार सदस्यों का पुर्नमिलन साधारण घटना सी मालूम होती है, पर बिछुड़े हुए और विपत्ति से मुक्त होकर कई प्रियजनों का सम्मिलन मानव के हृदय में एक अपूर्व उल्लास का सृजन करता है और उसको साधारण नहीं कहा जा सकता।

यह घटना थी तो पुरानी, पर राजू को कभी-कभी ऐसा मालूम होता कि देश की वर्तमान परिस्थिति इतनी शीघ्र बदलती जा रही है कि शायद उसको पुनः स्थान परिवर्तन करना पड़े, शायद देश भी त्यागना पड़े।

●

पुरानी बातें आज राजू को याद आ रही थीं।

वह जब तरुण था तब से उसके मन में एक इच्छा बलवती होती गयी, वह थी दरिद्र पल्लीवासी, निरक्षर पल्लीवासी, अशिक्षित पल्लीवासी, जो उसके रियासत के अधिवासी थे, उनकी अवस्था को उन्नत करना, दरिद्रता का विनाश करना, उनकी आजीविका अर्जन की क्षमता और सामर्थ्य प्राप्त करने में सहायता करना और इन सब कामों में अपने को उत्सर्गीकृत कर देना।

रानी मां ने उससे कहा था—

'मैंने तुम्हारे हाथ में जो 'कवच' बाँध दिया है उसको सदैव पास रखना। दुर्गा सप्तसती का कुछ अंश रोज पढ़ना और भगवान् से एकान्त में अपनी मुक्ति के लिये प्रार्थना करना और महा मानव के रूप में बापू को मानना। जीवन में सुयोग, सहानुभूति, सहारा पाने से तुम भी बड़े बन सकते हो। अपने को हीन न समझना···और न कुछ कर सको तो गरीबों का यथासाध्य उपकार करते रहना। त्याग, तपस्या छोड़ कर कोई बड़ा नहीं बन सकता। क्रोध न करना, लोभ न करना, दिन-रात काम में लगे रहना और काम करते-करते हँसते-खेलते दुनिया से चल देना। किसी के मन में कष्ट न देना। सब को क्षमा करना और सब की यथासाध्य सेवा करना।'···

परम पूजनीया मातृदेवी की उपदेश-वाणी राजू के मन में गूँजने लगी।

राजू और उसकी पत्नी ने पल्लीसेवा के कार्य में हाथ बटाना आरम्भ किया। पूर्वी पाकिस्तान के कर्मयोगी नेता स्वर्गीय सतीन सेन (सतीन्द्रनाथ सेन) के सभापतित्व में उसने राजमहल में जिले की महिलाओं की एक सभा बुलायी थी जिसमें विलासिता त्याग कर देश-सेवा में रत होने के लिये उन्हें आह्वान किया था।

इस कार्य में जिले के विख्यात जनसेवक प्रकाश दास और उनकी पत्नी ने पद्मारानी की बड़ी सहायता की थी।

पाकिस्तान बनने के बाद भी पूर्वी पाकिस्तान के कांग्रेस सेवकों की कानफ्रेन्स पारेरहाट राजमहल में कई दफा हुई। तब पुलिस के अत्याचार बढ़ चले थे। सतीन सेन, वसन्त दास गुप्त, मनोरंजन और सुरेश गुप्त पारेरहाट की सभाओं में योगदान करते थे। एक बार जलसा होने के पूर्व सतीन सेन ने राजू से कहा था कि वह पद्मारानी को लेकर इलाहाबाद चले जायँ लड़कों के पास, नहीं तो पुलिस पकड़ लेगी।

पूर्वी पाकिस्तान की पुलिस हिन्दू नेताओं को जेल में ठूँस रही थी। अंग्रेजों की जेलों में जो नेता लोग धड़ल्ले से जाते थे, वे पाकिस्तान की जेलों में जाने में इन्कार करने लगे। जेलों में कोड़ा मारना और तरह-तरह का निर्यातन होता था। राजू से यह सब सतीन बाबू ने कहा था।

सतीन सेन आखिरी भेंट करने आये थे। पारेरहाट राजमहल में पद्मारानी ने उनको खाना परोसा था। कहने लगे, "न मैं हिन्दू हूँ न मुसलमान, मैं पाकिस्तानी हूँ, पाकिस्तान में रहूँगा और इसकी बुराइयों का विनाश कर इसको आदर्श देश बनाऊँगा।"

फिर कहने लगे—"विधान बाबू ने कलकत्ते बुलाया है, कहा है, सतीन तुम कलकत्ते आ जाओ और पश्चिम बंग के मुख्य मंत्री बनो। हमने इन्कार कर

दिया। नोआखाली गया था। बापू ने मुझे पूर्वी पाकिस्तान त्यागने को मना किया है।"

बीते युग की बातें

बंगदेश की कहानी राजू के मन में चलचित्र की भाँति प्रतिभासित हो रही थी।

महाराज आदिशूर बंग देश के अधिवासियों के राजा थे। सम्राट ही उनको कहना ठीक होगा। आदिशूर के बहुत से सामन्त राजा भी थे।

जब आदिशूर का गौरव-रवि मध्याह्न आकाश में पहुँचा, तब समग्र देश में उनका यश और वीरता की भूरि-भूरि प्रशंसा हो रही थी, उन्होंने एक महा-यज्ञ करने को मनस्थ किया, पर उनके राज्य में ऐसे पण्डित लोग या वेदज्ञ नहीं थे, जो इस महायज्ञ का काम सम्पन्न कर सकते।

इसलिए आदिशूर ने कान्यकुब्ज के सम्राट से पाँच पण्डित यज्ञ कराने के लिये माँगे और उन्होंने पाँच बड़े-बड़े पण्डित और वेदज्ञ ब्राह्मण और उनके साथ पाँच सहायक बंग देश को भेज दिये।

उन पण्डितों ने बड़ी विधि से यह महायज्ञ-कार्य सुसंपन्न किया और वे लोग बहुत सा दान, दक्षिणा के रूप में लेकर अपने देश कन्नौज लौटे, पर वहाँ उनको स्थान नहीं मिला, दक्षिणा-ग्रहण और मत्स्य-भक्षण के अपराध में उनको बहिष्कार किया गया और समाज-च्युत भी किया गया। वे लोग फिर बंगदेश लौट आये और वहीं बस गये।

कहा जाता है कि बंगदेश के वर्ण हिन्दू लोग (caste Hindus) उन्हीं की सन्तति हैं। कायस्थ लोग उन पाँच सहायकों की सन्तान हैं।

बंगदेश का इतिहास जिसने पढ़ा है उसी को उल्लिखित विवरण ज्ञात हुआ होगा, और बच्चों को तो महाराज आदिशूर की कहानी स्कूलों में पढ़ाई जाती है।

चटगाँव में एक केवट सम्राट था, महाराजा शशांक। अपने पराक्रम से उसने समग्र आराकान प्रदेश में राज्य विस्तार किया था।

सिलहट को बंगाली लोग श्रीहट्ट कहते हैं। श्रीहट्ट में प्रसिद्ध पीर शाह जलाल और खुलना, बागेरहाट में ख्वाजा अली की दरगाहों का प्रभाव अभी तक माना जाता है। एक दफा राजू पद्मारानी को लेकर बागेरहाट गया था और वहाँ से मानसा गाँव की कालीबाड़ी में पूजा देने के लिये गया था। बागेरहाट में उसने ख्वाजा अली की दरगाह देखा और उसी के पास एक तालाब के सीमेंट के बने घाट पर बैठ गया। तब बागेरहाट के सब डिवीज़नल मजिस्ट्रेट ने कहा

कि इस तालाब में दो बड़े-बड़े घड़ियाल हैं जिनको मुरगी का गोश्त खिलाने से पुण्य-लाभ होता है।

पद्मारानी भी साथ थीं। तभी चार कटी हुयी मुर्गियाँ मँगवायी गयीं और दरगाह के दो नौकर घड़ियालों को चिल्ला कर बुलाने लगे। दस मिनट बाद तालाब के दूसरे पार से दो बड़े-बड़े घड़ियाल प्रबल वेग से तैरते हुये, जिधर लोग कई मुर्गियाँ लिये खड़े थे उधर पानी में हिलकोरे मचाते हुए आ पहुँचे। सबने बड़े गौर से उन्हें देखा। एक-एक घड़ियाल बीस हाथ लम्बा होगा।

बहुत आदमी कहते थे कि ये घड़ियाल ख्वाजा अली साहब के जमाने के हैं।

जब दोनों घड़ियाल बिलकुल किनारे आ गये तब दरगाह के दोनों नौकरों ने उनके पास पहुँच कर कटी मुर्गियाँ उनके मुँह में डाल दीं। एक मिनट में वे दैत्याकार जलजन्तु चारों मुर्गियाँ निगल गये। दरगाह को देखने जो भ्रमणार्थी आते थे उनमें जो समृद्ध होते, वे घड़ियालों के लिए गोश्त और आटे की रोटियाँ ले जाते थे।

विक्रमपुर परगना अब ढाका जिले में है। इसी परगने के सोनारगाँ (स्वर्णग्राम) में सेन महाराजों की राजधानी थी। उसी वंश के बल्लाल सेन ने पूर्व बंगदेश में नये बंगाली हिन्दू समाज की प्रतिष्ठा की थी। पश्चिम बंगदेश में नदिया के महाराजा कृष्ण चन्द्र राय वाजपेयी बहादुर हिन्दू समाज के सर्वश्रेष्ठ नेता माने जाते थे। उन्होंने काशी से बड़े-बड़े पण्डितों को बुलाकर वाजपेय यज्ञ किया था और वाजपेयी पदवी धारण की थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने जब बंगदेश को अपने अधीन किया तो उस प्रचेष्टा में महाराज कृष्ण चन्द्र ने उन लोगों की सहायता की थी, जो जगत सेठ आदि के साथ इस प्रयास के अगुवा थे।

राजू के मन में बंगदेश के उत्थान-पतन की कहानी चलचित्र की तरह प्रतिभासित होने लगी।

बंगाल के महामानवों में वन्दे मातरम् मंत्र के उद्‌गाता वङ्किम चन्द्र, राम मोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ, माइकेल, हेम, नवीन, रमेशचन्द्र दत्त, रजनी सेन, सत्येन्द्र दत्त, शरत् चन्द्र, नजरुल इस्लाम, सुरेन्द्रनाथ, सी० आर० दास, जे० एम० सेन-गुप्त और नेताजी आदि ने देश और जाति को जो कुछ दिया है, वह सब देशवासियों की महामूल्यवान निधि है।

अब वही शस्य-श्यामला, मलयज-शीतला बंगदेश द्विखंडित होकर उसका एक वृहत् अंश पाकिस्तान में चला जायेगा। तीन करोड़ हिन्दू अधिवासियों के लिये

उनकी यह स्वर्गादपि गरीयसी जन्मभूमि और अन्न-भूमि विदेश में परिवर्तित हो जायेगी। उनके पितृपुरुषों के बनाये गृह और असीम पौरुष और कष्ट से अर्जित जायदाद उन्हें त्यागनी पड़ेगी।

कलकत्ता और नोआखाली में जो नरमेध-यज्ञ और रक्त-गंगा का प्रवाह प्रस्तुत किया गया था वह तो कल्पनातीत था और भविष्य में वैसा ही रहेगा।

पर बरीसाल जिला में शान्ति थी। ढाका और फरीदपुर में भी अमानुषिक अत्याचार हुए थे, मैमनसिंह में भी। परन्तु कर्मयोगी अश्विनी कुमार दत्त के नेतृत्व में बरीसाल जिले में जो प्रगाढ़ मैत्री और प्रेम सम्बन्ध हिन्दू-मुसलमानों में स्थापित हुए थे वे अब तक स्थायी थे।

बालसखा पीयूष

देश-विभाजन और झगड़ों की चिन्ताओं के विषय पर जब राजू पद्मारानी के साथ आलोचना कर रहा था कि एक नौकर ने आकर खबर दी कि कलकत्ते से पीयूष बाबू आये हैं।

पीयूष राजू के लड़कपन से साथी थे। पाठशाला और उच्चविद्यालय में भी दोनों एक साथ रहे थे। दुपहर का खाना खाने के बाद दोनों मित्रों में वार्तालाप आरम्भ हुआ। पीयूष ने कहा, "राजू अब तुमको यहाँ न रहना चाहिये। सब लोग, तुम्हारे इष्ट-मित्र १९४६ के बाद ही यहाँ से चले गये। देश छोड़ने में बड़ा दुःख होता है। मगर रोज अत्याचार और डर-धमकी को सहन नहीं किया जा सकता। तुमने सुना होगा कि गोपालगंज, फ़रीदपुर और नाज़िरपुर में कैसे-कैसे अत्याचार हुए हैं। हमारी बड़ी बहिन की लड़की कॉलेज की छुट्टी में घर आयी थी। अब लापता है। सुना जाता है कई मुसलमान तरुण युवक उसको ले गये हैं। रमेश की माँ, जो छः बच्चों की माँ है वह भी लापता है। सुना जाता है, उसको बेइज्जती के बाद मार डाला गया है। हजारों ऐसी घटनाओं का उल्लेख किया जा सकता है।

"पुलिस और पाकिस्तान सरकार कुछ करती नहीं है। कोई सुनवाई ही नहीं है।

"अब १९५० का साल आरम्भ हो गया है, तुम बरीसाल से अब तक नहीं जा रहे हो और पद्मारानी भी साथ हैं। इस वास्ते तुम्हारे सब बन्धु-बान्धवों ने चिन्तित और दुखित होकर हमको कलकते से भेजा है कि तुम जाकर राजू और पद्मारानी को ले आओ।

"बरीसाल जिला जो अब तक सुरक्षित और आतंकशून्य था अब चंचल हो उठा है। गाँवों से दुर्घटनाओं की खबरें आने लगी हैं। राजापुर में बहुत आदमी मार डाले गये हैं। बहुत गाँव ऐसे हैं जहाँ से ठीक खबर पाना भी मुश्किल है।

"हम जानते हैं कि पारेरहाट राज बहुत पुराना है, और इसके मालिकों ने जन-साधारण के हित के लिये यथासाध्य कार्य भी किया है और उसी वास्ते जन-साधारण तुमको यहाँ से जाने नहीं दे रहे हैं। पर परिस्थिति पर विश्वास नहीं किया जा सकता। जिसने विश्वास किया वही नेस्त-नाबूद हुआ।

"राजशाही में बलिहार राजमहल पर एक मुसलमान महिला ने जबरदस्ती कब्जा कर लिया है और मालिक राजकुमार विमलेन्दु कुछ नहीं कर सका। सवर्ण हिन्दू अच्छी तरह समझ गये हैं कि सयानी बहू-बेटियों को लेकर अब वे पाकिस्तान में नहीं रह सकते। जहाँ देखो वहीं भगदड़ मची है। कोई किसी से दिल खोल कर कहता भी नहीं कि कहाँ जा रहे हैं।

"कुछ नामी-गरामी हिन्दू-मुसलमानों में भारत और पाकिस्तान में अवस्थित जायदाद का विनिमय हो रहा है।

"नोआखाली के हत्याकाण्ड के बाद दिल्ली में कुछ कांग्रेसी नेताओं ने कहा था कि अब वहाँ शान्ति है और हिन्दू लोग अब वहाँ लौट जा सकते हैं और उनका स्वागत होगा। कितनी दर्दनाक और शर्मनाक बात है यह, जहाँ मेरी बहिन छीनी गयी। लड़की की बेइज्जती की गयी, घर जला दिया गया, जहाँ की राष्ट्रविधि में हिन्दू को द्वितीय श्रेणी का अधिवासी कहा जाता है, वहाँ कैसे लौटा जा सकता है?"

राजू ने कहा, "हमारे कुछ मुसलमान मित्र कपट-हास्य के साथ पूछते हैं, 'कब हिन्दुस्तान जा रहे हो? यहाँ रहोगे या नहीं? यह तो अब परदेश हो गया है। जो हिन्दू लोग यहाँ रहते हैं उनके दो रूप हैं, वे हिन्दुस्तान के वफादार समर्थक हैं और पाकिस्तान के प्रवासी अधिवासी।'

सुनकर बड़ा दुःख होता है। अब्दुल मजीद हमारे साथ पढ़ता था। गरीब का लड़का। हमारी किताबें लेकर पढ़ता था और फिर लौटा देता था। मुसलमान होते हुए भी उसने स्कूल में संस्कृत ली थी। पढ़ने में तेज था, पर गरीबी के सबब से आई० ए० से ज्यादा पढ़ न सका। हमने पारेरहाट राज स्कूल में उसको नौकरी दे दी। इतना ही नहीं, अपने दोनों लड़कों के प्राइवेट ट्यूटर भूपेन्द्र बाबू जब पाकिस्तान छोड़कर कलकत्ते नौकरी लेकर चले गये, तो हमने मुहम्मद हसन को हेडमास्टर बना दिया। अदलुद्दीन को नान-मेट्रिक होते हुये भी स्कूल का लाइब्रेरियन और क्लर्क बना दिया है, और कई मुसलमानों को

रियासत में नौकरी दी है। सुनते हैं वे लोग अब आपस में कहा करते हैं, 'अब पारेरहाट राज लुप्त हो जायेगा। पारेरहाट पर हम लोगों का अधिकार हो जायेगा।'

कई दिन हुये बारईखाली जमींदारी कचहरी के नायब वसन्त कुमार गुह हमारे पास आये थे। कहने लगे कि उनकी दो सयानी लड़कियाँ घर से लगे तालाब में नहाने के लिये नहीं जा सकतीं। पानी भरने या नहाने जाती हैं, तो मुसलमान लड़के उनको छेड़ते हैं। ग़नी मियाँ मुख्तार के दो लड़के नंगे होकर खड़े हो जाते हैं और बुरा इशारा करते हैं। अन्सार वकील के दो लड़के पाखाने के पीछे आ जाते हैं, जब कोई लड़की वहाँ जाती है तो अश्लील गाने गाते हैं। अगर एस० डी० ओ० से कह कर एक कान्स्टेबुल उनके हवाले कर दो तो वे दोनों लड़कियों को स्टीमर में चढ़ा दें, ताकि वे कलकत्ते अपने मामा के पास चली जायँ। अगर पुलिस का आदमी न जायेगा तो लड़कियाँ रास्ते में छीन ली जायेंगी। हमने एस० डी० ओ० को लिखकर, एक कान्स्टेबल साथ देकर लड़कियों को हुलारहाट स्टीमर स्टेशन ले जाने का प्रबन्ध कर दिया।

जब से बरीसाल शहर के रिटायर्ड सिविल सर्जन स्वर्गीय डॉक्टर वरदा बाबू के लड़कों ने कलकत्ते के पार्क सरकस में एक मुसलमान के मकान से अपने मकान का विनिमय किया है तब से शहर और गाँवों में तरह-तरह की अफवाहें फैलने लगी हैं।

जायदादों के विनिमय ने जन-साधारण के मन में बड़ी-बड़ी आशंकाओं और भय का उद्रेक किया है। कहाँ क्या हो रहा है, जान पाना भी मुश्किल है। फिर खबर आयी कि गोपालगंज में एक हजार नमः शूद्र लोगों को धर्मांतरित किया गया है। ऐसी खबरें अब मिलती हैं कि कुछ मुसलमान मित्रता का भान दिखा कर हिन्दू लोगों को ठग रहे हैं।

मुसलमान लोग अब हिन्दू लोगों के घर के अन्दर रसोईघर तक पहुँच जाते हैं और औरतों से पीने का पानी और खाने को पान माँगते हैं। ज्यादातर युवतियों से बातचीत करने का आग्रह बढ़ता जा रहा है, जो अब सीमा को पार कर रहा है। पारेरहाट बाजार में हिन्दू दुकानदारों से मुसलमान ग्राहकों का उधार सौदा खरीदना बढ़ता जा रहा है। उधार लेकर कभी लौटाने की बात वे सोचते भी नहीं। और हजारों छोटे-मोटे उत्पातों और अत्याचारों की खबरें मिलती ही रहती हैं; क्या किया जाय कुछ सोच नहीं पाते।

पीयूष ने कहा, "अब तुमको हम लोग यहाँ इस तरह नहीं रहने दे सकते। कब क्या हो जाय, ठीक नहीं है। अभी कुछ आगे खबर मिली है कि तुम्हारी बन्दूकें और रिवाल्वर यहाँ की पुलिस ले लेगी। डेरों पर रखी हुई रियासत की

बन्दूकें आगे ही ले ली गयी हैं। तुम्हारे मन में मुसलमानों के प्रति मित्र-भाव तुमको सुरक्षित नहीं रख सकेगा। हमने अपने गाँव और पास के कसबों में देखा है कि अनपढ़ मुसलमान धर्म के भय से हिन्दुओं के साथ पुरानी मित्रता निभाये जा रहे हैं, पर लिखे-पढ़े मुसलमान हिन्दुओं के घोर शत्रु बनते जा रहे हैं। वे समझने लगे हैं कि हिन्दुओं को सताना और ध्वंस करना और उनकी बहू-बेटियों को बलपूर्वक बेइज्जत करना परम पुनीत कर्म है।

"तुम लोगों का अपने बुजुर्गों के बनाए हुए गृह और जायदाद के प्रति प्रेम और समादर सराहनीय है। पर यह सब है समझदार के लिए, बदमाश और खल व्यक्तियों के लिए यह कोई परवाह की वस्तु नहीं है। अब चलो बरीसाल और वहाँ शहर में सब काम करके, यहाँ लौटकर, पद्मारानी को लेकर, इलाहाबाद चले जाओ। और कुछ कहना नहीं है। जागीर गयी, महल राजपाट गया, जाने दो। जान है तो जहान है। भगवान तुमको फिर देगा और किसी रूप में।"

पुत्र और पुत्रवधू

१९४७ में बड़े लड़के देवेन्द्र की शादी धूमधाम के साथ हो गयी थी।

मध्य प्रदेश के मुख्य मंत्री स्वर्गीय पं० रविशंकर शुक्ल ने अपनी प्यारी पहली दौहित्री राजेन्द्र कुमारी का शुभ विवाह अपनी उपस्थिति में और विवाह संस्कार के संस्कृत मंत्रों का स्वयं सरल हिन्दी में अनुवाद कर वर-वधू को समझा कर, सम्पन्न किया था। वह नव-वधू जब पारेरहाट गयी थी, तब उसका बड़ा समादर हुआ था।

तीन दिन नाच-गान, पार्टियाँ चलती रहीं। मुसलमान लोगों ने भी वधू को आशीर्वाद दिया था और तरह-तरह के उपहार भी। नव-वधू को नया देश बड़ा अच्छा लगा था। वह अब तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की छात्रा थी और पढ़ने में और देशसेवा के कार्य में बड़ा नाम कमाया था। बी० ए० तक उसको तरह-तरह के पारितोषिक और छात्रवृत्तियाँ मिली थीं। फिर इलाहाबाद में अपने पति के साथ रहकर एम० ए० किया अर्थशास्त्र में और कुछ वर्ष बाद डाक्टरेट भी किया।

उसने तो पहले ही देश-सेवा का व्रत ले लिया था। कारपोरेशन की काउंसिलर, लगभग सत्रह जनहित-कर समितियों की सदस्या और उत्तर प्रदेश विधान सभा की इलाहाबाद शहर से सदस्या बनी। आज उत्तर प्रदेश के तरुण कांग्रेस नेता के रूप में डॉ० राजेन्द्रकुमारी वाजपेयी, एम० एल० ए०, ने बड़ी

प्रसिद्धि पायी है। बड़ा लड़का देवेन्द्र भी सेण्ट्रल गवर्नमेंण्ट में उच्च पद पर आसीन है और हिन्दी तथा अंग्रेजी साहित्य का प्रेमी है। इसने भी एम० ए० और एल० एल० बी० की डिग्रियाँ इलाहाबाद विश्वविद्यालय से ली थीं।

छोटे लड़के रवीन्द्र का विवाह हुआ १६४६ में लखनऊ में कुमारी अपर्णा एम० ए०, एल० एल० बी०, डी० पी० ए०, डी० एफ० ए० के साथ। दोनों कर्मसूत्र से भोपाल, मध्य प्रदेश में रहते हैं। अपर्णा एम० ए० क्लास के छात्रों की अध्यापिका है और रवीन्द्र एक बड़े फर्म के मध्य प्रदेश में प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। रवीन्द्र ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में एम०ए० किया था।

राजू का साहित्य-प्रेम सभी ने पाया है और साहित्य का अध्ययन करना सभी का व्यसन है। आचार्य विनोवा भावे के प्रवचन-संग्रह, विशेष कर गीता पर, उन लोगों की प्रिय पुस्तक है। बंग भाषा का अध्ययन सभी ने किया है और रवीन्द्र नाथ की 'संचयिता', सत्येन्द्र दत्त और नजरुल की कवितावली उनके पास सदैव रहती हैं।

राजू को तुलसीदास और आधुनिक कवियों में निराला की रचनाओं ने मंत्र-मुग्ध कर लिया है। उसके मतानुसार प्रेमचन्द ने शरत् चन्द्र से कहीं ज्यादा जन-साधारण के सुख-दुःख, आशा, आकांक्षाओं को व्यक्त किया है।

पद्मारानी ने भारतवर्ष में हिन्दू नारी का कर्त्तव्य लेकर प्रबन्ध लिखे थे और बंगभाषा की विख्यात लेखिका स्वर्गीय अनुरूपा देवी का आशीर्वाद और प्रशंसा प्राप्त की थी।

दोनों लड़के अपनी पत्नियों को लेकर अपने-अपने कर्मस्थलों में रहते थे। राजू और पद्मारानी पारेरहाट में थीं। दोनों लड़के और दोनों पुत्र-वधुएँ राजू और पद्मारानी के प्राणप्रिय थे। संतान सच्चरित्र, परिश्रमी, संयमी, और सत-विवेकी हो, यही वे चाहते थे।

देश-विभाजन के बाद से राजू के मन की शान्ति और उच्च आशायें सब तितर-बितर हो गयी थीं। बरीसाल जिले में हिन्दू-मुस्लिम दंगों और अत्याचारों की संख्या बढ़ चली थी। घर जलाना, छुरेबाजी और औरतों को बेइज्जत करना, ये तो नित्य नैमित्तिक घटनाओं में शामिल हो गये थे।

अभी-अभी खबर मिली थी कि कदमतला गाँव में कुछ तमोलियों को बलपूर्वक धर्मांतरित किया गया है और उनका एक बड़ा भाग गाँव छोड़कर चला गया है।

पास के गाँव होगलाबुनिया में जलधर की युवती लड़की सरयू को मुसलमान गुण्डे रात को घर से बाँध कर ले गये हैं। पारेरहाट के आस-पास के दस-बारह

गाँवों से हिन्दू लोग घर द्वार बेचकर कलकत्ता के आस-पास के गाँवों में चले जा रहे हैं ।

राजमहल में १६४८ के बाद से जो पैंतीस रिश्तेदार आश्रित थे, खुराक, पोशाक स्टेट से पाते थे, वे एक एक-कर राय बरेली, उन्नाव और फतेहपुर जिले में अवस्थित अपने घरों में चले गये थे । बंगाली हिन्दू नौकर-नौकरानी भी एक-एक कर खिसक रहे थे ।

अब क्या होगा ? पर राजू और पद्मारानी अब भी अपने घर में रहने को तैयार हैं । ऐसा मालूम पड़ता है कि एक भी सवर्ण-हिन्दू यहाँ अपनी बहू-बेटियों को लेकर न रहेगा ।

नारियल, सुपारी और झाऊ के पत्तों को हिलाते हुए नचाते हुए बंगोप-सागर से होता हुआ सुशीतल मलयानिल राजू के कमरे में अब भी आकर उसके बालों को उलझा देता था । नित्य प्रति गहरी होती हुई हरियाली, राजू और पद्मारानी को अपनी तरफ अब भी खींचती थी । चम्पा, माधवी, मालती, रजनीगंधा और कुमुद फूल अब भी उनको अपना सुवास देते और रहने के लिये आकृष्ट कर रहे थे । सुख-समृद्धि बाँटती हुई, पर कभी भीषण-दर्शना और प्रलयंकरी कचा नदी आज भी अपनी विस्तृत जलराशि की शोभा से राजू और पद्मा को लुभा रही थी । मालूम होता था कहती है, 'रह जाओ, हमको न छोड़ना ।'

पी० एल० राय की बात

कलकत्ते की सोसाइटी और सभ्यता से ऊबकर राजू के एक दोस्त ने बालीगंज का बँगला छोड़कर सुन्दरबन में एक 'काटेज' बना कर रहना आरंभ किया था । उसका नाम था मिस्टर पी० एल० राय । उसका बाप जिले का पहला जमींदार बैरिस्टर था और पहला आदमी था जिसने विलायत में एक अंग्रेज महिला से विवाह किया था । उसी मेम का पुत्र था पी० एल० राय और बाद में भारतीय रेलवे में बड़ा अफसर बन गया था । उसकी शिक्षा-दीक्षा भी विलायत में हुई थी । उसने भी एक अंग्रेज महिला से शादी की थी ।

रेल का बड़ा कर्मचारी, अंग्रेज पत्नी और बालीगंज में बँगला, बढ़िया कैडिलक गाड़ी, कलकत्ते के टर्फ़ क्लब का मेम्बर और सामाजिक गोष्ठी का एक माननीय सदस्य । नाच, गान, खाना, पीना, सभा-सोसाइटी सबमें मिस्टर और मिसेज राय को सभापति और उद्बोधक भी बनना पड़ता था । रेसकोर्स और आई० एफ० ए० में इस दम्पति की प्रतिष्ठा थी ।

चार-पाँच साल खुशी-खुशी बीत गये। इसके बाद मिसेज राय को भारतीय सोसाइटी से चिढ़ पैदा हो गयी। अब अंग्रेजों को छोड़ और सब से मिलना-जुलना उसने बन्द कर दिया। जहाँ-जहाँ उसको अंग्रेजो का साथ और साहचर्य मिलता, वहीं वह जाती।

फिर तो वह चाय बगीचों के साहबों के पास आसाम जाती और वहाँ महीनों रहती। दार्जिलिंग जाती और वहाँ अंग्रेजों से सम्पर्क-सम्बन्ध स्थापित करती। ऐसा दिन भी आया कि वह काले आदमी और भारतीयों को देखकर घृणा करने लगी। भारतीय आदर्श से नफरत करने लगी।

फिर बाकायदा तलाक का केस हुआ और वह मि० राय को छोड़कर एक अंग्रेज के साथ विलायत चली गयी। गनीमत यह थी कि इस विवाह से मि० राय की कोई सन्तान नहीं हुई थी।

फिर राय ने एक गरीब बंगाली ब्राह्मण की लड़की से शादी की और वह कई बच्चों के पिता बना। बालीगंज का बँगला किराये पर उठा डाला और सपरिवार सुन्दरबन के मकान में रहने लगा।

राजू से वह कहता—"Fed up with so-called society which consists of the vilest of men and women and there is no place for an honest man."

'सोसाइटी' से आजिज आ गया हूँ। यह केवल बदमाश मर्द और औरतों का अड्डा है, इसमें भले आदमी की जगह नहीं है। दिल्ली भी गया था। वहाँ तो काक्टेल पार्टियों और बालडान्स ने मात कर रखा है।

वह और कहता—'फ़ाइन आर्ट्स और कल्चर' के नाम पर बड़े-बड़े ढोंग रचे जाते हैं। अभी-अभी एक बालडान्स में मेरी एक भतीजी को उसके पार्टनर ने एक साइड रूम में ले जाकर बेइज्जत करना चाहा, तब उसने अपनी चप्पलों से उसकी मरम्मत की थी। नाच-गाना सिखाने के नाम पर बड़-बड़े कुकर्म होते हैं।

वह कहता गया, 'जितने हमारे दोस्त हैं उसमें एक पोस्टमास्टर का परिवार हमको बहुत भाता है। वह बहुत सराहनीय कहा जा सकता है। वह दो सौ रुपया मासिक पाता है। उसका पिता शहर में पक्का मकान बना गया है। उसके छः लड़कियाँ और दो लड़के हैं, लड़कियाँ सब एम० ए०, एल० टी० हैं। नाच-गाना उनको भी आता है। सब लड़कियों ने छात्रवृत्ति पाकर पढ़ा है और अच्छे लड़कों के साथ उनकी शादियाँ भी हो गयी हैं। उनके घर में हमने देखा पिता-माता लड़के, लड़कियाँ, सब अपने हाथ से घर का काम करते हैं, नौकर रखने के लिए उनके पास पैसा नहीं है, और पैसा भी होता तो शायद वे नौकर न रखते।

उनको काम करने में आनन्द आता है। एम. ए., एल. टी. पास, विश्वविद्यालय की छात्रवृत्ति और ख्याति-प्राप्त लड़कियाँ, घर की गाय दुहती थीं, घर का आंगन गोबर से लीपती थीं। झाड़ू-बुहारू करतीं और रसोई भी बनाती थीं। पूजा-गृह की सफाई कर वे देवता को फूलों से सजातीं और आरती उतारती थीं। शाम को पिता तबला बजाते, माता तम्बूरा लेकर बैठतीं और लड़कियाँ पहले भजन, और फिर पिता-माता के उठ जाने के बाद प्राकृतिक माधुर्य-पूर्ण गीत गातीं और नाच भी करतीं।

इनकी शाम की मजलिस में वही आते जो औरों की बहू-बेटियों को बहिन या मातृरूपा समझते थे। हीरा, मोती, मोटर और बँगलों के गुणहीन और चरित्रहीन मालिकों के लिये वहाँ जगह नहीं थी।

दो लड़कियाँ सरकारी छात्रवृत्ति पाकर अमेरिका, यूरोप और काहिरा भी भ्रमण कर आयी थीं। बड़ी लड़की बचिया (असली नाम प्रतिभा) रूस और यूरोप गयी थी। वह कहती, 'वहाँ के लोग बड़े परिश्रमी हैं। पढ़ाई में भारतवासी उनसे बढ़कर हैं, पर काम-काज में उनसे बहुत पीछे। सुदृढ़ सद्व्यवहार और हाव-भाव उनमें प्रचुर मात्रा में है।' एक दफा बचिया अपना पर्स पोस्ट आफिस में छोड़कर आयी थी और फिर स्कॉटलैण्ड चली गयी थी। पुलिस ने उसकी खोज-खबर कर पर्स उसके पास स्काटलैण्ड पहुँचा दिया था। वह कहती थी कि वहाँ सफाई ज्यादा है बाहरी तौर से। खाना दस्ताना पहिन कर परोसा जाता है और खाया जाता है काँटे और चम्मच से। पर वहाँ भीतरी सफाई कम पायी जाती है। नहाते हैं सात दिन में एक दफा। हाथ-मुँह साबुन से धो लेना काफी समझते हैं, अन्दर के कपड़े पसीने से और देह की मैल से दुर्गन्धयुक्त रहते हैं। सर्दी का देश, पानी के फुहारे और बरफीले तूफान उसकी जमीन रोज धो देते हैं, इससे सफाई ज्यादा है। यों भलाई-बुराई तो सभी देशों में पायी जाती है।

एशिया और अफ्रीका के अधिवासियों के पिछड़ेपन और अज्ञानता से इन लोगों ने बड़ा लाभ उठाया और इन देशों को हथिया कर व्यवसाय फैलाकर अपने देश की बड़ी उन्नति की है।

बचिया के साथ एक बंगाली इतिहास का छात्र, छात्र-वृत्ति पाकर लन्दन पढ़ने गया था। वह रिसर्च करता था इतिहास की डिग्री के लिये। वह कहता था, 'Half the town has been built with the sale proceeds of the jewels of the Begams of Oudh'—'अंग्रेजों ने अयोध्या की बेगमों के गहने और हीरे-मोती लूटकर उसी के रुपये से आधा लन्दन शहर बनाया है।'

मि० राय आशावादी था। उसकी दृढ़ धारणा थी कि यह देशविदेश-वासियों के गुणों को अपना कर, अपने बल पर अपना भारतीय आदर्श सामने रख कर बढ़ेगा। यह देश, सब देशों से श्रेष्ठ बनेगा। बापू स्वर्ग से आशीर्वाद देंगे।

पद्मारानी की बात

मैं नौ बरस की थी जब पारेरहाट राज घराने में राजू के साथ मेरा ब्याह हुआ था। सासुजी को सब कोई रानी माँ बुलाते थे। मैं भी इसी नाम से उन्हें पुकारती थी।

मैं और राजू माँ के साथ उनके पलंग पर उनके दायें-बायें रात को सोते और दिन को सुबह-शाम दो घण्टे माँ जी, मुझे राजू के साथ घूमने जाने देतीं या अन्दर महल के 'लान' में बैडमिंटन खेलने को कहतीं। हम दोनों एक साथ पढ़ते भी थे। धीरे-धीरे बड़े हुए, तब माँ ने अलग कमरे में रहने का प्रबन्ध कर दिया था।

पुत्रवधू का काम सहज न था। बहुत से नौकर-नौकरानी रहते हुए भी मुझे सबेरे को चार बजे उठना पड़ता था और नहा-धोकर माँ की पूजा करने की सब सामग्री एकत्रित कर धूप, दीप जलाना पड़ता था। अपने हाथ से फूल भी तोड़ने पड़ते थे। जिस दिन मेरी तबीयत ठीक न होती, मन्दिर का ब्राह्मण पुजारी उस दिन वह काम कर देता था।

उस सामन्ती युग में जैसे वधुओं की सीख-दीख होनी चाहिये थी वह सब मेरे लिये किया गया। अंग्रेज़ी पढ़ाई गयी। अंग्रेज मेमों के साथ 'ब्रिज' खेलना और शिकार तथा अन्य पार्टियों में शामिल होने की रीतियाँ सिखायी गयीं। ऐसा क्रम जारी रहा।

फिर बापू का पाँचजन्य बजा और देश के नर-नारी उनकी आज्ञा पर चलने लगे। मैंने भी चरखा कातना और सूत एकत्रित करके खादी आश्रम में साड़ियाँ बनाने के लिये देना शुरू किया। तभी से घर में खद्दर का प्रचार हुआ।

एक बार जब मैं इलाहाबाद में थी, तब मैंने चरखे में कते अपने सूत के लच्छे बापू को दिये थे और उन्होंने आशीर्वाद दिया था माथे पर हाथ रख कर। मैं धन्य हो गयी थी। नारी-रूप में मेरा जन्म-ग्रहण सार्थक मालूम पड़ा था।

अभी तक तो विलासितापूर्ण जीवन-यात्रा प्रणाली और बढ़िया गहने, कार, बँगला, गाने, नाचने की ख्याति, बन्धु बांधवियों की प्रशंसा, यही सब जीवन का साध्य था। पर बापू ने देशवासियों को समझा दिया कि देश-सेवा से

बढ़कर कोई कार्य नहीं है और आदमी विलास-वैभव से बड़ा नहीं होता, बड़ा होता है विद्या से और त्याग से।

अब यह भी मालूम होने लगा है कि राजपाट और ज़मींदारी दो-एक साल में समाप्त हो जायगी। राजा-रानी सब छूमंतर हो जायेंगे। इसी चिंता से कुछ ज़मींदार और राजा लोग पागल से हो गये हैं। कुछ ने हाथी-घोड़े, मोटर, बोट आदि बेंच दिये है। कुछ ऐसे लोग गांव छोड़ कर शहरों में चले गये हैं। जिनको गाँव में रहने का मन था, वे भी हिन्दू-मुसलिम दंगों के कारण शहर में जाकर रहने लगे हैं।

मेरी एक सहेली पंकजिनी ने, जो एक राजा की रानी है, अपनी दोनों लड़कियों की शादी दो सच्चरित्र अध्यापक लड़कों से की है, जबकि कलकत्ते के शोभा बाजार राजबाड़ी से सम्बन्ध आये थे। वह कहती है, सबको छोटा होना है। सब को भाई-बहिन समझना है उसी में सुख है, शान्ति है; और कहती है कि अब कारिन्दों में ईमानदारी नहीं रह गयी, इस कारण ज़मींदारी और राजपाट का काम सुचारु रूप से नहीं चल सकता।

मैं भी समझ गयी हूँ कि पुरातन, जीर्ण जीवनयात्रा-प्रणाली अब समाप्त हो रही है। नये जीवन का अरुणोदय हो रहा है।

तभी कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ ने कहा है,

सकल द्वन्द्व विरोध माझे जाग्रत ये आलो,
सेइ तो आमार भालो,

अर्थात्, जीवन में सब विरोध-द्वन्द्व की उलझनों और उनके समाधानों में जो अभिज्ञता और शान्ति मिलती है, वही हमारी जीवन-यात्रा के लिये हितकर है।

राजू की बात

अब बरीसाल जिले में हिन्दू-मुसलिम दंगे बड़ी संख्या में हो रहे हैं।

रियासत गवर्नमेण्ट ने ले ली है, पर निजी तौर पर जो जायदाद है, उसको लेकर आराम से रहा जा सकता है। पर अब यहाँ रहना असम्भव हो रहा है। क्या किया जाय?

हजारों हिन्दू फ़रियाद करने आते हैं—किसी की लड़की छिन गयी है, किसी की बहिन बेइज्जत की गयी है, घर जलाया गया है, पकी फसल काट ली गयी है, बगीचे से नारियल-सुपारी जबरदस्ती तोड़ लिये गये हैं, रात को घर जला दिया गया है, पुलिस या सरकारी अफसरों में कोई सुनवाई नहीं होती, इत्यादि।

हमारे यहाँ से कलेक्टर और एस० डी० ओ० के नाम कह कर चार सोफ़ा सेट और पचीस बड़ी-बड़ी दरी, पाँच बड़े गलीचे, दस टी सेट, चार चाँदी के बड़े पानदान लिये थे तीन महीने पहले, पर आज तक नहीं लौटाये।

कुर्सियों, मेजों और फूल और पीतल के बरतनों का कोई हिसाब नहीं, कहाँ कौन लेता है और फिर लौटाता ही नहीं। हिन्दू अमला, कारिन्दे, रिश्तेदार, दरबान और रसोइया सब चले गये, आज पाँच महीने हुए। रियासत की बन्दूकें सब छिन गयी हैं, थाने में जमा हैं।

दिनाजपुर के सबसे बड़े जमींदार, दिनाजपुर के महाराजा अपनी सब जायदाद छोड़कर, केवल राम-सीता, नारायण और काली माता की मूर्तियाँ लेकर कलकत्ते भाग गये हैं। इस खबर ने और सबको स्तंभित और निर्वाक, नीरव दर्शक बना दिया है।

मैं अभी तक सोचता था कि पद्मा और मैं, यहाँ साधारण अधिवासियों की तरह रहूँगा और अपने पूज्य पूर्वपुरुषों की स्मृति को बनाये रहूँगा, पर दीखता है कि वह न हो सकेगा।

अब तो अपना नौकर मुकुन्द, पद्मा की खास नौकरानी कुट्टी, रसोइया सुदर्शन, नायब नगेन्द्र नाथ बसु और दरबान राज बिहारी हमारे साथ रह गये हैं, इतने कम आदमी लेकर इतने बड़े महल में, हजारों मुसलमानों से घिर कर कैसे रहा जाय?

आज कई दिन से अजीब-अजीब खबरें आ रही हैं।

गाबगाछिया के पाँच नाई परिवारों के छब्बीस आदमियों को बलात् धर्मांतरित किया गया है।

चरबलेश्वर मौजे के कापालिक सम्प्रदाय के लोगों की सात लड़कियों से वहाँ के अमीर मुसलमानों ने निकाह कर लिया है।

पारेरहाट राजमहल के सामने मदन मोहन जी के अखाड़े में रात को मुसलमान घुस कर सोने-चाँदी के गहने ले गये हैं और कह गये हैं कि सात दिन में यहाँ से राधा-कृष्ण और देवताओं की मूर्तियाँ हटा ली जायँ, नहीं तो वे लोग उन्हें दरिया में फेंक देंगे।

मेरी समझ में नहीं आता कि जो हिन्दू-मुसलमान अपने को भाई-भाई समझते थे वे अब क्यों एक दूसरे के घोर शत्रु बन गये हैं। मामला बिगड़ता जा रहा है। राजपाट गया, जमींदारी गयी, कोई मुआवज़ा पाकिस्तान गवर्नमेण्ट नहीं देगी।

पश्चिम पाकिस्तान से जो शरणार्थी भारत आये, उनको बाकायदा हर्जाना और मुआवज़ा मिला। जिसके मकान न था उसने यहाँ आकर कोठी खड़ी

कर ली, जिसके साइकिल नहीं थी उसने यहाँ आकर मोटर खरीदी। पहले-पहल तो पश्चिम पाकिस्तान के शरणार्थियों ने दिल्ली में ऐसा शोरगुल मचाया कि उनको मनमाना हर्जाना मिला और मुँह-माँगी सुविधायें भारत को देनी पड़ीं।

पर पूर्वी पाकिस्तान में हिन्दू-मुसलमान शरणार्थियों की अदला-बदली (transfer of population) नहीं हुई। इस वास्ते नेहरू-लियाक़त समझौता (Nehru-Liaqat Pact) यहाँ नहीं माना जाता। इसके माने यह हुए कि पूर्वी पाकिस्तान में हिन्दू लोग, जो मजे में गुजर-बसर करते थे, वे लोग बे-घरबार हुए और उनकी रोज़ी भी गयी।

भारत में स्पान्सर्ड (sponsored) और नान स्पान्सर्ड (non-sponsored) दो श्रेणी के शरणार्थी बनाये गये हैं। इसके सही माने यह है कि जो शरणार्थी हजारों की तादाद में पूर्वी पाकिस्तान से आते हैं और शियालदह और हावड़ा स्टेशन में पड़े रहते हैं और फिर रिलीफ़ कैंपों में भेजे जाते हैं, उनके लिये दण्डकारण्य से लेकर अण्डमन-निकोबार द्वीप समूह तक बन्दोबस्त किया गया है और किसी के लिये नहीं, चाहे वे न खाकर मर जायँ, चाहे कहीं रहने को जगह न मिले।

इसी वास्ते बंगालियों का एक बहुत बड़ा भाग कांग्रेस गवर्नमेण्ट को, विशेष कर नेहरू जी को भला-बुरा कहता ही रहता है। बंगाली लोग कहते हैं नेहरू पंजाब और सिंध से आए हुए लोगों के लिये सब कुछ करने को तैयार थे, पर पूर्वी पाकिस्तान से आये हुये मध्य-वित्तशाली हिन्दुओं के लिये उन्होंने कुछ नहीं किया। और ऐसे हिन्दुओं को जो जन-जागरण और देश-प्रेम उद्दीप्त करने में देश में शुरू से अग्रणी रहे। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, रवीन्द्र नाथ ठाकुर, विपिन पाल इत्यादि ने अश्विनी कुमार दत्त के सहयोग से बरीसाल में सर्वप्रथम जो देश-सेवा रूपी सागर की लहर प्रवाहित की थी और जिसकी परिणति चटगाँव अस्त्रागार लुन्ठन तक पहुँची थी और देश के सहस्रों की संख्या में तरुण कर्मी आत्म-बलिदान के लिये प्रस्तुत हुए थे, उनको नेहरू जी और उनके सहयोगियों ने न अपना कर, तुच्छ समझ कर अनादर किया। यह कितने दुःख की बात है! आज भी पूर्वी बंगाल के हिन्दू जितनी नेहरू की भक्ति करते हैं, शायद ही उतना और कोई करता हो। आज भी बंगाली एक होकर देश-सेवा में लग जायेंगे अगर भारत सरकार पूर्व-बंग से आये हुये मध्यवित्त वंगीय शरणार्थियों की तरफ ध्यान दे, जैसा उन्होंने पश्चिम पाकिस्तान से आये हुये सर्वप्रकार के शरणार्थियों के लिये किया है। आज भारतवासियों में कोई ऐसा मूर्ख नहीं है जिसने नेहरू जी को भारत का नेता नहीं समझा।

अब तो देश के दो टुकड़े हो गये हैं। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान, दोनों देश के अधिवासी मिलकर क्यों नहीं रह सकते ? मैं पारेरहाट में रहना चाहता हूँ, पर मित्र कहते हैं कि यहाँ जान-जोखिम है, न रह पाओगे।

कल खान बहादुर अफ़ज़ल आये थे। वे थे मुख्तार पर मिनिस्टर बनाये गये हैं। पूछने लगे, कब मैं और पद्मारानी इलाहाबाद जा रहे हैं ? चार दिन हुए बरीसाल में खान बहादुर हाशिम अली मिले थे, वे भी यही बात मुझसे पूछ रहे थे।

वे रियासत के वकील थे। वे भी रहने का साहस नहीं देते। हिन्दू मित्र तो आगे ही कलकत्ता, बनारस और राँची पहुँच गये हैं।

घरों को जलाया जा रहा है, खड़ी फसलें काट ली जा रही हैं, बाजार लूटे जा रहे हैं, हिन्दू घरों में, मालवाही किश्तियों में डाके डाले जा रहे हैं दिन-दहाड़े। 'सोनार बँगला' श्मशान में परिणत हो रहा है।

जिले में जज साहब से लेकर सब अफसर मुसलिम हैं। जटिल स्वत्व सम्बन्धित मामलों (intricate title suits) के जजमेण्ट, ये लोग नहीं लिख पाते। श्यामबाबू वकील को ये सब जजमेण्ट लिख देने पड़ते हैं, और हर महीने वे इससे दो-ढाई हजार कमा लेते हैं।

एक हिन्दू को हर महीने एक वक्तव्य देने के लिये पाकिस्तान सरकार ने रखा है। वह वक्तव्य है, "हिन्दू यहाँ शान्तिपूर्वक हैं"। उसको मासिक वेतन तीन-सौ दिया जाता है और चलने-फिरने के लिये एक जीप।

अब हमको हर वक्त डर दिखाया जाता है, धमकियाँ दी जाती हैं। प्रेषक के नाम न देकर पत्र आते हैं जिनमें लिखा रहता है, फौरन हिन्दुस्तान चले जाओ नहीं तो खैर नहीं, प्राण गँवाना पड़ेगा।

क्या हो गया ? सरकारी अफसरों के पास कोई सुनवाई नहीं होती। मुझे बरीसाल जाकर कलेक्टर से मिल कर सब ठीक करना है।

मुख्य मंत्री सुहरावर्दी कई दफे मेरे यहाँ आये हैं। वे हमको दिलासा देते हैं, किन्तु कोई हिन्दू अब उन पर विश्वास नहीं करता।

पीयूष की बात

मेरे परम मित्र राजू को कैसे पारेरहाट से निरापद हिन्दुस्तान में लाया जाय।

उसकी पत्नी और वह अभी तक राजमहल में रह रहे हैं।

लड़कपन में हमलोग एक साथ खेले, एक ही स्कूल में पढ़े, एक साथ सुबह-शाम नदी के किनारे बैठकर गाना गाते, सुख-दुःख की बातें करते और भविष्य-

जीवन की रूपरेखा खींचते रहते। उसकी आशा थी, अमेरिका जाकर कृषि विद्या अध्ययन करने की और वकील बनने की।

पर यह मनोकामना धीरे-धीरे मिट गयी। वह एकलौता लड़का अपनी रियासत सम्भालने में लग गया। वह लड़कपन से चरित्रवान था, और मैं कई दफा गिरा, फिर संभला, फिर एक के बाद एक, दो शादियाँ करके सब डिवीजनल टाउन में वकील बना। बाल-बच्चे बहुत से हुए। पर हम लोगों की मित्रता गहरी होती गयी, मेल-मुहब्बत बढ़ती ही गयी।

उसके सब कामों में शरीक होता था। वह भी मेरे जैसे साधारण आदमी की शादी-गमी में शामिल होता था। हर तरह से मदद करता था।

बहुत दिन ऐसे ही बीते। फिर समय का परिवतन हुआ। देश का विभाजन हुआ। दो सम्प्रदायों में ऐसा मनमुटाव और झगड़े खड़े हुए कि अपनी-अपनी जगहों में रहना तक असभंव हो गया। शांतिपूर्ण बरीसाल जिला अशांति और दुःख का आगार बन गया।

मैं तो १९४८ में पिरोजपुर से वकालत छोड़ कर कलकत्ते के निकट बारासत में चला आया, और वहीं मैंने घर बना लिया और वकालत शुरू की। राजू अभी १९५० की फरवरी तक पारेरहाट में अपनी पत्नीसहित रह रहा है। पर अब उसका वहाँ रहना खतरनाक है।

इधर कई पत्र मिले हैं जिनसे मालूम हुआ कि उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। थोड़ा बुखार और कमजोरी है। मुझे उसके पास जाना चाहिये। वह तो मुझे मदद करने में कभी नहीं पीछे रहा। खबर पाते ही हाजिर होता था, खास कर विपत्ति में।

आज सात दिन हुए, मैं पारेरहाट आ गया हूँ। राजू के कुछ रिश्तेदार, कुछ मित्र लोग और उसके डॉक्टर कैप्टन परेश उसके पास पन्द्रह दिन से हैं। बुखार नार्मल हो गया है, कमज़ोरी है, वह भी कम हो रही है।

डॉक्टर ने कहा है चार-पाँच रोज में वह बिलकुल ठीक हो जायेगा, कोई चिन्ता की बात नहीं। मानसिक चिन्ता और देश की हालत, तरह-तरह की अफवाहें सब ने मिल कर उसका स्वास्थ्य बिगाड़ दिया है।

आज वह अपने कमरे में पलंग पर लेटा था। हमारी और कुछ मित्रों की उपस्थिति ने उसको प्रफुल्ल बना दिया था। पलंग से वह कचा नदी का प्रबल प्रवाह देख रहा था, नदी के विशाल वक्ष पर नावों का आना-जाना, यात्रीवाही और मालवाही स्टीमरों का गमनागमन और ज्वार की जलराशि की तरंगें सबने मिलकर एक परम सुन्दर दृश्य प्रस्तुत किया था।

पद्मारानी से राजू ने कहा, कवि कुमुद रंजन मल्लिक की आधुनिकतम कविता 'असुख' पढ़कर सुनाओ।

पद्मारानी ने मनोयोग से कहना शुरू किया—

असुख बोलि जाके, मनेर देखा के,
नतुन करे सेइ तो गड़े आमाके।
असुखेओ देखछि किछु सुख आछे,
सुदूर स्मृतिर शक्ति आमार बाड़ियेछे।
क्लिष्ट देह मनके करे बलिष्ठ,
आपन जने आरो अधिक घनिष्ठ,
आबार धराय देय विदेशेर बांधने,
भूले जावा प्रिय परिजन सबे।
मने पड़ाय एइ जीवनेर सेइ उषा
स्नेह, माया, आदर, सोहाग, शुश्रूषा,
मने-मने तीर्थ-भ्रमण करछि गो
चलियाछि सब देवताय अर्घ गो।
पाइ जे फिरि परिक्रमार दिन गुलि,
मनेर बने आबार पूजार फूल तूलि।
नानान रूपे भगवानइ आसेन जान
जीवन धरे पाच्छि शुधु तार प्रमाण।
माता-पिता होए करेन पालन रे
नित्य नूतन देव देवीते घर भरे।
दुःख ओ सुख, शत्रु मित्रे भेद तो नाइ
अभिनय जे करछे चेना एक जनाई।

अर्थात्, "रोग-मुक्ति के बाद नया जीवन आरम्भ होता है, हमको नयी शक्ति, नयी अनुभूति तरोताजा बनाती है। हमारी विस्मृति और विभ्रांति दूर कर हमको नया रूप प्रदान करती है। फिर अपने प्रियजनों और मित्रों का नया परिचय होता है। उनके साथ मेरा सम्पर्क और घनिष्ठ हो जाता है। भूले हुये मित्र फिर से घर की शोभा बढ़ाते हैं। मेरे शैशवकाल, स्नेह, माया, आदर, सोहाग, बीमारी में सेवा से सम्बन्धित विगत दिनों की याद मेरे मन में आ जाती है। फिर मालूम होने लगता है कि मैं एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ में परिक्रमा कर रहा हूँ। देवताओं को अर्घ्य निवेदन कर रहा हूँ, मन-रूपी कुंज में फूल तोड़ रहा हूँ पूजा के लिये। भगवान तो मुझे बहुरूप में देख रहे हैं। कभी पिता-माता होकर मुझे पालते हैं, घर में जितने स्वजन हैं, वही देव-देवी के रूप में मेरे घर में

अवस्थित हैं, दुःख और सुख में शत्रु और मित्र की विभिन्नता भूल जाना पड़ता है, पर इसका अभिनेता एक ही है वह अद्वितीय है—वह मेरा चिर-परिचित है, वही सब कराता है।''

राजू ने हँसकर कहा, कवि ने रोग को भी वरदान माना है। पीड़ा में भगवान् की असीम दया का अनुभव किया है। मुझे यह कविता बहुत पसन्द आयी। पद्मारानी ने कहा और कोई कविता सुनेंगे ?

राजू—कोई आधुनिकतम हिन्दी कविता, कोई सामान्य कवि की रचित हो सुनाओ।

पद्मारानी—मेरी प्रिय एक कविता का अंश सुनो—

माँगी विद्या, बुद्धि, दिया प्रभु ! तुमने मुझको ज्ञान
यश मांगा, तो दिया विश्वभर का दुर्लभ सम्मान।
धन जो मांगा, दी कुबेर की झोली तुमने खोल,
जन जो मांगा, दिये एक से एक पुत्र अनमोल।
किन्तु बिना मांगे ही तुमने वस्तु मुझे दी एक
क्षुद्र हृदय अट सके न जिसमें यश-धन-जनक विवेक।

चलो, तुमको बाग में ले चलें, वहीं तालाब के घाट पर बैठकर बातचीत करेंगे। सब लोग वहीं बैठकर चाय पियेंगे।

मैंने भी कहा—कल से हम लोग रोज सुबह-शाम घाट पर बैठकर चाय पियेंगे और भावी-कार्य पद्धति की रूप-रेखा भी बनावेंगे।

●

तीन दिन और बीत गये। अब रोज पहियेदार कुरसी में, जिसको पद्मा-रानी अपने हाथों से चलाती थीं, बैठकर राजू घाट पर जाता और थोड़ा चलकर फिर आराम कुरसी में हम लोगों के साथ बैठकर मन खोल कर बातें करता।

कोई गाना गाता, कोई कविता पढ़कर सुनाता और कोई समाचार पत्र में छपी हुई खबरों की आलोचना करता।

अब राजू अच्छा हो गया था। उसका डॉक्टर कैप्टेन परेश कलकत्ता लौट गया था। जब से पाकिस्तान बना, परेश कलकत्ता चले गये थे। रियासत के मुख्तार माखन बाबू का परिवार चला गया है श्रीरामपुर, कलकत्ते से सत्रह मील दूर, और माखन बाबू ने सेवड़ाफुली—तारकेश्वर की बस रूट (bus route) में बस चलाने का ठेका लिया है।

मुसलमान कारिन्दे किसी का हुक्म नहीं मानते थे। वे मनमानी कर रहे थे। रैयत से रुपया लेकर रसीद तक नहीं देते थे, सब कुछ हड़प रहे थे, कोई भय उन्हें नहीं था।

बन्दूक और अस्त्र-शस्त्र सब पुलिस ने रखवा लिया था कई महीने पहले। राजू के मुसलमान इष्टमित्र अब उसके पास नहीं आते। उसकी खबर तक नहीं लेते। हम चाहते हैं कि राजू को लेकर ज़िले के शहर बरीसाल में जाकर कलेक्टर से मिलें और रियासत के वकीलों की सलाह लें। हम चाहते हैं कि राजू और पद्मारानी जितना शीघ्र हो सके, अपने लड़कों के पास इलाहाबाद पहुँच जायँ। आजकल रोज राजू और पद्मारानी के पास सुबह-शाम आसपास के दरिद्र हिन्दू घरों के मर्द और औरतें आती रहती हैं। वही एक प्रश्न, एक बात, अब क्या होगा? आप लोग चले जायेंगे तो हमलोगों की क्या दशा होगी? सब लुट जायेंगे, बेइज्जती होगी, और क्या-क्या होगा, सोचा नहीं जा सकता।

स्वर्गादपि गरीयसी को शेष प्रणाम

११

फागुन का महीना। धान की फसल तो पूस में ही कट गयी थी। सब घरों में इस समय बड़ा आनन्द रहता था। धन-धान्यपूर्ण गृहांगण तरह-तरह के संगीत, हास्य और उल्लास से परिपूर्ण रहते थे। पूस के अन्त से चैत तक पूर्वी बंगाल में अच्छा समय माना जाता है। वैसे तो वहाँ बरसात छोड़कर और सब ऋतुयें बड़ी ही सुहावनी और लुभावनी होती हैं। आज आँगन में बैठे राजू, पद्मारानी और पीयूष बातें कर रहे थे। कल राजू बरीसाल जायेगा और कलेक्टर से और रियासत के वकील से सलाह करके क्या आगे करना है, ठीक किया जायगा।

पुरोहित निशिकान्त मुखोपाध्याय और बाजार के धनी हिन्दू महाजन लोग राजू से मिलने के लिये बाहर की बैठक में सम्मिलित थे। वे लोग खुद परेशान थे और सोच रहे थे कि अब क्या किया जाय। पारेरहाट बाजार के कई धनी महाजनों ने कलकत्ते में दूकानें खोलकर अपने-अपने परिवार के लोगों को और अपना रुपया और जेवरात स्थानान्तरित किया था।

कोई-कोई महाजन अपना लगा हुआ रुपया वसूल कर क्रमशः पाकिस्तान के बाहर ले जाने का उपाय निर्धारण कर रहे थे।

राजू बाहर निकल कर सबसे मिला। उसने यह भी कह दिया कि समस्या अत्यन्त जटिल है और सब को बड़ी सावधानी और सूझ-बूझ के साथ आगे क़दम उठाना पड़ेगा।

राज-पुरोहित ने अगले बुधवार को जाने के लिये शुभदिन कहा और पद्मारानी ने उसी दिन यात्रा का सब बन्दोबस्त करने के लिये राजू के खास नौकर मुकुन्द

को आज्ञा दी। निर्धारित बुधवार को पारेरहाट के स्टीमर स्टेशन से राजू, पीयूष और नौकर मुकुन्द को लेकर स्टीमर में सवार हुआ। बंगदेश में ज़मींदार और राजा लोगों की अपनी असली हवेलियों को 'बाड़ी' कहते हैं और शहरों में रहने के मकानों को बासा कहते हैं।

राजू बरीसाल में अपने बासा, चमार-पट्टी काली-बाड़ी में ठहरा और कई दोस्तों से मिला। दोस्तों में दो तरह के लोग थे, एक साफ़ कहनेवाले कि सब हिन्दुओं को पाकिस्तान से चले जाना चाहिए, यहाँ रहना खतरे से भरा है; दूसरे कहते थे, हम हिन्दू भी नहीं, मुसलमान भी नहीं, हम तो पाकिस्तानी हैं, हमको क्या डर है।

शेषोक्त श्रेणी में बहुत से लोग मुसलमानों से मिलजुल कर फायदा उठा रहे थे, पर उन्होंने भी अपनी सयानी बहू-बेटियों को कलकत्ते या और किसी भारतीय स्थान में भेज दिया था। राजू को ऐसा मालूम हुआ कि उसके कई जिगरी दोस्त उससे दिल खोल कर बात करने में हिचकिचाते थे। क्या बात है ? वही शहर जहाँ राजू लड़कपन से आता-जाता था, जहाँ उसके सब इष्टमित्र रहते थे, अब पराया-ऐसा मालूम पड़ता था।

वह सुबह घोड़ा-गाड़ी में चढ़कर नदी के किनारे घूमने निकला। फिर स्वर्गीय देवकुमार बाबू के लड़के दिलीप राय, आनरेबुल चौधरी इस्माइल (लगातार चालीस बरस सेंट्रल लेजिस्लेटिव काउन्सिल के मेम्बर), देवी बाबू, अमिय बाबू, रमानाथ दत्त चौधरी, अशोक गुप्त और सरल-दा से मिला।

उसको ऐसा अनुभव हुआ कि किसी ने उससे दिल खोलकर बात नहीं की। स्वर्गीय अश्विनी कुमार दत्त बरीसाल जिले के मुकुटहीन राजा थे और बंगदेश के विख्यात कांग्रेसी नेता थे। उनके कोई बाल-बच्चे नहीं थे। उनके तीन भतीजे उनके वारिसानों में गिने जाते थे। छोटे भतीजे सरल-दा को राजू बड़े भाई की तरह मानता था। वे पाकिस्तानी कर्मचारियों से मेल-जोल बनाये हुए थे। उन्होंने भी अपनी सयानी लड़की को दिल्ली में बड़े भाई सुकुमार दत्त के पास भेज दिया था।

अपने वकीलों से भी राजू मिला। राय बहादुर इन्दु सेन ने राजू की रियासत के एक मुकदमे को चलाने के लिये दीवान से दो सौ रुपये लिये थे। वे आज सुबह किसी से कुछ न कह कर एक्सप्रेस स्टीमर से कलकत्ते चले गये। वृद्ध वकील श्याम बाबू से राजू मिला। वे भी कन्नी काट गये। कई लोगों ने कहा, श्याम बाबू के घर की सयानी बहू-बेटियाँ सब कलकत्ते भेज दी गयी हैं, सिर्फ श्याम बाबू और उनकी स्त्री यहाँ पर हैं। दोनों की उम्र पैंसठ से ऊपर है। श्याम बाबू कई सेशन जजों के जजमेण्ट लिखा करते थे और हजार

रुपया घर बैठे कमाते थे। नये जज लोग और बड़े अफसरान, जो यू० पी०, बिहार और पंजाब से आये थे, वे न पूर्वी पाकिस्तान की भाषा समझते थे और न वहाँ के जमीन जायदाद के मुकदमों को।

राजू की समझ में नहीं आ रहा था कि किस तरह वही देश, वही सब पुराने रहने वाले लोग, अब सब बदल गये हैं, कोई किसी को पहचानता नहीं, कोई किसी के लिये सहानुभूति नहीं रखता।

पुरानी दुनिया अच्छी थी। भाई-भाई में मेल-जोल था। इक्का-दुक्का हिन्दू और मुसलमान में झगड़े होते थे पर उसमें खूनखराबी या दंगे नहीं होते थे और आपस में सुलह हो जाती थी।

नयी दुनिया आयी! कितना दुःख देश-विभाजन से आया।

राजू कलेक्टर से मिला। उन्होंने पारेरहाट जाने के दौरे का प्रोग्राम उसको दिखाया और कहा कि पारेरहाट राज हाई स्कूल के पारितोषिक बितरण की सभा में वे सपत्नीक उपस्थित होंगे। जिले के जज, पुलिस सुपरिनटेंडेंट और स्टीमर कम्पनी के बड़े साहब-एजेन्ट मि० हलीगंबेरी भी जायेंगे मेमों के साथ। सब अंग्रेज थे। मुसलमान जी० फारुकी, आई० सी० एस०, कलेक्टर थे।

राजू और कई मित्रों से मिल कर बासा में लौट कर दो बजे खाना खाने बैठा। तभी खबर आयी कि अपने वकील योगेश बाबू को मुसलमान गुण्डों ने छुरा भोंक दिया और अभी आधा घण्टा हुआ वे मार डाले गये।

फिर अफ़वाह फैली कि स्टीमर कंपनी के कैशियर काली बाबू साइकिल में बैठकर दफ्तर जा रहे थे, तब रास्ते में मार डाले गये। घरों, दुकानों और 'हरि सभा' के घरों को जलाने की खबरें आने लगीं।

खून करना, छुरा भोंकना, दूकान लूटना और औरतों को बेइज्जत और अपमान करने की घटनाओं का होना बढ़ चला।

चारों तरफ हो-हल्ला मच गया। भगदड़ मच गई। निरापद स्थानों में पहुँच जाने के लिये सब लोगों ने प्राणों की बाजी लगा दी।

हिन्दू लोग ज्यादा डर गये थे। वे लोग जहाँ थे वहीं ठहर गये। कुछ लोगों ने बैंकों के भवनों में, लोन आफिस में जाकर आश्रय लिया।

पीयूष, राजू को लेकर स्टीमर स्टेशन आया और वे लोग फर्स्ट क्लास के केबिन में जाकर बैठ गये। राजू का फर्स्ट क्लास का स्टीमर 'पास' था, जिसमें पारेरहाट के राज परिवार के बारह आदमी बिना टिकट के जा सकते थे।

पारेरहाट लौट कर राजू ने पद्मारानी को वहाँ से रवाना होने के लिये कहा और बाहर आकर लान में बैठ गया।

बहुत आदमी उससे मिलने आये। तब उसने कहा कि कल कलकत्ते जाना जरूरी है और फिर वहाँ से कुछ दिनों में लौट आवेगा।

वह बिदा बेला

दूसरे दिन वे लोग नावों में चढ़कर हुलारहाट आये। वहाँ करीब दो हजार आदमी जाने के लिये जमा थे। उत्तर प्रदेश या भारत के अन्य प्रदेशों की तरह यहाँ पैदल या मोटरगाड़ी से सब जगह नहीं जाया जा सकता। यह देश नदी-मातृक है। नदियों का देश; आना-जाना नाव या स्टीमर से होता है।

खबर मिली कि बरीसाल से स्टीमर में दो हजार आदमी चढ़ गये हैं और जगह नहीं है। अन्य किसी स्टेशन से पैसेंजर नहीं लिये गये। हजारों यात्री हर स्टेशन में पड़े थे। स्टीमर स्टेशन के मास्टर को 'सब एजेण्ट' कहते हैं। वह किसी यात्री को टिकट नहीं दे रहा था।

राजू को वह पहिचानता था। राजू, पद्मारानी और पीयूष को उसने स्टीमर में फर्स्ट क्लास में चढ़ा दिया। राजू के पास तो फर्स्ट क्लास का 'स्टीमर पास' था। फर्स्ट क्लास के सब कमरों में मुसलमान यात्री थे। सभी थे पाकिस्तान सरकार के कर्मचारी। राजू ने स्टीमर क्लर्क और यात्रियों से एक केबिन बीमार महिला के लिये देने को कहा, पर किसी ने नहीं सुना।

वे लोग डाइनिंग सेलून में बैठे रहे। थर्ड क्लास में 'अल्ला हो अकबर' के नारे लगाये जा रहे थे। कुछ मुल्ला लोग और कुछ अन्सार गार्ड कह रहे थे, "हिन्दू लोग भागे जा रहे हैं। अब इन बाबू लोगों की बबुयानगी हम ही लोग करेंगे।"

दो एक अनपढ़ मुसलमान कह रहे थे, "बाबू लोग तो चले जा रहे हैं, अब कौन हम लोगों को रुपया-पैसा देकर, चावल-धान देकर मदद करेगा?"

पूर्वबंग के मुसलमान, भद्र हिन्दू लोगों को 'बाबू' कहते थे।

एक केबिन से एक पाकिस्तानी अफसर ने निकल कर राजू से हाथ मिलाया। वह उसका परिचित एक इनकम टैक्स अफसर था। उसने सहर्ष अपना कमरा राजू और पद्मारानी के लिये छोड़ दिया, यह कह कर कि मेरी धर्मपत्नी बीमार मालूम पड़ती हैं। हमलोग केबिन में रहें। वह अकेला सेलून में एक सोफे पर बैठकर एक रात काट देगा। राजू ने उसको बहुत धन्यवाद दिया और कमरे में पद्मारानी को लेकर चला गया। पीयूष डेक पर सब बन्दोबस्त ठीक कर सेलून में आकर बैठ गया।

पूर्वी पाकिस्तान—

१९५० की २८ फरवरी।

राजू और पद्मा स्टीमर से कलकत्ते के लिये रवाना हुए। स्टीमर ने हुलारहाट स्टेशन से थोड़े प्रथम श्रेणी के यात्रियों को लिया, बाकी हजारों की

संख्या में पीछे रोते-बिलखते रह गये। स्टीमर नदी-वक्ष का जल आलोड़ित कर बड़े वेग से बढ़ने लगा।

राजू और पद्मारानी जहाज में अपने केबिन की खिड़की से देख रहे थे स्टीमर स्टेशन की बत्तियाँ; उसके पास बाजार की दूकानों और घरों के झिलमिलाते दीप, आँखों से धीरे-धीरे ओझल हो गये। उन लोगों ने हाथ जोड़ कर उस देश की मिट्टी को शेष प्रणाम किया और मन ही मन कहा, "बिदा, हे मातृभूमि, हे जननि !"

राजू और पद्मारानी की आँखें सजल थीं, वे लोग कुछ कहने में असमर्थ थे।

जब कलकत्ते में द्वितीय विश्वयुद्ध में बम गिरे थे तब एक दफा राजू ने पारेरहाट से ऐसी ही यात्रा की थी, पर वह यात्रा इतनी दु:खदायी नहीं थी। इस यात्रा में तो कर्मभूमि, अन्न-भूमि और जन्म-भूमि से सम्बन्ध विच्छेद ही था, यह तो मर्मांतक व्यथा भरी यात्रा थी।

पूर्व-बंग इतना सुन्दर था कि राजू उसको कभी भुला न सकता था। बार-बार याद आती थी उस रूपसी बँगला की जिसके सौन्दर्य का, जिसके प्राकृतिक वैभव और उल्लास का वर्णन पूर्व-बंग के एक तरुण कवि जीवनानन्द दास ने किया है।

जीवनानन्द को विश्वरूप या विश्व के सौन्दर्य ने कभी मुग्ध नहीं किया। वे बंग देश की शोभा, पूर्व-बंग के ग्राम, जामुन, कटहल, पीपल, बरगद, फनीमनसा और सहिंजन की झाड़ियाँ, वहाँ की ग्राम्य गीति और वहाँ के 'मधुकर की नाव', 'चाँद सौदागर', ' चम्पा', 'बेहुला' की कहानियाँ और नारियल, सुपारी के बगीचे—ये ही सब उनके मन को मोह लेते और वे इसी में रम जाते थे। वे कहते हैं—

बंगलार मुख आमि देखियाछि,
ताइ आमि पृथिवीर रूप खुँजिते जाई ना आर।

मैंने बंग-देश के मुखारविन्द का सौन्दर्य दर्शन किया है, मैं विश्व का रूप देखने नहीं जाता।

फिर कहते हैं—

आमि जे देखिते चाई, आमि जे बसिते चाई बंगलार घासे—
पृथिवीर पथ घूरें बहु दिन !

मैंने पृथ्वी का बहुत दिन तक निष्फल परिभ्रमण किया है। अब मैं बंगदेश की श्यामल घास को देखना चाहता हूँ, उस पर बैठना चाहता हूँ।

फिर कवि अपनी मनोकामना व्यक्त करते हैं—

आबार आसिबो फिरे धानसिड़िटिर तीरे,
एइ बाँगलाय हयतो मानुष ना हयतो शंख चील बा शालिखेर वेशे,
हयतो भोरेर काक होयतो, ए कार्तिकेर नवान्नेर देशे।

'हम दूसरा जन्म लेकर फिर इसी देश में धानसिड़ी नदी के किनारे लौट आवेंगे, शायद शंख चील, गलार पक्षी या कौवा के रूप में, इसी देश में जहाँ कार्तिक महीने में धान काटने पर नवान्न या नया अन्न खाने का उत्सव होता है।'

जहाज चल रहा था, सन्ध्या रात्रि में परिवर्तित हो रही थी। राजू को याद आ रहा था—

बांगलार नील संध्या केशवती कन्या जेनो एसेछे आकाशे;

आमार चोखेर परे, आमार मुखेर परे चूल तार भासे।

'बंगदेश की नीली, सुहानी संध्या एक सुकेशी सुन्दरी-सी आकाश में उतर आयी है और उसके चूर्ण कुन्तल अस्त-व्यस्त होकर मेरे मुँह और आँखों पर छा गये हैं।'

और—

ये दिन मरण एसे अंधकारे आमार शरीर

भिक्षा करे लए जाबे, सेदिन दु दण्ड एइ बांगलार तीरे···

'जिस दिन मृत्यु मुझको असीम अंधकार में ले जायगी, उस दिन भी हम कुछ समय इस बंग देश के किनारे रहने के लिए उससे माँग लेंगे ?'

राजू और पद्मारानी सोच रहे थे कि क्या कभी फिर इस देश में लौट कर आ सकेंगे ?

पूर्व-बंगदेश, जहाँ के राजा आदिशूर ने कन्नौज के राजा से पाँच ब्राह्मण पंडित बुलाकर यज्ञ किया था और जन-जागरण का सूत्रपात किया था अपनी राजधानी ढाका जिले के एक क्षुद्र गाँव में, जहाँ हिन्दू-मुसलमान की मिली-जुली सभ्यता और संस्कृति ने सबको ऐक्य के एक सूत्र में पिरोया, खान जहान अली और शाह जलाल' ने जिसे मिलकर बाँधा था, वह सब मिट गया ! विस्मृति के अतल गर्भ से अब क्या कभी उसका उद्धार न होगा ?

पुरानी स्मृति को हृदय-पटल से बिलकुल मिटा देना राजू के लिये असंभव था। उसको एक पुरानी कविता की एक कड़ी याद आ रही थी—

किसी ने तुम्हारे सपने छीने

मैंने तुम्हारा दिल तोड़ा,

और अब कोई

मेरी दुनिया उजाड़ रहा है।

अपने केबिन से पद्मारानी नहीं निकलीं। उदास, निस्तेज और निर्जीव-सी वे अपने बिस्तर पर पड़ी थीं, रोते-रोते शान्त हो गयी थीं शायद उनके आँसू सूख गये थे।

रास्ते में हर स्टेशन में हजारों यात्री उपस्थित थे, पर जहाज में किसी को नहीं लिया गया, क्योंकि उसमें जगह नहीं थी। सुबह वे लोग खुलना पहुँचे, जहाँ से ट्रेन में चढ़ कर कलकत्ता पहुँचना था।

'जेटी' में जहाज लगा और उतरने के लिये तख्ते डाल दिये गये और उन पर टाट भी बिछा दिया गया। बाहर पुलिस के कान्स्टेबल बन्दूक लिये खड़े थे और उनके पीछे करीब दो सौ अन्सार गार्ड्स पाकिस्तान जिन्दाबाद के नारे लगा रहे थे।

कोई यात्री अपनी बहू-बेटियों को लेकर नहीं उतर रहा था। सबको भय था की अन्सार गार्ड्स जवान लड़कियों को छीन लेंगे और सूटकेसों और ट्रंकों को ले जायेंगे।

राजू और पद्मारानी को फिर याद आया—

क्या मैं तुम और वह हमेशा इसी तरह
एक दूसरे के
सपने छीनेंगे,
दिल तोड़ेंगे,
दुनिया उजाड़ेंगे ?

स्टीमर के थर्ड क्लास में थे राजू के रिश्तेदार स्वामीदयाल तिवारी, उनकी स्त्री, लड़का पचीस वर्षीय विशु या विश्वनाथ तिवारी और दो लड़कियाँ लक्ष्मी और वीणा, जिन दोनों की उम्र अठारह और सोलह की होगी। वे लोग राजू और पद्मारानी से मिले।

स्टीमर जेटी में दो घण्टे से लगा है। उधर कलकत्ते की ट्रेन छूटने में पचीस मिनट बाकी है, पर कोई यात्री जहाज से उतरने का साहस नहीं कर रहा था।

जब रेल चलने को पन्द्रह मिनट रह गये, तब राजू पद्मारानी का हाथ पकड़ कर जहाज से उतरा और उसके पश्चात स्टीमर के और सब यात्रियों का उतरना आरम्भ हुआ।

अन्सार गार्ड्स वालों ने आवाज बुलन्द की, पाकिस्तान जिन्दाबाद, साले हिन्दू लोग जा रहे हैं। कहीं से आवाज आई, 'काफ़िरों की औरतों को बेइज्जत करने में बड़ा सवाब मिलता है।' लेकिन दो-एक वृद्ध मुसलमानों को यह भी कहते सुना कि पाकिस्तान से बाबू लोग जा रहे हैं, अब हमलोगों को मुसीबत में कौन सहारा देगा, कौन रुपया कर्जा देगा, कौन लड़कों को अच्छी तरह पढ़ावेगा और बीमारी में कौन देखभाल करेगा, एक भी तो मुसलमान डॉक्टर नहीं है।

क्रमश: स्टीमर के सब यात्री रेल में चढ़ गये और रेल चल पड़ी। बहुत से हिन्दू तहमद या लुंगी बाँधे थे और बहुत सी हिन्दू औरतों ने बुरका पहन रखा था।

जिस स्टेशन पर रेल रुकती, हजारों लोगों की पाँत से थोड़े से आदमी रेल में चढ़ने पाते, बाकी लोगों को पुलिस चढ़ने नहीं देती थी।

जब पाकिस्तान के आखिरी रेल स्टेशन, बेनापोल में रेल रुकी, तो बड़ा हो-हल्ला हुआ और पाकिस्तान पुलिस और कस्टम अफसरों ने रेल के डब्बों में चढ़कर तलाशी के नाम पर ऊधम मचाना आरम्भ किया।

राजू ने उतर कर देखा कि उसके रिश्तेदार विश्वनाथ तिवारी को कई पुलिस कान्स्टेबल डंडों से प्रहार कर रहे थे और उसकी दो सयानी बहनें रो रहीं थीं। उसका पिता मार खाकर कहीं भाग गया था। विशु पर बड़ी मार पड़ी, पर उसने अपनी बहनों को नहीं छोड़ा।

और कई दुःखद घटनाएँ घटीं, जिनका वर्णन करना यहाँ समीचीन न होगा।

खण्डित भारत में पदार्पण

राम-राम कर भारत की सीमा के रेल स्टेशन में जब गाड़ी पहुँची, तब जय काली माई की ध्वनि सुनाई पड़ी।...उल्लास की लहर उमड़ पड़ी।

हिन्दू औरतों ने बुरका फेंक दिया और माथे पर सिन्दूर लगाया और मर्दों ने तहमद खोलकर धोती पहन ली। सब रेल से उतर कर प्लेटफार्म पर चाय और जलपान करने में रत हो गये। कोई-कोई मनोव्यथा उड़ेल कर कुछ शान्ति पा रहे थे और कोई-कोई असीम वेदना-भार वहन कर लेटे पड़े थे।

कलकत्ते में जब सब शियालदह स्टेशन पहुँचे तो राजू ने देखा की वहाँ हजारों की तादाद में शरणार्थी प्लेटफार्म के चारों तरफ पड़े थे, असहाय और निर्जीव ऐसे...

राजू के एक रिश्तेदार शिवबदन मिश्र शियालदह स्टेशन से राजू और पद्मारानी को स्ट्रैण्ड रोड पर अपने निवासस्थान ले गये, जहाँ रायबरेली, जिले के गेगोंसी के निवासी पंडित सूर्यप्रसाद शुक्ल और उनके छोटे भाई चिरंजीव सीताराम ने उनकी सुख-सुविधा के लिये सब प्रकार के प्रबन्ध कर दिये थे। उनकी सहायता और सेवायें कभी भुलायी नहीं जा सकतीं।

पीयूष एक दिन रह कर अपने कर्मस्थल चला गया और राजू से कह गया कि उसकी जरूरत पड़ने पर उसको ट्रंक-काल कर बुला लिया जाय। राजू और पद्मारानी कलकत्ते में रह गये। तब पश्चिम बंगाल के गवर्नर थे डॉक्टर कैलास नाथ काटजू। उन्होंने राजू को बुलाया और सब हाल सुना और कलकत्ते में रहने की सलाह दी।

राजू अपने शुभेच्छुक और माननीय मित्र सर विजय प्रसाद सिंह राय से मिला। उन्होंने भी उसको कलकत्ते में रहकर कोई व्यवसाय करने की सलाह दी और उसको चीफ सेक्रेटरी एस० एन० राय से मिलने को कहा और कई पत्र बड़े-बड़े लोगों से मिलने को दिये।

पर राजू का मन कह रहा था कि पूर्वबंग की बुजुर्गी जायदाद ही जब चली गयी तो अब उसको अपने पुरखों के देश लौट जाना चाहिये, उसी में उसकी भलाई है। जहाँ से साधारण घराने से उसके पूर्वपुरुष सन सत्तावन के बाद ग्राम परित्याग कर चले गये थे, वहीं या उसी प्रदेश में उसको शान्ति मिलेगी, अन्यत्र कदापि नहीं। ऐसी उलझन में, ऐसी अव्यवस्थित परिस्थिति में उसको अपने पुरखों की जन्म-भूमि और जिन लोगों के मध्य से राजू के आदि पूर्व-पुरुष निकले थे, वहीं उन लोगों के पास ही लौट जाना राजू और पद्मारानी के लिये श्रेयस्कर होगा—'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

●

राजू और पद्मारानी कलकत्ते में तीन-चार महीने रहे। वहाँ उसके पास पूर्व पाकिस्तान से भगे हुये हजारों शरणार्थी आते थे। वे लोग कहते 'राजा बाबू, हमलोगों की मदद करो। फिर से हमें बसाओ।'

राजू और पद्मारानी जहाँ तक बन पड़ता, उन लोगों को सहारा देते रहे, पर राजू और पद्मारानी की हालत तो रहीम की कविता में वर्णित जैसी हो चली थी।

ये रहीम दर-दर फिरें;
मांगि मधुकरी खाहिं;
यारों-यारी छोड़ दो
वे रहीम अब नाहिं।

राजू की आर्थिक स्थिति बिगड़ गयी थी, पर अपने जीवन को वह अब नये सांचे में, नये सिरे से ढालने में व्यस्त था।

उसने डॉ० काटजू या सर वी० पी० सिंह राय, किसी की बात न सुनी। उसने इलाहाबाद में सपरिवार रहने का निश्चय कर लिया था। वह इलाहाबाद में रहने लगा, साधारण मध्यमवर्गीय लोगों की तरह। राजू के दोनों लड़के और बन्धुओं का उल्लेख आगे हो चुका है। अब राजू तुलसीदास के अध्ययन में व्यस्त रहता है और पद्मारानी भजन-पूजन में। तुलसीदास को वह समझने की कोशिश करता है।

ओ महाकवि !
गा गये तुम गीत जीवन के, मरण के,
भाव पूरक, मुक्त मन के।
सत्य शिव, सौन्दर्य वाहक।

निराला ने तुलसीदास की महिमा को कविता का रूप दिया है, उसको राजू पढ़ता—

वह तरुशाखा का
वनविहंग,
उड़ गया मुक्त नभ
निस्तरंग,
छोड़ता रंग पर रंग,
रंग पर जीवन है ।

भविष्य की ओर

भारत को भारत जैसा ही रहना है । हम नहीं चाहते वह सभ्यता जो कवि को मिस्त्री और राजगीर बनावेगी, दर्शन का अध्ययन त्याग कर दार्शनिक बनावेगी, कालिदास का काव्य लुप्त कर देगी, नव वसन्त में कोकिल का गुंजन आनन्द न देगी, पूनम का चाँद, वासन्ती पवन, कुसुम का सुवास, यौवन का रोमांच, अपने सोने के हिन्दुस्तान की रीति-रस्म, अपने प्रियजन को, सबको भुला देगी, और काठ, लोहा, सीमेन्ट और लड़ाई के सामान इकट्ठे करेगी; दया, माया, स्नेह और अपनी देश-भक्ति को लुप्त कर मिटा देगी, वैसी सभ्यता हमको नहीं चाहिए। हमको तो बापू की बात याद रखनी है—

I want the cultures of all lands to be blown about my house freely, but I refuse to be blown off my feet by any.

इन्हीं सब चिन्ताओं में राजू डूबा रहता है। राजू के कई मित्रों ने अपनी आँखों से देखा है कि सर तेज बहादुर सप्रू, बुढ़ापे में रोगग्रसित होकर, किस तरह तुलसीदास के मानस बाँचने से शान्ति पाते थे ।

राजू अब सन्त साहित्य का अनुशीलन करने में मग्न रहता है, और पद्मा-रानी ने चरखा कातने और व्रत-पूजा को आश्रयस्थल बनाया है ।

राजू को घेर कर राजू के दोनो पोते अशोक और अमिताभ गाते हैं ।

मेरा नाम राजू, घराना है नाम,
बहती है गंगा जहाँ मेरा धाम ।

सुखी, परिश्रमी, आत्म-प्रतिष्ठित मध्यमवर्गीय समाज की रचना में राजू दम्पति सहर्ष हाथ बँटा रहे हैं ।

एक जमाना था जब उच्चवर्गीय हिन्दू बंगाली अपने को बंगदेश के आदिम जातीय राजा आदिशूर के कन्नौज से मँगाये गये पाँच ब्राह्मणों और उनके सहायकों की संतान मानते थे, और यह धारणा पुण्य-श्लोक ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तक वर्तमान थी । बाद में यह देख कर बहुतों को दुःख होता रहा है कि बंग भाषा-भाषियों का एक अंश हिन्दी भाषा-भाषियों को 'खोट्टा', 'मेड़ो',